मधुकरी

तीसरा खण्ड

सम्पादक

विनोदशङ्कर व्यास

प्रकाशक

प्रथम संस्करण

दीपावली १९५६ ई०

मूल्य तीन रुपये

मुद्रक :

भारती-प्रेस,

आसभैरव, वाराणसी ।

आधुनिक छोटी कहानियों का परिष्कृत रूप फ्रांस ने ही संसार को दिया है। इस कला का चरम विकास फ्रांस में ही हुआ है। योरोप में कला और साहित्य का पथ प्रदर्शक भी फ्रांस ही रहा है।

ऐतिहासिक दृष्टि से बोकेच्चियो योरोप का सर्व प्रथम कहानी-लेखक माना जाता है। बोकोच्चियो ने इटालियन भाषा में जो कहानियाँ लिखीं उनका प्रभाव योरोप की समस्त भाषाओं की कहानियों पर पड़ा। लेकिन बोकोच्चियो पर भारतीय कथा-साहित्य का विशेष प्रभाव था और भारतीय कहानियों के आधार पर ही उसने अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की थी। यह एक प्रमाणित सत्य है।

यह स्पष्ट है कि ग्यारहवीं और बारहवीं शताब्दी के जादूगर और कवियों ने उत्तरीय योरोप में पद्य में छोटी कहानियों का निर्माण किया था। अनेक उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं कि उन भाट कवियों ने जो भावनाएं छन्दबद्ध पंक्तियों में किया था उसी को बोकोच्चियो ने गद्य का रूप दिया था।

जनता की रुचि के साथ ही छोटी कहानियों का विकास हुआ। योरोप के अन्य देशों से कहीं अधिक फ्रांस में उत्कृष्ट साहित्यिक रचना की आवश्यकता पड़ती है।

फ्रांस में समाचार पत्रों में केवल समाचार से ही पाठक सन्तुष्ट नहीं होते। उनके मनोरंजन के लिए विभिन्न साहित्यिक सामग्रियों की आवश्यकता पड़ती है। इनमें छोटी कहानियों का महत्वपूर्ण स्थान है। आज

के वैज्ञानिक युग में कामकाजी मनुष्य को इतना अवकाश कहा है कि वह घन्टों बैठ कर कथा-कहानियाँ पढ़ता रहे। अतएव बड़ी कथाओं को छोटे रूप मे ढाल कर छोटी कहानियो का प्रचार बढ़ा। इस कला का पूर्ण विकास फ्राँस में ही हुआ और संसार के सभी देशो ने फ्रांस का ही अनुकरण किया है।

भारतवर्ष में बंगाल वैसे ही साहित्यानुरागी है जैसे योरोप में फ्राँस! हिन्दी कहानियों का पथ प्रदर्शन बंगला कहानियों द्वारा हुआ। इस तरह यह माना जायगा कि अनुवादित बंगभाषा की कहानियों ने हिन्दी पाठकों में रुचि उत्पन्न की और हमारे यहाँ भी निरन्तर इस कला का महत्व समझा गया।

कहानियों के प्रति जब मेरा आकर्षण हुआ, उस समय हिन्दी में आधे दर्जन से अधिक हिन्दी के प्रतिष्ठित कहानी लेखक नहीं थे। किन्तु गत ३५ वर्ष में ही हिन्दी कहानियों में विकास का इतना उज्ज्वल इतिहास है कि आज गर्व के साथ हम कह सकते हैं कि संसार के कहानी-साहित्य के मंच पर हिन्दी-कहानियाँ भी अपना एक छोटा सा स्थान गृहण कर सकती हैं।

मधुकरी हिन्दी का पहला कहानी संकलन है। इसके बाद प्रेमचन्द जी का गल्प समुच्चय प्रकाशित हुआ और उसके बाद सैकड़ों, हजारों कहानी संगृह प्रकाशित हुए। मैने हिन्दी कहानियों के विकास की जो रूप रेखा बनाई, विद्वान और आलोचकों ने उसका समर्थन किया। 'मधुकरी' में उसी क्रम से कहानियाँ संकलित की गई हैं जैसे उनका विकास हुआ है।

रचनाकाल के अनुसार ही लेखकों को स्थान दिया गया है। अतएव 'मधुकरी' की कहानियाँ पढ़ कर स्वयं पाठक हिन्दी कहानियों के इतिहास से परिचित हो सकते हैं।

मुझे सन्तोष है कि अपने जीवन काल में ही मैंने इसे पूर्ण कर दिया है। अब हिन्दी कहानियों का अनुसन्धान करने वालों के सम्मुख कठिनाई का कोई प्रश्न नहीं रहता।

भूमि सींच कर हरे, भरे, फूले फले उद्यान में जैसे माली अपनी कुटिया में अपनी खाट पर पड़ा सन्तोष की सांस लेता रहता है। कुछ वैसा ही अब मैं अनुभव कर रहा हूं। आज के नवयुवक कहानी-लेखकों का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है। प्रतिभा की होड़ है। विजयी सम्मानित होगा।

'मधुकरी' पर मुझे अपनी रचनाओं से कम ममता नहीं है। अतएव इसके सम्बन्ध में कुछ लिखना आत्म-प्रशंसा ही होगी जो मुझे स्वभावतः पसन्द नहीं है। पाठक खुद कहानियां पढ़ कर निर्णय करें। मेरी दृष्टि में जो मुझे रुची उन्हे ही स्थान दिया है।

आज हमारा कहानी क्षेत्र बड़ा विशाल हो गया है। अगणित लेखकों में सब से परिचित होना सम्भव नहीं। इसके अतिरिक्त जो मधुकरी का अर्थ समझने में असमर्थ रहे, उनसे कोई उलाहना नहीं। इन सब बातों को समझते हुए भी जो अपने परिचित नामों को न देख सकें उनसे मैं क्षमा प्रार्थी हूं अपने स्वभाव के कारण।

दीपावली १९५६ ई० }
वाराणसी। }

विनोदशङ्कर व्यास

५

श्री मोहनलाल गुप्त

भैया जी बनारसी के नाम से हास्य की कहानियां यह लिखते रहे हैं। इनके दो कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। दैनिक 'आज' के रविवासरीय अंक के सम्पादक हैं—भावुक और सहृदय।

६

श्रीमती कमला चौधरी

ये कहानी संसार में विख्यात हैं। इनके चार कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं और उनके अनेक संस्करण हो चुके हैं।

७

श्रीमती शशि तिवारी

इनकी लेखन शैली आकर्षक है और कहानी लिखने की प्रतिभा भी है; किन्तु इन्होंने थोड़ी सी ही कहानियां लिखी हैं गृहस्थी और समाज सेवा के कार्यों में व्यस्त रहने के कारण बहुत कम अवसर मिलता है।

८

पं० गंगाप्रसाद मिश्र

इनकी भाषा परिमार्जित है। कहानियों में भावनात्मक चित्रण करने में सफल हुए हैं। अब तक ६ कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रधानाध्यापक हैं।

९

श्री भैरव प्रसाद गुप्त

ये 'कहानी' पत्रिका के संयुक्त सम्पादक हैं। दस वर्षों तक 'माया' का सम्पादन कर चुके हैं। कहानी लेखक होने के साथ-साथ कहानियों के कुशल पारखी भी हैं। इनके आठ कहानी संग्रह अब तक प्रकाशित हुए।

१०

पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

बनारसी जीवन पर इनकी लिखी बड़ी रोचक कहानियां हैं ।

११

पं० कमल जोशी

१५ वर्ष की अवस्था में इन्होंने कहानी लिखना आरम्भ किया था । कहानियां सुन्दर लिखते हैं । इनके अब तक चार कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं । इनकी भाषा सरस है । टाटा नगर से निकलने वाले 'टिस्को समाचार' के सम्पादक हैं ।

१२

स्व० श्रीमती होमवती

होमवती जी बड़ी मार्मिक कहानियां लिखती थीं । कुछ ही वर्षों में उन्होंने हिन्दी कहानी-साहित्य में अपना एक स्थान बना लिया था । उन्हें अपने जीवन में अनेक कष्ट और कठिनाईयों से सामना करना पड़ा था । उनके चार कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं । इनका रचना काल १९३५ ई० और मृत्यु वि० २००५ है । प्रेस की असावधानी से इधर-उधर हो गया है । पाठक उसे सुधार लेने का कष्ट करें ।

१३

श्री अमृतराय

अमृतराय जी बड़े प्रतिभावान लेखक हैं । प्रेमचन्द जी के पुत्र हैं । स्वभाविक चित्रण उनकी विशेषता है । बड़े सरल प्रकृति के हैं । यह कितने हर्ष की बात है कि 'मधुकरी' में अपनी माता और पिता के साथ उनकी कहानी प्रकाशित हुई है ।

१४

श्री मन्मथनाथ गुप्त

यह ककोरी केस के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी हैं। लगभग बीस वर्ष इनका जेल में ही व्यतीत हुआ। बड़े परिश्रमी लेखक हैं। ५० पुस्तकें लिख चुके हैं दो सौ कहानियाँ भी प्रस्तुत कर चुके हैं।

१५

श्री ब्रजेन्द्रनाथ गौड़

कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन कर चुके हैं। अब बम्बई में फिल्म का निर्देशन करते हैं। इनके ६ कहानी संग्रह प्रकाशित हुए हैं।

१६

श्री रांगेय राघव

इनकी 'गदल' कहानी 'उसने कहा था' गुलेरी जी की कहानी की तरह जोरदार है। इनकी सब से से बड़ी विशेषता यह है कि तामिल माता-पिता के पुत्र होते हुए भी हिन्दी भाषा पर इनका कितना अधिकार है। बड़े अध्ययनशील और परिश्रमी लेखक हैं।

१७

श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब'

बेढब जी अपनी लिखी कविता और कहानी के लिए विख्यात हैं। यथा समय कहानी न प्राप्त होने कारण 'मधुकरी' में उन्हें उपयुक्त स्थान नहीं दिया जा सका। अगले संस्करण में क्रम के अनुसार ही उनकी कहानी छपेगी।

—:०:—

अनुक्रम

तीसरा खण्ड

१९२९ ई० से १९४९ ई० तक के

कहानी-लेखकों की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ

श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा

जन्मकाल	रचनाकाल
१९१५ ई०	१९३९ ई०

सुलगते कोयले

रोज की तरह आज फिर अंधेरे की मलिनता का परदा डालती हुई सांझ की सांवली बाहें दिखलाई पड़ीं, फिर उसी प्रकार छः बजे और उसी प्रकार हारा थका कैलाश अपने आफिस से निकला। उसके चेहरे पर चिन्ता घनीभूत हो गयी थी। आंखों में विषाद की कुछ ऐसी झलक थी कि लगता मानों वह किसी विभीषिका को प्रत्यक्ष देख रहा हो।

निश्चेष्ट हाथों से उसने साइकिल उठायी, और नित्य के अभ्यस्त पैर पैडिल पर मारता हुआ वह घर की ओर चल दिया। रास्ते में उसका सहकर्मी मित्र हरीश मिल गया। उसने साइकिल रोककर टोक दिया—चलते हो शर्मा, काफी हाउस होते चलें। एक एक कप काफी पीते चलें।

कैलाश खिजला कर बोल उठा—भाड़ में जाय काफी हाउस और आग लगे तुम्हारी काफी को। शादी नहीं की तो मौजें मारा करो। यहां तो चिन्ता खाये जा रही है कि नन्हें का क्या हाल होगा। कमला मेरी जान को रो रही होगी। मेरी तो जिन्दगी तबाह हो गयी।—और कैलाश ने साइकिल बढ़ा दी। मस्तिष्क के भन्नाटे में वह सोच रहा था—इस आफिस में काम करते-करते उसे आज दस साल हो गये। न कभी तबादला ही हुआ और न कोई खास बात ही हुई। हां, स्केल के अनुसार उसका वेतन बढ़ता गया और बस। आदमी भी वह कुछ अजीब किस्म का है, न किसी की चापलूसी, न खुशामद। अपने अफसरों के सामने वह दबा-दबा, डरा डरा, झिझकता, सहमता आता है। चेहरे पर हवाइयां उड़ती रहती हैं। लगता है अफसर जैसे उसे कच्चा चबा

आएंगे। जाने कौन सा भय उसके मन में समा गया है। वैसे वह अपने काम में पक्का है। अपना सारा काम निपटाकर ही सांस लेता है। काम की ज्यादती का रोना वह कभी नहीं रोता। अपने काम से काम रखता है। आफिस के लोग जिस समय गप्पें लड़ाते हैं, अथवा दूसरों की शिकायतों में समय खर्च करते हैं उस समय कैलाश चुपचाप अपना काम करता है। अपने काम में रत्तीभर भी फरक नहीं आने देता। सिर झुका कर काम करते-करते उसकी आदत झुक कर चलने की हो गयी है। इस समय भी उसके दिमाग में आफिस के नोट्स और ड्राफ्ट्स घूम रहे थे। उसकी वह नौकरी भी ऐसी थी जहां न कभी किसी तरह की ऊपरी आमदनी हुई, न होने की आशा थी। मशीन की तरह उसने अपने को काम में फिट कर लिया था। न वह हिल सकता था और न कभी अधिक दिन की छुट्टी लेकर आराम ही कर सकता था। आजकल उसे जो वेतन मिलता है वह डेढ़ सौ रुपये की रकम है। यह रुपया उसके घर के खर्च के लिए पूरा नहीं पड़ता। परिवार भी उसका सीमित नहीं है—उसकी मां है, पत्नी है, छोटा भाई है, तीन लड़कियां हैं, दो लड़के हैं। छोटे भाई की शिक्षा का भार कैलाश को ही वहन करना पड़ता है क्योंकि परिवार में और कोई सम्बल नहीं है। आज के जमाने में शिक्षा भी कम महंगी चीज नहीं है, फिर भी कैलाश अपनी तीनों लड़कियों को स्कूल भेजता है। मां हमेशा बीमार ही बनी रहती है। पत्नी को इन दिनों जाने क्या हो गया है कि वह थकी-थकी सी रहती है। जरा से चलने-फिरने में हांफने लगती है। साल भर का नन्हा हुआ नहीं कि उसने दूसरे शिशु की भूमिका लिख डाली है। कैलाश मन ही मन सोच रहा था—इतने में उसके पास से एक लारी गुजरी—लारी के अन्दर स्वरों ने उसका ध्यान आकर्षित किया। उसने देखा कि झुंड की झुंड लड़कियां—तितलियों की भांति, हल्की-फुल्की, सजी-बजी, यौवन के सागर में तरंगित होने वाले मासूम राई के फूलों की तरह स्निग्ध और उज्ज्वल लड़कियां-जिनकी आंखों में एक सुनहला स्वप्न था, जिनके हृदय में अरमानों, महत्वाकांक्षाओं के मेले थे, जिनकी कल्पनाएं आशा के पालने में हुलाश और उमंग की डोर से झूला करतीं थीं—एकाएक उसे अपने विद्यार्थी-जीवन के दिन याद आये, जब उसके

हृदय में भी नयी उमंगें थीं, नये तर्क थे, नये सिद्धान्त थे। पलकों में नये सपनों का, नये संसार का जाल था और मस्तिष्क में प्रेरणाओं की शक्ति थी, एक विश्वास था, दृढ़ता थी, दर्प था और आज...आज कैलाश ने पैडल पर जोर से पैर चलाने प्रारम्भ किये। लारी के अन्दर लड़कियों की बातचीत के खिले स्वर, कांसे की कटोरियों की झनझनाहट-सी हंसी की आवाजें अभी भी उसके कानों में आ रही थीं, पर वह जैसे इन सब से दूर भागना चाहता था—दूर बहुत—दूर—अपने उस घर में जहाँ अभाव है, बेबसी है, कड़वाहट है और जहां के वातावरण में एक सियापा है, मुर्दनी है, विभीषिका छायी है—उस वातावरण में पहुँचकर वह अपनापे का अनुभव करता है। उसका सूखा शरीर, उसका मैला पैण्ट, उसकी बिना इस्त्री की कमीज, उसका सिलवटों पड़ा माथा उसी वातावरण के उपयुक्त है—यह जीवन, यह हुलास, यह उमंग, यह सपनों की दुनियां उसके लिए नहीं है उसकी दुनियां दूसरी है, जहाँ रोते हुए बीमार बच्चे हैं, सिगड़ी सुलगाती और पसीने से लथपथ पत्नी है, खांसी से बेजार, टूटे खटोले पर भार के समान निढ़ाल पड़ी माँ है—कैलाश को एक झटका सा लगा—पैरों ने पैडिल और जोर से घुमाये और उसकी चेतना वहाँ आकर सचेष्ट हुई जब वह अपने घर पहुँचा। ड्योढ़ी के अन्दर दाखिल होते हुए उसने थके स्वर में रोज की भाँति पूछा—नन्हें का क्या हाल है? गौरा उसकी पत्नी सिगड़ी सुलगाते-सुलगाते थक गयी थी। पसीने से भरा सिलवटों पड़ा उसका चेहरा धुएँ से आच्छादित हो रहा था और उसकी लाल-लाल आँखों की कोरें पानी से भीगी हुई थीं—पति की आहट सुन कोयले से सने हाथों से माथे पर बिखरे बालों को एक ओर करते उसने बिना सर घुमाये कैलाश से भीदुगने थके स्वर में कहा—आज भी बुखार एक सौ चार तक पहुँचा था, सूजन उसी प्रकार है, दिनभर मुझे छोड़ा नहीं, अभी उठकर आती हूँ, सोचा कि तुम्हारे लिए चाय चढ़ा दूँ—निरुद्देश्य भाव से गौरा के कथन को सुनना छोड़कर कमीज खूँटी पर टाँग वह नन्हें के कमरे की ओर बढ़ गया—नन्हा सो रहा था—उसने टेम्परेचर चार्ट देखा, दवा की शीशी उलटी-पलटी और दबे पांव निकल कर अपने कमरे में खिड़की खोलकर खड़ा हो गया—नीचे सड़क पर एक बैण्ड बज

रहा था—कैलाश ने झुक कर देखा—पीछे-पीछे कुछ औरतों का झुण्ड गीत गाता आ रहा था—शायद किसी की शादी थी—शादी ! कैलाश के चेहरे पर एक विकृति भरी मुस्कान फैल गयी। उसने सोचा इन मीठी-मीठी शहनाई की धुनों में; इन कोमल कंठस्वरों में जो विभीषका छिपी है उसे क्या बाजे वाले, ये खुशी मनाने वाली औरतें, वे दो अनजान हृदय जानते होंगे ? शायद नहीं जानते होंगे, तभी तो गा-बजाकर अपनी खिली हुई जिन्दगी को तबाह करने जा रहे हैं—कैलाश भी नहीं जानता था तभी तो वह ढोल बजाकर, खुशी मनाकर, सिर पर मौर रखकर, मित्रों सम्बन्धियों के साथ गुड़िया-सी गौरा को ब्याह लाया था—लेकिन आज वह जान गया है कि विवाह और कुछ नहीं एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति का सब कुछ छीनकर केवल उसे जीने का अधिकार देती है, केवल साँसें लेने का अधिकार, मशीन की तरह काम करने का अधिकार और उसके आगे कुछ नहीं—उसका जी चाहा—वह नीचे उतर जाय और चीख-चीख कर कहे उन बाजे वालों से, उन औरतों से कि लौटा ले जाओ ये बाजे, बन्द करो ये गाने, तुम सब नहीं जानते ये बाजे, ये गाने, किस घुटन और किस सियापे के निर्माण में रत हैं ? सोचते-सोचते कैलाश की मांसपेशियों में तनाव आ गया, हाथों की मुट्ठियाँ बंध गयीं, आवेश में आकर वह टहलने लगा—तभी गौरा ने चाय के लिए पुकारा—कैलाश का ध्यान भंग हो गया। जाकर वह चाय ले आया। तभी नन्हें चिल्लाया गौरा चाय छोड़कर दौड़ी—कैलाश ने चाय पीते-पीते देखा—सिगड़ी से आँच की लाल-लाल लपटें निकल रही हैं, काले-काले कोयले सुलग कर सुर्ख हो गये हैं। उसे लगा जैसे उसका घर एक सिगड़ी है, जिसमें गौरा, उसके बच्चे, उसकी माँ, उसका भाई, स्वयं वह सब सुलग रहे हैं, सुलग-सुलग कर झुलस गये हैं, पर अभी भी कोयले बने हैं—वह आगे नहीं सोच पाया—गौरा ने आकर सूचना दी—कुसुमी नल के नीचे गिर पड़ी, उसका होंठ कट गया—पड़ोस से जाकर जरा टिंक्चर ले आइये। कैलाश चला गया। तभी नीचे से आवाज आई 'बाबू जी !' आवाज पर ध्यान देकर गौरी ने पूछा—कौन है ? 'मैं हूँ, दूधवाला, दाम लेने आया हूँ !' गौरी की सांस नीचे की नीचे और ऊपर की ऊपर रह गयी। उसने सहमती आवाज में दो क्षण

रुककर कहा—आज लौट जाओ, कैथई, बाबू हैं नहीं। कल आना। दूधवाला झल्लाकर बोला—साहब, महीने भर दूध दूँ और महीने भर दामों के लिए दौड़ूँ, मेरे पास इतना वक्त नहीं है। मुझे चारा लेने जाना है। कल रुपये जरूर मिल जाने चाहियें। बीस रुपये सात आने होते हैं। दूधवाला बड़बड़ाता चला गया—तभी कैलाश पड़ोस की वकीलिन, रूपा से टिंक्चर लेकर लौटा—इस समय उसके मनमें रूपा के सजग हाव-भाव घूम रहे थे। कुर्सी पर बैठते हुए सहसा उसकी दृष्टि सामने झाड़ू देती हुई गौरी पर जा टिकी—बरांडे में धूल के गुबार में ढ़ंकी सुस्त, अपने आकर्षण की उपेक्षा करती हुई उदासीन-सी वह झाड़ू लगा रही थी—कैलाश ने देखा उसके हाथ मशीन की तरह चल रहे हैं। उसकी वृत्तियाँ जैसे निश्चेष्ट हैं। उसकी आँखों में कोई भाव नहीं है। उसके मनमें कोई उद्वेग नहीं है—वह सोचने लगा—नारी का यह कैसा रूप है? जो नारी तृप्ति का उन्मुक्त स्रोत कहला कर पुरुष की सच्ची मित्र और जीवन-सहचरी बन सके, और अपने आकर्षणों के साथ जीवन को सार्थकता की ओर ले जाने की प्रेरणा दे, कैलाश को ऐसी नारी चाहिये। उसे तो नारी के स्नेहसिक्त आँचल की छाया में शीतलता चाहिये, जिसमें कृतज्ञता की सुगन्ध हो—परन्तु आज तो वह कितना सूना है, कितने अवसाद ने उसे चूर कर दिया है—कैलाश की विचारधारा में अवरोध आया—गौरा खाना लेकर आयी थी। मेज पर रखकर बोली—मैं जरा सामने ही नन्हें के पास हूँ, कुछ लेना हो तो ले लेना। कैलाश को आज भूख नहीं थी। थोड़ा-सा खाकर वह चारपाई पर उढ़क्ष गया और उमड़ते उद्वेग को दबाने के लिए उसने एक सिगरेट सुलगायी और मुँह में लगा कर उसने गौरा की ओर देखा—वह खटोलेपर धनुषाकार बनी पड़ी थी—नन्हा उसके वक्ष से चिपका उसकी छाती चूस रहा था। उसका वक्ष भींग गया था—कैलाश की कर्म-प्रवृत्ति फिर बौद्धिकता में उलझ गयी—क्या यही है नारी का स्वरूप—रूप और यौवन। नारी जो प्रेयसी बनने की वय में ही माता बनने को बाध्य है। आज की आर्थिक पद्धति में समाज का जो ढांचा है उसमें नारी सिर्फ पुरुषों की एक चल सम्पत्ति है, सन्तानोत्पत्ति का एक यंत्र है; मनबहलाव की सामग्री है। आज की स्त्रियाँ तो केवल अपने जीवन-

निर्वाह के लिए शादी करती हैं। जीवन-निर्वाह और आश्रय देने की कृतज्ञता में वह पुरुषकी उच्छृङ्खलता का साधन बनती है, और प्रजनन करती है। घर की मालकिन, घर की रानी, गृह-लक्ष्मी, जीवन-संगिनी यह सब खोखले अर्थहीन शब्द हैं---कैलाश गहराइयों में उतरता चला जा रहा था कि सामने वकील साहब के मकान की खिड़की, चूड़ियों की खनक के साथ खुली और उसमें से एक नारी के मुखड़े की झलक दिखाई पड़ी, जो ताजे शृङ्गार और प्रणय के तमाम अवगुण्ठनों के साथ मुस्करा रही थी। उसकी आँखों में प्यार की अतृप्ति थी और होठों पर समर्पण की मुस्कान।

कैलाश के प्राणों में उन्मुक्त नवीनता और गति की प्रेरणा के स्रोत खुल गये। मुस्कानों का आदान-प्रदान हुआ। आँखों आँखों में प्यार की रसभरी बातें हुईं, और क्षण भर बाद ही खिड़की बन्द हो गयी। नित्य का यही क्रम है। कैलाश के अभाव ग्रस्त जीवन की कमी पूरी करने के लिए रूपा के प्यार की छाँह की अपेक्षा रखता है और रूपा वकील साहब से अपनी कोमल भावनाओं की तुष्टि न पाकर जिन्दगी को स्वस्थ रूप से बिताने का रास्ता निकाल रही है, मुस्करा रही है।

रोज की तरह छः बजे और रोज ही की तरह कैलाश फिर दफ्तर से निकला। आज उसके माथे पर अधिक सिलवटें थीं और उसका झुका रहने वाला सिर, और भी नीचे था---वह और दिनों से अधिक चिन्तामग्न था---थके पैरों को पैडिल पर घसीटते हुए वह घर पहुँचा और साइकिल नीचे ही डाल ऊपर चढ़ गया। सामने ही गौरी रोज की भाँति सिगड़ी सुलगा रही थी---वह जाकर कमरे में बैठ गया। कुछ सोचने लगा---

बड़ी देर बाद उसने सिर उठाया और देखा गौरी किसी काम से गई है और सिगड़ी सुलग-सुलग कर धुआं फेंक रही है---चारों ओर धुएं का गुबार छाया था---वह पास आया और उसने सिगड़ी उलट-पलट कर देखी---कोयलों में आंच नहीं लगी थी। केवल परच परच कर वे धुआं फेंक रहे थे---गौरा! गौरा को आवाज लगा वह कमरे में आ गया---उसके मन में कल की अधूरी बातें फिर उभर आईं---उसे लगा जैसे उसके घर का हर सदस्य इन्हीं कोयलों की भांति

घरच रहा है, सुलग रहा है पर जलता नहीं। उसका घर, उसका समाज सब एक बड़ी सिगड़ी है जिसमें अपमान, अभाव, बेबसी के कोयले सदा सुलगा करते हैं उनमें कभी ज्वाला नहीं फूटती! केवल धुआं देने के लिए घुटकर वातावरण विषाक्त करने के लिए इनका अस्तित्व होता है। गौरा सिगड़ी फिर सुलगा लेगी। काले काले कोयले सुलगेंगे और सुलग कर लाल हो जायेंगे पर परिवार के, समाज के ये कोयले कभी नहीं लाल होंगे, कभी नहीं आंच देंगे, केवल घुटन पैदा करेंगे, सांस नहीं लेने देंगे—आोह ! ये कोयले! ये सुलगते कोयले।

पं० द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण'

जन्मकाल रचनाकाल

१९१५ ई० १९३१ ई०

छोटा डाक्टर

कम्पाउण्डर श्यामसुन्दर शर्मा डिस्पेन्सरी से बाहर निकला तो धूप ढल रही थी। उसने एक बार कोट की जेब में हाथ डालकर इन्जेक्शन का डिब्बा देखा फिर तीनों सीढ़ियाँ पार करके लपकता चल दिया।

बात की बात में बाजार में आ पहुँचा। पर आज उसने नज़र न डाली तमोली की दूकान पर। लम्बे डग भरता आगे बढ़ा जा रहा था कि जाने किस प्रिय बन्धु ने पुकार कर कहा—डाक्टर, पान खाते जाओ।

श्यामसुन्दर ने सिर घुमा कर पीछे देखा। गंभीरता से बोला—फ़ुरसत नहीं है। और आगे बढ़ गया।

हलवाई की दूकान आ गई। हलवाई कढ़ाही आगे रक्खे बैठा किसी गाहक से हँस रहा था। उसने कम्पाउण्डर को कतरा कर जाते देखा तो गरदन ऊँची करके चिल्लाया—डाक्टर, ताजा खोआ भुना है। खाते जाओ थोड़ा।

श्यामसुन्दर ने बिना उधर देखे शान्त स्वर में कहा—फ़ुरसत नहीं है। और आगे बढ़ गया।

लाला की बैठक आ गई। मजमा इकट्ठा था वहाँ। एक जवान साधु खंजड़ी बजा कर भजन सुना रहा था। कैसी मोहक तर्ज है! पर श्यामसुन्दर न रुका।

ननकू सुनार ने सामने से राह रोक ली और बंडी में हाथ डालता बोला—भैया डाक्टर, सदर से यह कागज आया है। जरा पढ़ कर बताओ कि क्या लिखा है।

श्यामसुन्दर ने स्वर को तीव्र करके कहा—मुझे फ़ुरसत नहीं है और आगे बढ़ गया।

अखाड़ा आ गया। तीन-चार मस्त, कसरती जवान तेल-फुलेल लगाये बीड़ी पी रहे थे। उनके बीच में एक साथी लाल लँगोटा कसे, नङ्ग-धड़ङ्ग बैठा, तेजी के साथ लोढ़ा चला रहा था। भंग घुट रही थी। उसी ने कम्पाउण्डर को लपक कर जाते देखा तो खड़ा हो गया उठकर और छाती पर हाथ रख कर झूम कर बोला—गुइयाँ, जवानी की किसम है तुझे जो बिना चढ़ाये जाय!

पर श्यामसुन्दर ने कसम का ख्याल न किया। आगे बढ़ता-बढ़ता चिल्ला कर कहता गया—फुरसत नहीं है गुइयाँ।

बाजार ख़तम हो गया। श्यामसुन्दर दस-बारह क़दम और अधिक तेज़ी से बढ़ा था कि अचानक उसकी नज़र दाहिनी ओर गई। ठिठक गया। चाल एकदम धीमी पड़ गई। फिर अनायास ही उसके पैर उधर को मुड़ गये।

राह से दस-ग्यारह गज के फासले पर पक्का कुआँ था, जिसके चारों ओर गोलाकार चौतरा बना था। चौतरे के नीचे से एक सँकरी पगडंडी दूर तक चली गई थी और इस ओर एक कनेर खड़ा था, जिसकी लम्बी शाखाएँ हमेशा कुएँ पर छाया किये रहती थीं और जिससे दिन-रात पीले, बाजेनुमा फूल झरते रहते थे।

श्यामसुन्दर पैरों की चाप दबाता उसी कनेर तले आ खड़ा हुआ। एक बार चारों ओर दृष्टि डाली और धीरे से खाँसा।

तब जो एकाकिनी अपना घड़ा भर रही थी, चौंक कर उधर देखने लगी। उसके ओठों पर मुसकान खिल उठी। पर उसने अपने को हँसने न दिया और गोल बाँहें फुर्ती से रस्सी को ऊपर खींचने लगीं।

श्यामसुन्दर फिर खाँसा, शायद गला ठीक करने के लिए, औरमुदित मन से हौले-हौले गाने लगा—

'हम से-न भरा जाय रे
राजा, तोरा पनिया...'

परन्तु पानी भरने वाली ने क़तई ध्यान न दिया। रस्सी इकट्ठी की और पलक मारते भारी घड़ा कमर पर रख लिया।

तब श्यामसुन्दर स्वर को और मधुर करके गाने लगा—

'पतली कमरिया, भारी गगरिया,
तिरछी नजरिया, सूनी डगरिया,
अरे, हम से न भरा जाय रे, राजा...'

तब रोकते-रोकते भी गगरिया वाली की नज़र उधर आ गई और उस भोली नज़र ने देखा कि श्यामसुन्दर अपनी पतली कमर पर अदृश्य भारी गगरिया और तिरछी नजरिया लिये खड़ा है। तब हँसी रोके न रुकी और सहसा बिजली-सी कौंध गई कुँए के किनारे।

तभी एक बड़ी रूखी आवाज़ सुन पड़ी—डाक्टर! और एक महाबलिष्ठ, लम्बा-चौड़ा, प्रौढ़ व्यक्ति आ धमका, लट्ठ हाथ में लिये।

डाक्टर को कनेर की डाल पकड़े देखा उसने तो अजीब-सी टोन में पूछा—क्या कर रहे हो यहाँ?

डाल पर नज़र जमाये श्यामसुन्दर सहमी-सी आवाज़ में बोला—ज़रा दातून तोड़ रहा था।

लट्ठ वाले ने सिर हिला कर कहा—दातून फिर तोड़ लेना भतीजे। दया करके भजनलाल के यहाँ हो आओ पहिले। समझे? वहाँ तुम्हारा इन्तज़ार हो रहा है।

श्यामसुन्दर ने डाल फ़ौरन छोड़ दी और हाथ झाड़ कर बोला—भाड़ में जाय दातून चचा! मैं चला—

और चलते-चलते उसने एक बार दबी निगाहों से उधर देखा। दूर, सँकरी पगडंडी पर एक सुगठित देह, पानी-भरा घड़ा लिये, मन्दगति से चली जा रही थी।...

इंजेक्शन लगा कर श्यामसुन्दर ने हाथ धोये। फिर अँगोछे से हाथ पोंछता-पोंछता भजनलाल की लड़की से अकड़कर बोला—यहाँ खड़ी-खड़ी मेरा मुँह क्या देख रही है? चूहेखानी, जा, पान लगा कर ला जल्दी से!

लड़की हँस कर भीतर भाग गई।

बड़ा लड़का मदरसे से पढ़ कर उसी दम लौटा था। अपना बस्ता रख कर

कुम्हलाया मुख लिये माँ को पुकार रहा था। श्यामसुन्दर ने खटिया पर बैठ कर उसकी ओर हाथ हिला कर कहा—इधर आ रे!

लड़का सहम कर पास आ खड़ा हुआ तो श्यामसुन्दर ने आँखें चमका कर कहा—अबे उल्लू, पैर क्यों नहीं छूता मेरे?

तभी माँ निकल आई भीतर से पान लिये।

श्यामसुन्दर ने फ़ौरन कहा—भाभी, यह गधा मेरे पैर नहीं छू रहा है।

भाभी ने लड़के को पुचकार कर कहा—छू लो बेटा! अपने चाचा के पैर छू कर पालागन करो।

आख़िर लड़के ने पैर छू लिये।

श्यामसुन्दर उसकी पीठ ठोंक कर बोला—जीते रहो! फिर भाभी की तरफ मुख़ातिब होकर कहा—सिर्फ़ सन्तरे का रस देना आज दद्दा को और कुछ नहीं। समझीं?

भाभी ने समझ कर कहा—देवर, सन्तरा कहाँ पाऊँगी मैं?

श्यामसुन्दर ने झट जेब में हाथ डाल कर चार सन्तरे निकाले और भाभी के आगे करके लापरवाही से बोला—लो, थामो। कहाँ पाऊँगी! मैं मर गया हूँ क्या? जरा माँग कर तो देखो! खून माँगो शरीर का तो खून निकाल दूँ अपना। मैं किस लक्ष्मण से कम हूँ?

भाभी की आँखें सजल हो गईं।

श्यामसुन्दर ने सन्तोष के साथ कहा—आज बाग़ का माली दे गया था ये सन्तरे। उसकी सरहज बीमार होकर आई है। और किसी चीज की जरूरत हो तो बतलाओ भाभी!

भाभी काँपते कंठ से बोली—मैं तुम से कभी उरिन नहीं हो पाऊँगी देवर!

श्यामसुन्दर ने मानों सुना ही नहीं। भजनलाल ने करवट बदल ली थी। श्यामसुन्दर ने उनसे धीरे से कुछ कहा और पैर छू कर भाभी से बोला उठते-उठते—अब चल दिये भाभी, सलाम!...

...फिर वही कुआँ और कनेर सामने आ गया। सूरज का गोला नीचे

उतर गया था, और गाँव का चरवाहा पशुओं का झुण्ड हाँकता चला जा रहा था पीछे धूल-गुबार छोड़ता। श्यामसुन्दर घड़ी भर रुका। रुक कर सुनसान पड़े कुएँ को ताकता रहा। और गाना ओठों पर आ गया उसके—सुनी पड़ी रे सितार!

फिर सहसा खयाल आया कि सितार और कुएँ से कोई सम्बन्ध नहीं है तो चुपचाप चल दिया।...

अखाड़ा आया सामने। भङ्ग छन चुकी थी और एक जोड़ छूटा था कुश्ती का। श्यामसुन्दर कूद कर चौतरे पर चढ़ गया और अपने साथी को पहिचान कर उल्लास से बोला—शाबाश! उल्टी पटकन दे बेटो को!

दूसरा आदमी एक पुरबिया था। यहाँ बड़े लाला के यहाँ नौकरी करता था। वह भी श्यामसुन्दर को भली भाँति जानता था बहुत तगड़ा शरीर था। श्यामसुन्दर की बात से जल कर उसने जो ताकत लगाई तो श्यामसुन्दर का साथी पड़ाक-से चारो खाने चित्त जा पड़ा। पुरबिया ने उसे वहीं छोड़ श्यामसुन्दर के आगे आकर डाँट कर कहा—हम का तोहार दुश्मन हई सरऊ? तनी एहर आवा। तोहू का मजा चखाय देई बेटा! और वह लपक कर श्यामसुन्दर का हाथ पकड़ने लगा।

श्यामसुन्दर छलाँग मार कर भाग खड़ा हुआ।...

लाला की बैठक के आगे ताश जम रहा था। श्यामसुन्दर चुपके से एक किनारे बैठ गया और ताश की बाजी देखने लगा। वह ऐसे कोने पर था जहाँ से दो आदमियों के ताश दीख रहे थे। एक के ताश देख कर दूसरे के पास सरक कर बोला—करदे तुरूप चाल! छोड़ इक्का!

देखते-देखते आनन-फानन उसने बाजी जिता दी।

लाला खुश होकर बोले—इधर आओ डाक्टर!

पर श्यामसुन्दर ने कहा—जनाब, अब नहीं खेलते हम। हार हो गई तुम्हारी। और चल दिया।...

हलवाई सुखराम अपनी दुकान पर पीनक का मज़ा ले रहे थे। आँखें बन्द थीं और सिर दीवार के सहारे टिका था।

श्यामसुन्दर ने एक बार अच्छी तरह उनकी परीक्षा की। बिलकुल चैतन्यहीन

लगे। जूते उतार कर भीतर घुसा और एक दोने में चार पेड़ा लेकर बाहर सुखराम के पास आ बैठा। आनन्द से पेड़े खा लिये औ दोना दूर फेंक दिया। फिर हलवाई को झकझोर कर बोला—सुक्खू चाचा! ए सुक्खू चाचा!

सुखराम ने पीनक से चौंक कर आँखे चीरीं, जोर लगा कर। श्यामसुन्दर ने सिर हिला कर कहा—अरे, ज़रा पानी तो पिलाओ। बड़ा प्यासा हूँ।

हलवाई ने होश में आकर कहा—कुछ मीठा दूँ? पेड़ा दूँ? ताजे बने हैं।

श्यामसुन्दर ने लापरवाही से उत्तर दिया—आज एकादशी है चाचा! निर्जला व्रत हूँ।

लोटा भर पानी पीकर तमोली की दूकान पर आ खड़ा हुआ। दो बीड़े दाबे ठाठ से, सुरती डाली चार पत्ती, और कैंची की सिगरेट सुलगा कर तमोली से बोला—तुम्हारी जोरू तो अब ठीक है न!

तमोली हाथ जोड़ कर बोला—सब आपकी दया है सरकार! चूना और दूँ?

श्यामसुन्दर ने ज़रा-सा चूना और चाटा। फिर सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश खींचता अपनी कोठरी में जा पहुँचा।...

डिस्पेंसरी का नौकर लालटेन जला कर देने आया तो श्यामसुन्दर खुरदरी खाट पर टाँगें पसारे लेटा था। नौकर बोला—बिस्तर बिछा दूँ, मालिक! दूध आ गया है आपका। गरम हो रहा है।

श्यामसुन्दर ने अनमने भाव से कहा—रहने दो भाई! मजे में लेटा हूँ। दूध आज नहीं पीऊँगा। बच्चों को पिला देना।

नौकर क्षण भर खड़ा रहा। फिर डरता-डरता बोला—नये डाक्टर-साहब आये थे अभी आप को पूछ रहे थे।

श्यामसुन्दर चुप रहा।

नौकर बोला—बड़ा तेज-मिजाज लगता है मालिक! कह रहे थे, यह खुइया क्यों बो रक्खी है यहाँ? यह क्या तुम्हारा खेत है?

श्यामसुन्दर ने हँस कर पूछा—तुमने क्या जवाब दिया?

क्या जवाब देता मालिक? सिर झुकाये सुनता रहा। पुराने डाक्टर साहब मुझे बेटे की तरह मानते थे। इनका अभी से यह हाल है। कैसे पार लगेगा?

श्यामसुन्दर ने अँगड़ाई ले कर कहा—तू क्यों मरा जाता है रे ? मैं तो हूँ ही। जा, भगवान् का नाम ले। खा-पी। चिन्ता मत कर लछमना! कुछ डर नहीं है।

पर श्यामसुन्दर स्वयं चिन्तामग्न हो गया। पुराने डाक्टर नौकरी छोड़कर काशीवास करने चले गये। अब नये डाक्टर आये हैं। कल से वे ही डिस्पेंसरी में बैठेंगे। ज़िन्दगी का रवैया बदलना चाहता है क्या ? कैसा व्यवहार करेंगे नये साहब ? क्या बहुत सख्त तबीयत के हैं ? क्या किसी दिन अपमानित भी करेंगे ? क्या गाली देने की भी आदत है ? होगा जी ? ईश्वर पर छोड़ो सब। एक शेर याद आ गया—

'एहसान नाखुदा का उठाये मेरी बला,
किश्ती ख़ुदा पै छोड़ दूँ, लंगर को तोड़ दूँ।'

श्यामसुन्दर ने दो बार इस शेर को दोहराया फिर करवट बदल कर सोने की चेष्टा करने लगा...।

नींद का झोंका आया ही था कि जाने कौन पुकार कर जगाने लगा।

यह पटवारी हरिद्वारि लाल का भतीजा था। हाथ में लालटेन और लाठी लिये सिरहाने खड़ा-खड़ा बोला—दाऊ के पेट में बड़े ज़ोर का दर्द उठा है। आपको बुलाया है।

श्यामसुन्दर बड़ा खिन्न हुआ। फिर कुछ दवा शीशे के गिलास में डाल कर उदास स्वर में बोला—चलो।

पटवारी का घर बस्ती के उस छोर पर था। जुलाहों के मुहल्ले से होकर जाना पड़ता था। चारों ओर गन्दगी थी! श्यामसुन्दर लालटेन की रोशनी में ज़मीन देखता आगे बढ़ने लगा।

सहसा एक टूटे-फूटे दरवाजे पर उसकी दृष्टि आप ही आप जा पहुँची। अँधेरे में वह घर यों खड़ा था मानों कोई भिखारी हो, जिसके तन पर चीथड़े लटक रहे हों और हड्डियों का ढाँचा उन चीथड़ों के बीच जहाँ-तहाँ चमक रहा हो। श्यामसुन्दर अँधेरे में उस चौखट को लाँघता आगे बढ़ने लगा तो एक बार फिर उसकी आँखें पीछे को लौटीं।

पठवारी के भतीजे ने आगे से चिल्ला कर कहा—डाक्टर साहब, गड्ढा है यहां। सँभल कर आइये।...

पठवारी जी दर्द की बेचैनी से बुरी तरह छटपटा रहे थे। श्यामसुन्दर उनके पास मूढ़े पर आराम से बैठ गया। शान्त भाव से पूछा—क्या खाया था आज? सूअर का गोश्त?

पठवारी ने कुढ़कर कहा—क्या बकते हो डाक्टर? हमने तो आज सिर्फ खिचड़ी खाई थी।

श्यामसुन्दर ने कहा—खैर, जो कुछ भी खाया हो दवा मैं ले आया हूँ। अस्पताल की नहीं, अपनी प्राइवेट है दाम लगेगा इसका। अस्पताल की भी लेता आया हूँ। ये रहीं मुफ्त की गोलियाँ। फिर गोलियों की पुड़िया दिखा कर बोला—बोलो, कौन-सी खाओगे, मुफ्त की या पैसों वाली? पैसों वाली में गारंटी है। चार मिनट लगेंगे दर्द हवा होते। मुफ्त वाली का राम मालिक है। फ़ायदा कर भी सकती है, नहीं भी। बोलो, कौन-सी दूँ?

पटवारी ने तड़प कर कहा—अरे ज़ालिम पैसे वाली दे।

श्यामसुन्दर ने भतीजे से पानी मँगवाया और शीशे का गिलास गोद में रख कर बोला—उठिये साहब, लीजिये यह गिलास पकड़िये और तैयार रहिये। ज्यों ही पानी डालूँ, फौरन मुँह लगा दीजिये गिलास में और गटागट्ट पी जाइये।

मालकिन भी कोने में आधा घूँघट काढ़े खड़ी देख रही थीं। और भतीजा भी नज़र जमाए देख रहा था। श्यामसुन्दर ने कहा—रेडी! और ज़रा-सा पानी गिलास में छोड़ा कि भर्र-भर्र करता वह गिलास झागों से भर उठा। पियो जल्दी! श्यामसुन्दर ने चिल्ला कर कहा और पटवारी जी गटागट्ट पीने लगे उन झागों को।

ठीक चार मिनट लगे। हरिद्वारिलाल का दर्द गायब हो गया। शिथिल होकर पड़े थे अब, गद्गद थे और टुकुर-टुकुर डाक्टर को देख रहे थे।

श्यामसुन्दर ने शान्त भाव से कहा—लाओ, निकालो। दो रुपये निकालो। तुम अपने आदमी हो, गैर से चार लेता। पान-वान कुछ है कि नहीं घर में? तुम बड़े कंजूस हो। अरे, ब्राह्मण दरवाजे पर आया है, कुछ तो सेवा-सत्कार करो!

भतीजा थोड़ी दूर तक साथ-साथ आया। श्यामसुन्दर ने उसे लौटा दिया और जाने क्या सोचता जुलाहों के मुहल्ले में आ पहुँचा, जहाँ वह घर खड़ा था भिखारी जैसा। क्षण भर वह उस टूटे दरवाजे पर ठिठका रहा। फिर मुनिया को आवाज़ देता अँधेरे में भीतर घुस आया।

एक कोने में मिट्टी के तेल की ढिबरी जल रही थी और ओसारे में बैठी मुनिया निःशब्द रो रही थी। उसके शान्त, सौम्य, सलोने मुख पर आँसुओं की धारें बह रही थीं और सारे घर में उदासी साँसे खींच रही थी दुखभरी।

श्यामसुन्दर मानो पाताल लोक में खड़ा था। मुनिया को पुकार कर बोला—इधर आ। और उसका आँसुओं से धुला मुख नजदीक से देखकर कलेजे पर चोट खाकर बोला—रो क्यों रही थी चुड़ैल?

बूढ़ा बाप दिन भर मज़दूरी करके जो पैसा लाया था, वे कहीं राह में गिर गये। कुरते की जेब फटी थी, सो पता नहीं चला अभागे को। कल दोपहर की खाये हैं। आज सारा दिन निराहार बीता और अब कल भी निराहार बीतेगा। रोती-रोती बोली—मैं तो भूखी रह लूँगी, पर अब्बा से कैसे रहा जायगा?

श्यामसुन्दर ने पूछा—हैं कहाँ बड़े मियाँ?

आँसू पोंछती बोली—पानी भरने गये हैं। रात में मुझे अकेली जाने नहीं दिया।

फ़र्लाङ्ग भर पर कुआँ था। वहीं से सारे जुलाहे पानी लाते थे। श्यामसुन्दर लम्बी साँस खींच कर बोला—थोड़ी देर पहिले आ जाता तो उन्हें न जाने देता। यह ले। और दो रुपये का नोट मुनिया की हथेली पर रखकर बोला—पटवारी को ठगकर लाया हूँ। इनसे काम चला। मैं फिर आऊँगा।

मुनिया फूट-फूट कर रोने लगी। दो क्षण श्यामसुन्दर स्तब्ध खड़ा रहा फिर प्यार से उसके आँसू पोंछ कर गद्‌गद स्वर में बोला—इस तरह दिल छोटा न कर, इस तरह आँसू न बहा। तू तो उस दिन कहती थी कि भैया, मैं दुख में भी हँसती रहती हूँ। भूल गई चुड़ैल? अब मत रो, अच्छा!

जुलाहों के मुहल्ले से निकलते-निकलते श्यामसुन्दर को एक गाना याद आया तो स्वर से गाने लगा—मुर्गेदिल मत रो, यहाँ आँसू बहाना है मना।

यही एक मिसरा वह बराबर अपने डेरे तक गाता चला आया।

× × × ×

सुबह तड़के ही नए डाक्टर ने अपनी कुरसी पर बैठ कर यहाँ का रंग ढंग देखा तो उन्हें बड़ा अजीब-सा लगा। सब कुछ जैसे अस्त-व्यस्त था। यहाँ तक कि रोगी भी नहीं आ रहे थे, हालाँ कि दिन काफी चढ़ आया था।

उस छोटी-सी, पुरानी, धूल-भरी डिस्पेंसरी में बैठे-बैठे उन्हें उस विशाल, स्वच्छ अस्पताल की याद आ गई, जहाँ कुछ दिन पहिले वे सरकारी डाक्टर थे।

एक अँग्रेज से झगड़ा हो गया था उनका। उसने कुछ अपशब्द कहे तो इन्होंने भी कुछ ऐसा कहा जो आपत्तिजनक था। उसी बात को लेकर केस चला। यदि उस अँग्रेज से वे माफी माँग लेते तो शायद नौकरी न जाती। पर माफी न माँगी उन्होंने और नौकरी चली गई। राजा साहब के सामने सारी घटना हुई थी। राजा साहब ने दाद दी और यहाँ इस डिस्पेन्सरी में बुला लिया।

यह डिस्पेंसरी सरकारी न थी। राजा साहब के पिता के नाम पर गरीब प्रजा के हितार्थ इसे कस्बे में खोला गया था। यह कस्बा राजा साहब की रियासत में ही था और पाँच हजार से ऊपर आबादी थी इसकी।

नये डाक्टर को रहने के लिए मकान मिला था और एक नौकर भी दिया गया था सेवा करने को। बैठे-बैठे सोचते रहे, 'यहीं रहना है मुझे! आत्म-सम्मान का यही पुरस्कार है?' सिर को झटका दिया और अपने से ही बोले, 'खैर, मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करूँगा।'

तभी श्यामसुन्दर ने खाँस कर उनका ध्यान भंग कर दिया। हकला कर बोले—क्या है?

श्यामसुन्दर ने आगे बढ़ कर कहा—साहब, चन्दन लाया हूँ।

'चन्दन?'

'जी, असली मलयागिरि का है। लगा दूँ साहब?'

डाक्टर साहब की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उन्होंने शायद ही कभी माथे पर चन्दन लगाया हो। यह आदमी बड़ा अजीब है!

श्यामसुन्दर और पास आकर अदब से बोला—पुराने साहब रोज यहाँ चन्दन लगा कर बैठते थे। भगवान् का प्रसाद है यह। लगा दूँ साहब? दिन भर तरावट देता रहेगा।

डाक्टर साहब ने कुढ़ कर कहा—लगा दो।

तब श्यामसुन्दर ने बहुत सँभाल कर उनके माथे पर एक सफेद चन्दन का टीका लगा दिया। फिर शीघ्रता से अपनी जेब से पुराना मटमैला दो आने वाला शीशा निकाल कर डाक्टर साहब के मुँह के ठीक सामने करके खड़ा हो गया।

'यह क्या?'

'शीशा है साहब! देख लीजिये चन्दन।'

डाक्टर साहब ने श्यामसुन्दर के हाथ से वह शीशा छीन लिया और दूर कोने में उसे फेंक कर अति खिन्न होकर कहा—आइन्दा ऐसी हरकत न होनी चाहिये। समझे?' और दोनों हाथों से सिर पकड़ कर बैठ रहे।

श्यामसुन्दर थोड़ी देर स्तब्ध खड़ा रहा। फिर उस टूटे शीशे को उठा कर चुपचाप कमरे से बाहर निकल गया।...

अपनी जगह पर लौट आकर वह छोटी-बड़ी शीशियों के बीच गुम-सुम होकर बैठ गया। जेब से टूटे हुए शीशे को निकाल कर देखा जैसे कलेजा ही चिर गया हो बीच से। एक लम्बी साँस ली और निरीह भाव से सामने राह की ओर देखने लगा।

तभी पाठशाला के पंडितजी आ गये तो प्रणाम करके श्यामसुन्दर ने कुशल पूछी।

पंडितजी के मुख में सुरती भरी थी। नीचे के ओठ को ऊपर की ओर खींच कर विचित्र स्वर में बोले—मुझे प्रतिश्याय की सम्भावना है। श्रीमान् के यहाँ कोई 'नस्य' है?

श्यामसुन्दर ने हाथ जोड़ कर कहा—पंडितजी, मैं कुछ समझ नहीं पाया। हिन्दी में कहिये।

पंडितजी ने कहा—नस्य का अर्थ नहीं जानते? नस्य अर्थात् हुलास।

श्यामसुन्दर ने सिर हिला कर कहा—समझ गया। और पुड़िया में हुलास

देकर कहा—श्रीमान्, इसे यहाँ न सूँघें। छींकें आयेंगी तो यहाँ भी इस रोग के कीटाणु फैलने की आशंका है।

पंडितजी हँसते हुए चले तो दरवाजे पर बहेरे जी से टक्कर खा गये। उसने झट चरण-स्पर्श कर लिया तो शान्त होकर बढ़ गये।

बहेरेजी मारवाड़ी बनिया था। जाने कब यहाँ आकर जम गया था। उसकी लेन-देन की कोठी थी। जेवर गिरवी रखता था ग़रीब गृहस्थों के, दीन किसानों के।

सेठजी श्यामसुन्दर के अति निकट आकर हाथ जोड़ कर बोले—म्हारी घरवाली का पेंडू दरद करे जी, डाक्टरजी! कोन्हो चोखी-सी दवा दो।

श्यामसुन्दर ने गम्भीर होकर कहा—सेठजी, मुझे दीखता है कि भगवान् ने तुम्हारे ऊपर कृपा-दृष्टि की है। समझे?

सेठ जी गद्गद् हो गये। शायद आँखों में आँसू आ गये। भगवान् को स्मरण करके सिर हिला कर रुद्ध कंठ से बोले हाथ जोड़े—समझ गयो जी। ब्राह्मण को आशीर्वाद ब्रह्मा को वचन है। और पास आकर बोले—अब क्या करूँ डाक्टर जी? म्हाने कहो न, खरचा की चिन्ता न करो।

श्यामसुन्दर ने कहा—सुनो, मैं एक लेप देता हूँ। इसे कड़ुये तेल में मिलाकर लगवा देना, जहाँ तकलीफ़ हो। फिर मिलते रहना मुझ से। खूब सावधान रहने की ज़रूरत है सेठ जी, समझे? इसमें जान-जोखिम भी है औरत को।

सेठ का चेहरा एकदम उतर गया। व्यस्त, करुण दृष्टि से श्यामसुन्दर को ताक कर बोले—थारी सरन हूँ डाक्टर। फिर काँप कर बोले—परदेश माँ पड़्या हूँ, महाराज! म्हारी रक्षा करो। और जल्दी से ब्राह्मण के पैर छू कर डबडबाई आँखें लिये खड़े हो गये।

श्यामसुन्दर ने डिबिया में लेप दिया और सेठ की पीठ ठोंक कर कहा—कोई डर नहीं है सेठ जी! मैं जिसका रक्षक हूँ, उसका यमराज भी कुछ नहीं बिगाड़ सकते। लाओ, दाम निकालो। यह तो प्राइवेट दवा है। छिपाकर रखनी होती है!

'क्या दूँ?'—सेठ अंटी टटोल कर बोले।

श्यामसुन्दर ने अँगुलियाँ हिला कर कहा—पाँच रुपये। ज्यादा नहीं लूँगा।

फिर क्रमशः रोगियों का ताँता लग गया। उसके हाथ फुरती से चलने लगे। दवायें देता गया, पट्टियाँ बाँधता गया। हँसी-मजाक करता गया हर-एक से। रह-रह कर सारा कमरा अट्टहासों और खिलखिलाहटों से गूँजता रहा।...

ग्यारह बजे डिस्पेंसरी बन्द हो जाने का समय था, पर यह नियम शायद ही कभी पूरा हो पाता हो। अक्सर बारह बज जाते, श्यामसुन्दर को काम निबटाते-निबटाते। वही आज भी हुआ। नये डाक्टर साहब ठीक समय पर हैट लगाकर चले गये। पर श्यामसुन्दर की छुट्टी न हुई। स्टूल से उठते-उठते, बूढ़ा कुन्दन मुराव लँगड़ाता-लँगड़ाता सामने आ खड़ा हुआ। उसकी 'परिया' पकी थी। खूब गहरा घाव हो गया था। श्यामसुन्दर ने बड़ी सफाई से मलहम लगा कर नयी पट्टी बाँध दी और उन्मुक्त प्रसन्नता से बोला—दाऊ, दो दिन और आओ। बिलकुल सुखा दूँगा इस घाव को।

बूढ़ा मुराव लाठी लेकर लँगड़ाता चला। पर उससे चला न गया। किसी तरह दो कदम घिसट कर बाहर वाला थमला पकड़ कर खड़ा हो गया। उसका वह पैर थर-थर काँप रहा था।

श्यामसुन्दर भीतर से लपक कर आया और बिना कुछ बोले उस बूढ़े को अपने कन्धों पर लादने लगा तो मराव घबरा कर 'नाहीं, नाहीं' करने लगा। श्यामसुन्दर ने एक न सुनी। हनुमान की तरह दौड़ता चला गया, मुराव को कन्धों पर लादे।...

जवान लड़का शरम से मुँह छिपा कर भीतर घुस गया। बुढ़िया यह दृश्य देख कर 'हाय-हाय' कर उठी। बूढ़े ने सिर झुका लिया। श्यामसुन्दर ने कमर पर हाथ रख कर कहा—दादी यह सामने वाली लौकी मुझे तोड़ दे। आशीर्वाद दूंगा कि नाती-पोता हों तेरे।...

लौकी झुलाता चला आ रहा था। अपना डेरा दस कदम रहा होगा कि एक अति प्रिय मुखड़ा राह के किनारे चमक उठा। धीरे-धीरे धूल में नंगे गोरे चरण रखती चली आ रही थी नजर नीची किये, लाज का आवरण ओढ़े।

श्यामसुन्दर ने आगे बढ़ना रोक दिया। चारों ओर देख कर खाँसा और सिर हिला कर गा उठा—

'अकेली मति जइयो राधे,
जमुना के तीर......'

राधा ओठों में मुसकान छिपाये आगे बढ़ती आई और बिना इधर देखे श्यामसुन्दर की कोठरी में जाने लगी तो उसने स्वर को तीव्र करके गाया—

'जमुना किनारे चोर बसतु है श्यामसुन्दर अहीर।
अकेली मति जइयो राधे, जमुना के तीर......'

और वह दौड़ता आया अपनी कोठरी की ओर। राधा किवाड़ पकड़े खड़ी थी।

आनन्द में डूब कर वह बोला—धन्य भाग्य मेरे! चलिये, तशरीफ़ रखिये।

राधा ने किवाड़ों की ओर देखते हुए तनिक हँस कर कहा—हम चोर के घर काहे को बैठें? अहीर के घर में! कब से हो गये अहीर?

श्यामसुन्दर ने आँख फैला कर कहा—खुदा की क़सम, तुम अगर मुसलमान होतीं तो मुसलमान हो जाता। अहीर होने में क्या जाता है मेरा!

राधा ने हँस कर कहा—सिवाय बातें बनाने के तुम्हें और कुछ भी आता है? यह लो अपने रुपये।

'काहे के रुपये लाई हो राधे!'

हँस कर बोली—मेरा नाम मत लिया करो इस तरह। तुम कौन होते हो मुझे इस तरह पुकारने वाले? रुपये अम्माँ ने भेजे हैं। कहा है, हम मान्य का पैसा नहीं रक्खेंगे। धोती के दाम भेजे हैं। साढ़े-सात रुपये हैं। गिन लो अच्छी तरह।

श्यामसुन्दर हथेली फैलाये क्षण भर रुपयों को देखता रहा फिर सिर उठा कर बोला—ढाई रुपया और दो। तुमने तेल मँगाया था। ढाई रुपये की शीशी थी। लाओ, निकालो।

हँस कर बोली—वह नहीं मिलेगा। मुझे देवर की चीज लेने का अधिकार है। एक पैसा न दूँगी।

श्यामसुन्दर सिर खुजलाने लगा।

हँस कर बोली—रात उस मुसलिया को दो रुपये यों ही गँवा आये और मुझ से तेल के दाम माँग रहे हो! शरम नहीं लगती तुम्हें ढाई रुपल्ली माँगते?

श्यामसुन्दर जल्दी-जल्दी सिर हिलाता बोला—अब नहीं सहा जाता ! अब नहीं रहा जाता ! और अति शीघ्रता से छाती के बटन खोल कर नयन मूँद कर बोला—लो, निकाल लो कलेजा ! मारो खंजर ! मुनिया को बहिन मानता हूँ, सो दो रुपये दे आया । तुम्हें कलेजा दे रहा हूँ । मारो खंजर !

किसी प्रकार हँसी रोक कर बोली—मैं क्या करूँगी कलेजे का ? मैं कौन हूँ तुम्हारी, जो कलेजा दिये दे रहे हो ? अभी तो तेल के दाम माँग रहे थे मुझ से !

तभी खट-से आवाज़ हुई । श्यामसुन्दर ने घबरा कर अपना सीना ढँक लिया । देखा, नये डाक्टर साहब बरामदे में खड़े हैं ।

राधा तनिक घूँघट खींच कर एक किनारे से निकल गई ।...

साहब सामने के नीम पर जाने क्या देख रहे थे । श्यामसुन्दर अकारण ही हाथ मलता पास खड़ा था ।

साहब ने उधर मुँह किये-किये ही पूछा—यह औरत कौन थी ?

'जी', हाथ मलता बोला—जी, इसी गाँव की लड़की है ।

'तुम्हारे पास क्यों आई थी इस वक्त ? उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है ? मैं जानना चाहता हूँ ।'

श्यामसुन्दर ने संक्षेप में बतलाया कि यहाँ से बहुत दूर, उसकी ननिहाल वाले गाँव में इस लड़की की शादी हुई थी । पति से श्यामसुन्दर का बचपन का परिचय है । पति के चाचा को छोड़कर और कोई न था । सन्तानहीन और विधुर चाचा ने पुत्र की तरह उसे पाला-पोसा, विवाह किया । जवानी के नशे में चूर होकर वह कृतघ्न चाचा को दुःख देने लगा । अन्त में एक दिन भारी उपद्रव मचा कर अपनी गृहस्थी अलग करने लगा तो इस मोहमयी राधा ने चचिया-ससुर का साथ छोड़ने से साफ इनकार कर दिया । रामधुन क्रोध के वशीभूत होकर पत्नी के साथ चाचा के अकथनीय सम्बन्ध की बात कह कर उसी रात को गाँव छोड़कर कहीं चला गया । हतभागिनी हृदय पर पत्थर रख कर पितृ-तुल्य चचिया ससुर की सेवा में लगी रही । फिर एक और वज्रपात हुआ । अपनी सब स्थावर-जंगम सम्पत्ति स्नेहशीला पुत्र-वधू के नाम करके वे चाचा जी

परमधाम सिधार गये। तब से यह अनाथिनी यहाँ माँ के पास रह रही है। कहानी पूरी करके श्यामसुन्दर ने कहा—रामधुन मुझ से उम्र में दो-तीन मास बड़ा है। इसलिए गाँव का रिश्ता मान कर...

नये साहब ने संतोष से सिर हिला कर कहा—ओ, देवर-भौजाई का मामला है। तुम्हारी गृहस्थी, तुम्हारे बाल-बच्चे कहाँ हैं? गाँव में?

'जी, मेरे गृहस्थी नहीं है।'

'क्या अविवाहित हो?'

'जी, रँडुआ हूँ।'

'रँडुआ' शब्द सुन कर नये साहब के ओठों पर हँसी आ गई। क्षण भर रुक कर बोले—जरा हमारा वाला कमरा खोलना। कुछ जरूरी कागज यहाँ भूल गया था।

× × × ×

दुपहरिया में नये साहब की बातें और कहने का ढंग बार-बार याद आता रहा। 'यह औरत इस वक्त तुम्हारे पास क्यों आई थी? इसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध है?' और जाने कैसी एक कष्टदायिनी अनुभूति मन को कुरेदती रही। कोठरी का वातावरण गम्भीर हो गया। उसी गम्भीरता में श्यामसुन्दर सो गया।

नींद टूटी तो धूप का नामोनिशान न था। तब वह भजनलाल के इंजेक्शन को याद करके द्रुतगति से भागा।...

दरवाज़े पर आकर उसने संतोष की साँस ली। एक बार पश्चिमाकाश को निहारा। 'अभी दिन डूबने में काफ़ी देर है' सोचता हुआ जो वह चौखट पर पैर रखने लगा तो किसी स्त्री-कंठ की आवाज़ सुन कर ठिठक रहा।

यह दरिद्रता के मारे, रोगग्रस्त, भजनलाल की तपस्विनी ब्राह्मणी का स्वर था। लड़के से समझा कर कह रही थी—'डाक्टर जी से कहियो कि हमें अम्माँ ने भेजा है। ये बँदुले हैं चाँदी के। इन्हें रख लीजिए और पाँच रुपये दे दीजिये। बहुत ज़रूरत है। कहना अम्माँ ने आप के हाथ जोड़े हैं। कहना, 'पाँच न दें तो चार ही दे दें।' सँभाल कर ले जइयो बेटा! ले बगल में दबा ले पोटली।

लड़का शायद बाहर को आ रहा है। श्यामसुन्दर एक कदम पीछे हट कर, दीवार की ओट में खड़ा हो गया।...

थोड़ी देर बाद वह चित्त को स्वस्थ करके चेहरे पर मुसकान लिये घर के आँगन में जा पहुँचा और स्वर को तीव्र करके पुकारा—कहाँ हो सुरेश की अम्माँ? ओ मेरे भाई की जोरू!

सुरेश की अम्माँ ने भीतर कोठे से जवाब दिया, अति मीठी बोली में—बैठो सुरेश के चाचा! अभी आई।

छोटी लड़की कलावती कोने में बैठी अपनी गुड़ियों को सजा रही थी। श्यामसुन्दर उसी के पास ज़मीन पर जा बैठा और गुड्डे-गुड़ियों को निहार कर पूछने लगा—इनमें तेरा खसम कौन-सा है री?

हट्!—कह कर कलावती शरमा कर भागने लगी वहाँ से तो श्यामसुन्दर ने उसे प्यार से पकड़ लिया, फिर अपनी जेब से वे चाँदी वाले खँडुये निकाल कर बालिका की गोरी-गोरी कलाइयों में पहिना कर सुख में डूब गया। कुछ कहना चाहता था, पर कुछ कह नहीं सका।

तभी भाभी आ गई भीतर से और सूखे अधरों पर बरबस हँसी लाकर गुड़ियों को निहारती बोलीं—कोई पसन्द आ गई हो तो जेब में रख ले जाओ। रात को अपने पास सुला लेना।

श्यामसुन्दर ने कानों पर दोनों हाथ रख कर कहा—शिव-शिव! यह क्या कर रही हो भाभी? मैं ब्रह्मचारी आदमी ठहरा। स्त्री-स्पर्श मेरे लिए पाप है। तपस्या-काल है मेरा।

भाभी ने मानो दुखी होकर कहा—एक की आन लेकर बैठे हो। कुढ़-कुढ़ कर मर गई शायद अभागिन। अब करना जीवन भर तपस्या!

श्यामसुन्दर ने प्रसंग बदल कर कहा—पानी गरम किया?...जरा इधर आओ फिर ज़रा-सा आड़ में होकर बोला—लो ये रुपये। बहेरे जी ने पाँच ही दे दिये। लेकिन साढ़े-पाँच आना सूद लेगा। समझीं?

भाभी ने सकपका कर पूछा—तुम्हें सुरेश मिला था क्या? कहाँ रह गया वह?

तभी कलावती भी आ खड़ी हुई दोनों के बीच और माँ को अपने खडुये

दिखा कर अति प्रसन्नता से बोली—चाचा ने मुझे दिये हैं। अब मत छीनन अम्माँ!

श्यामसुन्दर ने साँस खींच कर कहा—तुम इतनी दुष्ट हो भाभी, कि जी आ रहा है मेरे कि अभी गरदन काट लूं तुम्हारी। तुमसे मैंने कहा था कि किस चीज़ की जरूरत हो तो बतलाना। औरत जात हो न? औरत की बुद्धि हमेश उल्टी चलती है। लड़की के हाथों से खँडुये उतारते तुम्हें दया नहीं आई? तु बड़ी बेरहम हो!—चलो, पानी लाओ।

भाभी ने सिर न उठाया। चुपचाप पानी लेने चली गई।...

इन्जेक्शन लगा कर वह घर से निकलने लगा तो उसी दहलीज में भाभी ने उसका हाथ पकड़ लिया और वह पाँच रुपये वाला नोट जल्दी से उसके हाथ में ठूँसती, बोली—यह लिये जाओ देवर! यह मैं न ले सकूँगी!

स्तब्ध खड़े श्यामसुन्दर ने बड़ी कठिनता से पूछा—क्यों?

तब जाने किधर से आँखों में पानी भर आया। छर्-छर् करके आँसू बहात भाभी ने काँपती वाणी में कहा—इतना बोझ मुझ से नहीं सहा जायगा देव बाबू! मैं बहुत दब गई हूँ। अब और मन भर का पत्थर रख के मेरी जान ले लोगे क्या?

श्यामसुन्दर स्तब्ध खड़ा रहा।

भाभी ने दीवार से सिर टेक कर छर् छर् आँसू बहाते कहा—मैं पापिनी रो सोचती हूँ कि आज अकेले में पैर पकड़ लूँगी देवर के और पैरों पर सिर रख क पड़ी रहूँगी और तो कुछ नहीं है मेरे पास। कैसे मैं तुम्हारी पूजा करूँ प्राणदाता

श्यामसुन्दर की पीठ पर जैसे किसी ने चाबुक मार मार दिया सपाक् से तिलमिला गया। पलक मारते उसके हाथ भाभी के चरणों से जा लगे। फिर चो खाये हुए सीने को उभार कर मर्द होकर भरे गले से बोला—आज माफी देता अब आगे अगर कभी इस तरह मेरे चोट मारी तो तुम्हारा मुँह न देखूँगा भाभी मेरा हृदय भी तुम्हारी तरह ही रक्त-मांस का है। इस तरह अब कभी मत कुचलन इसे। रुपये रक्खो ये। तुम क्या समझती हो कि अपना पेट काट कर तुम्हें दे र हूँ? अरे, ये रुपये तो आज मैंने उसी मारवाड़ी से ऐंठे हैं। ले लो, भाभी, तु

मेरे सिर की क़सम !

हार कर भाभी ने आँसू पोंछते हुए नोट ले लिया तो श्यामसुन्दर 'सलाम भाभी' कह कर शीघ्रता से भाग निकला।...

फिर कहीं मन न लगा। जाने कैसी उदासी मन के चारों ओर घिर आई थी। अन्यमनस्क भाव से शिथिल पैरों से वह जैसे अनजाने ही मुनिया के आँगन में आ खड़ा हुआ।

बूढ़े बकरीदी मियाँ अभी-अभी काम पर से लौटे थे। डाक्टर को बाहर खड़ा देख घबरा कर भीतर से खटिया लेने दौड़े।

मुनिया रसोईघर में बैठी 'बेभर' की रोटी सेंक रही थी। रोटियों की मीठी-मीठी सुगन्ध छाई थी घर में। श्यामसुन्दर उसके पास आ खड़ा हुआ और आगे को झुक कर पूछने लगा—क्या पकाया है कलमुँही ?

मुनिया का गोरा मुख आँच के आगे बैठे रहने से लाल हो उठा था। अलकों पर हलकी-हलकी राख जमी थी। घुटने पर सिर रक्खे हौले-हौले दोनों सुन्दर हथेलियों से रोटी बना रही थी।

ओठों पर अति मन्द मुस्कान ला कर विभोर होकर बोली—बथुआ का साग राँधा है !

श्यामसुन्दर ने धीरे से पूछा—मुझे खिलायेगी ?

स्नेह से आर्द्र स्वर में बोली—खा लो भैया !

बकरीदी मियाँ खाट बिछा कर खड़े थे। विनय से बोले—आओ, बेटा ! इधर आ जाओ।

श्यामसुन्दर ने खाट पर बैठ कर एक अँगड़ाई ली। बोला—बड़े मियाँ कुछ हुक्का उक्का पिलाओ न !

बड़े मियाँ हें-हें करके जमीन पर बैठ गये तो जैसे श्यामसुन्दर ने याद करके कहा—रस्सी-बाल्टी कहां है ? लाओ पानी भर लाऊँ।

मुनिया ने वहीं से मीठी बोली में कहा—मैं भर लाई हूँ भैया !

बड़े मियाँ ने आगे सरक कर डाक्टर के पैर पकड़ लिये कस कर। फिर सूखे खुरदरे हाथों से उन पैरों को सहलाते बोले धीरे से—इन्सान और फ़रिश्ते में

फ़र्क रहने दो बेटा! दोनों को एक ज़मीन पर मत खड़ा करो। खुदा ताला मुझे हरगिज़ माफ़ नहीं करेंगे। तुम पानी भरोगे मेरा? या परवरदिगार?

पर श्यामसुन्दर ने ध्यान न दिया। वह फिर मुनिया के पास आ खड़ा हुआ और धीरे से बोला—तू ने राधा से क्यों कहा कि मैं तुझे दो रुपये दे गया था? क्यों कहा, चुड़ैल?

मुनिया हँसती-हँसती बोली—कहने को तबियत हुई। बस, कह दिया।

कहने को तबियत हुई! श्यामसुन्दर ने मुँह टेढ़ा करके कहा—

चुग़लख़ोर!

मुनिया उसी तरह हँसती रही।

तभी बाहर से शोरगुल की आवाज़ सुन पड़ी, जैसे बहुत से आदमी एक साथ दौड़ते चले जा रहे हैं।

बड़े मियाँ और श्यामसुन्दर दोनों एक साथ बाहर को लपके।

कुछ लोग बातें करते आगे बढ़ गये थे। कुछ दौड़ते आ रहे थे पीछे से। श्यामसुन्दर ने राह में खड़े होकर एक आदमी को कन्धा पकड़ कर रोक लिया और पूछा—क्या बात है? क्या हुआ?

उस आदमी ने त्रस्तभाव से कहा—जमींदार हरसहाय के बाग़ में फ़ौजदारी हो गई। दो क़त्ल हुए हैं।

'किसका क़त्ल हुआ है?'

आदमी ने कहा—'यह मुझे नहीं मालूम।' और वह भीड़ के साथ दौड़ता चला गया।

श्यामसुन्दर क्षण भर अवाक् खड़ा रहा फिर जैसे चौंक कर बोला—'बड़े मियाँ, तुम घर जाओ।' और लम्बे डग भरता वह भी बाग़ की ओर चल दिया।...

× × × ×

रात को दस बजते-बजते एक आदमी की जान निकल गई। दूसरा सिसक रहा था। श्यामसुन्दर पसीने से तरबतर होकर लगा रहा।

जाने किसने राय दी कि सदर ले चलो। वहाँ थाने में रिपोर्ट भी लिख जायगी, जुबानी बयान भी हो जायँगे और डाक्टर मुखर्जी हैं वहाँ, बड़े होशियार डाक्टर हैं।

बात कहते बीस लठैत चल दिये, मरणोन्मुख व्यक्ति को खाट समेत उठाये।

श्यामसुन्दर अवसन्न-सा होकर तमोली की दूकान पर आ बैठा और बारह बजे तक वहीं गुमसुम होकर धोक दिये रहा।

बहुत देर तक उसे नींद न आई और फिर सोया तो सपना देखने लगा। इतने वर्षों के बाद जाने कैसे उस दिन, उस रात को स्वर्गीया पत्नी पास आ खड़ी हुई घुँघट डाले! श्यामसुन्दर विभोर होकर उसका घूँघट हटाने लगा। लेकिन यह क्या!—यह तो राधा है!...

सबेरे भगवान् की पूजा करके वह चन्दन वाली कटोरी सामने रक्खे बैठा रहा। पुराने वृद्ध डाक्टर की याद आ रही थी। आज इस चन्दन को कौन लगायेगा? कितनी सरलता से उसके 'स्नेह का बन्धन' टूट-टूट गया है। और तब अचानक पत्नी की याद ताज़ा हो उठी। रात का स्वप्न याद आया और तब उसे एक गाना भी याद आया और अनजाने ही गा उठा—

'रँडुआ तो रोवे आधी रात,
सपने में देखी, कामिनी...'

गा ही रहा था कि 'सुर में सुर' मिलाकर एक आदमी और कान के पास आकर गाने लगा। यह अखाड़े का वही साथी था, जिसे उस दिन पुरबिया पहलवान ने पटक दिया था। श्यामसुन्दर उसे अपलक ताकने लगा। पर उसने आँखें मूँद ली थीं और कान पर एक हाथ रख कर झुक कर गा रहा था—

'ना कोई पीसै वाको पीसनो,
अजी, ना कोई राँधे वाको भात री,
सपने में देखी कामिनी...'

यह साथी भी 'रँडुआ' था। जब गाने से जी भर गया तो सामने की मेज,

पर जम कर बोला—गुइयाँ, रात से मेरा कान पिरा रहा है। कोई दवा डाल दो इसमें।

श्यामसुन्दर ने उसके कान में दवा डाली। फिर वह चन्दन भी उसी के माथे पर लगा दिया।

तभी लछमना ने पुकार कर कहा—मालिक, आपको नये साहब बुला रहे हैं।

नये डाक्टर की बड़ी मेज़ पर तीन-चार नुस्ख़ों के काग़ज़ फैले हुए थे और रोगी सामने खड़े थे। नये डाक्टर ने रोगियों को हटा दिया और एकान्त करके श्यामसुन्दर से पूछा—ये 'प्रिसक्रिप्सशन्स्' तुम्हीं ने लिखे हैं न ?

'जी,' श्यामसुन्दर ने काग़ज़ों को देखते हुए कहा।

नये डाक्टर ने पीछे को थोंक लगा कर पूछा—तुमने डाक्टरी की शिक्षा कहाँ पाई है ?

श्यामसुन्दर मुँह देखने लगा।

नये डाक्टर ने एक परचा उठा कर कहा—इस मरीज़ को पेचिश है। तुमने जो दवा लिखी है वह जुलाब की है !

दूसरा परचा उठा कर बोले—इस आदमी को खाँसी है। तुमने इसके लिए जो दवा लिखी है वह सिर-दर्द की है।

तीसरा परचा उठा कर बोले—इस औरत को 'ल्यूकोरिया' है; यह शायद 'प्रिगनेण्ट' भी है। तुमने इसे जो दवा दी है उससे इसे 'गर्भपात' हो सकता है।

श्यामसुन्दर सुन्न खड़ा था।

नये डाक्टर ने कहा—मैं नहीं जानता था कि तुम इस क़दर मूर्ख हो।

श्यामसुन्दर अवाक् खड़ा था।

नये डाक्टर ने अपनी क़लम उठा कर कहा—गो आउट !···

उस दिन फिर उनके कमरे में हँसी के फव्वारे नहीं छूटे और जल्दी-जल्दी दवायें तैयार करते श्यामसुन्दर के कानों में बराबर एक ही आवाज़ गूँजती रही—मैं नहीं जानता था कि तुम इस क़दर मूर्ख हो।—मूर्ख ! बार-बार यही एक शब्द आता रहा। श्यामसुन्दर ने खिन्न होकर खाना नहीं बनाया।

फिर दुपहरिया ढलते ही वह शिथिल गात लेकर भजनलाल के यहाँ चल दिया। सारे बाज़ार में वही कल वाली फौजदारी और क़त्ल की बात चल रही थी। सुना कि वह दूसरा आदमी भी सदर पहुँचते-पहुँचते मर गया।

श्यामसुन्दर राह में कहीं न रुका। यहाँ तक कि बाज़ार समाप्त हो गया और वह जगह आई जहाँ पक्का कुँआ था, कनेर का पेड़ था और नीचे सँकरी पगडंडी दूर तक चली गई थी।

श्यामसुन्दर नज़र दौड़ाकर देखने लगा और रात के स्वप्न की तरह देख पाया कि कंधे पर रस्सी लटकाये, खाली घड़ा लिये राधा चली आ रही है उसी पगडंडी से।

पूरब की ओर किसी मुराव की झोपड़ी थी। उसकी एक दीवार छाया लिये थी। श्यामसुन्दर उसी जगह आ खड़ा हुआ और सामने से आती गरम धूल में सँभल-सँभल कर कोमल चरण रखती राधा ने पास से गुजरते हुए बिना उससे दृष्टि मिलाये ही पूछा—यहाँ क्यों खड़े हो बाबूजी?

बाबूजी न बोले। राधा ने अपना घड़ा कुँए पर रख कर इधर बिना देखे ही कहा—गाना नहीं गाया! कोई गाना याद नहीं आ रहा क्या?

बाबूजी न बोले।

राधा ने घड़े में रस्सी का फंदा लगा कर होले से कहा—क्या कहीं से पिट कर आये हो बाबूजी? क्यों खड़े हो यहाँ छिपे-छिपे?

तब जाकर बाबूजी ने एक बार खाँस कर हाथ उठा कर तर्ज से कहा—'सुनिये राधा रानी—

ज़ेरे दीवार खड़े हैं, तेरा क्या लेते हैं।

देख लेते हैं, तपिश दिल की बुझा लेते हैं!'

राधारानी ने शायद सुन लिया। घड़ा भर कर बोली—दिल की तपिश मिट गई हो तो कुछ काम की बात कहूँ?

'फ़रमाइये!'

सिर डाले-डाले घड़े से रस्सी खोलती बोली—रङ्गरेजों के घर एक बच्चा

अभी छत से गिर पड़ा है। पैर टूट गये हैं उसके। बेहोश है तब से। जा सको तो उसके घर तक चले जाओ !

श्यामसुन्दर ने चमक कर कहा—'मैं अभी जा रहा हूँ। इतनी देर बाद कह रही हो !' और वह रँगरेजों की ओर भाग निकला।

× × × ×

भोर की बेला जब वह आलमारी से शीशियाँ निकाल कर मेज़ पर रख रहा था, नये डाक्टर ने अपने कमरे से आवाज़ दी—शर्मा !

श्यामसुन्दर हाथ का काम छोड़ कर भागा आया। नये डाक्टर ने अत्यन्त शान्त स्वर में पूछा—पाठशाला के पण्डितजी तुम से क्या दवा ले गये थे ?

'जी, हुलास।'

'वह हुलास था ?'

श्यामसुन्दर का सिर डोल गया। नये डाक्टर ने सिर हिला कर कहा—काली मिर्चों की बुकनी थीं न ?—और उस मारवाड़ी सेठ को तुमने क्या 'लेप' दिया था ? सच-सच बोलो।

श्यामसुन्दर ने हकला कर कहा—जी, ब्लूब्लैक की स्याही थी।

कड़ुये तेल में मिला कर, जिससे कभी न छूटे रोशनाई, क्यों ?

श्यामसुन्दर मेज़ पर हाथ टेंके खड़ा था।

नये डाक्टर ने कहा—और तुमने उस सेठ से कह दिया कि उसकी औरत 'प्रिगनेण्ट' है ! क्या उस मोटी औरत के इस जन्म में कभी बच्चा हो सकता है ? क्या लिया था तुमने उससे, सच-सच बोलो !

'जी, पाँच रुपये। साहब, वह···'

'मैं अब कुछ नहीं सुनना चाहता।'—नये डाक्टर ने शीघ्रता से कहा—गो आउट् !

श्यामसुन्दर अपनी जगह आकर बिलकुल शिथिल होकर बैठ गया। पर कब तक ? धीरे-धीरे रोगी आने लगे और धीरे-धीरे वह अपने में गति पैदा करने लगा।

देश और काल का भान भूलकर वह सिर झुकाये काम करता रहा कि समय पूरा हो गया। नये डाक्टर ने हैट उठाया और बाहर बरामदे में जा खड़े हुए तो फिर एक बार शर्मा की बुलाहट हुई। इस बार क्या सुनने को मिलेगा ?

पूछने लगे—तुमने कल लम्बरदार से यह कहा था कि डिस्पेन्सरी में इ'जेक्शन नहीं हैं ?

'जी।'

'लेकिन, इ'जेक्शन्स तो रक्खे हैं, अभी मैंने देखे हैं। क्यों मना किया तुमने ? क्या इसमें भी कोई साजिश है ?'

'जी, एक भजनलाल मुदर्रिस हैं। बहुत ग़रीब हैं। मैंने उनके लिए रख छोड़े हैं।'

'भजनलाल तुम्हारा रिश्तेदार है न! भाई लगता है ?'

'जी, नहीं, वे तो गौड़ ब्राह्मण हैं।'

नये डाक्टर ने क्षण भर रुक कर कहा—लेकिन यह नियम के विरुद्ध है ! किसी एक आदमी को दवा दी जाय और किसी दूसरे को वही दवा न दी जाय, आख़िर क्यों ?

'जी, लम्बरदार···'

'उसने तुम्हें कभी घूँस नहीं दी, यही न ?' नये डाक्टर ने शीघ्रता से कहा—तुम यह रवैया छोड़ दो। जाओ···

उसकी मेज़ के सामने अभी तक तीन-चार आदमी और खड़े थे, दवा लेने को। उनकी ओर जलती आँखों से देख कर चिल्लाया—भाग जाओ सब ! नहीं दूँगा दवा।

और फड़ाक्-फड़ाक् सब खिड़कियाँ दरवाजे बन्द करके अपनी कोठरी में आ लेटा···।

भरी दुपहरिया में, जब कि ज़मीन तवे की तरह तप रही थी, गोरे मुख पर पसीने की बूँदें लिये और मैला दुपट्टा ओढ़े मुनिया उस कोठरी के द्वार पर आ खड़ी हुई और आधी किवाड़ खोल कर उल्टे पड़े श्यामसुन्दर को निहारती हौले से बोली—भैया, सो रहे हो क्या ?

'नहीं, सो नहीं रहा हूँ मुनिया ? तू इस कुबेला कैसी आई !'—श्यामसुन्दर ने बिना हिले कहा।

मुनिया हौले से बोली—रात अब्बा के साढ़ू आये थे। बदायूँ के पेड़े दे गये हैं। मैं तुम्हारे लिए लाई हूँ।

श्यामसुन्दर उठ कर बैठ गया। उसके ओठों पर हँसी आ गई। मुनिया को पास बुला कर उसने गठरी खोल ली और एक पेड़े का टुकड़ा मुँह में डाल कर आँखें मूँदे बोला—हैं तो बढ़िया! तूने खाये ?

मुनिया हँस कर बोली—लो, कह तो रही हूँ कि मैंने छुये नहीं।

श्यामसुन्दर ने एक पेड़ा उसे देकर कहा—ले खा कर देख। और खुद भी खाता गया।

फिर श्यामसुन्दर ने जैसे याद करके कहा—मुनिया, तरकारी लेगी ? और फ़ौरन उस ओर जाकर तरकारी का बरतन उठा लाया और इधर-उधर देखकर बोला—दूँ किस में ?

मुनिया एलोमोनियम का कटोरा आगे करके बोली—लो, इसमें दे दो भैया! मैं कड़ुआ तेल लेने आई थी। अब फिर ले जाऊँगी।

तरकारी देते समय अचानक श्यामसुन्दर का पात्र मुनिया के पात्र से छू गया तो जैसे नाराज़ होकर बोला—अरी दुष्ट, मेरा कटोरा छू दिया!

मुनिया भी मानो नाराज़ होकर बोली—क्यों झूठ बोल रहे हो भैया ? मैं तो हाथ नीचा ही किये रही, तुम्हीं ने छुला दिया!

श्यामसुन्दर प्रसन्न भाव से बोला—अच्छा-अच्छा, भाग यहाँ से। मुझे सोने दे।

पर उसे फिर नींद न आई। चित्त जैसे बहुत शान्त हो गया था और कोई चिन्ता-फ़िक्र न रह गई थी उसे।

× × × ×

फिर रात हुई और फिर दिन निकला। और सभी घटनाएँ चलीं।

बाग़ के माली की सरहज बिलकुल चंगी हो गई थी। उसी खुशी में माली एक बड़ा-सा कटहल तोहफ़े में ले आया।

श्यामसुन्दर नये साहब के पास था। माली ने वहीं दोनों के सामने वह कटहल रख दिया और सलाम करके बाहर जा बैठा।

नये साहब क्षण भर उस लम्बे-चौड़े कटहल को देखते रहे। फिर पूछा—यह क्या है?

'जी, कटहल है।'

'यह तो जानता हूँ। मैं पूछ रहा हूँ, यह आदमी इसे यहाँ क्यों रख गया है?'

श्यामसुन्दर ने डरते-डरते कहा—जी, उसका मरीज़ चंगा हो गया है। शायद आपको भेंट देने लाया है।

नये साहब ने सिर हिला कर कहा—हरगिज़ नहीं, मैं इस तरह की चीज़ लेना क़तई पसन्द नहीं करता। इसे वापस कर दो।

श्यामसुन्दर ने माली के दुख की बात सोच कर डरते-डरते कहा—जी, यहाँ के लोग पुराने डाक्टर साहब को···।

नये डाक्टर ने बीच में ही उसे रोक कर कहा—पुराने डाक्टर नीच थे, इसीलिए मैं भी नीच हो जाऊँ? हटाओ इसे। रिश्वत की चीज़ें लेते तुम्हें शरम नहीं आती? तुम नाहक़ ही ब्राह्मण हुए। खूब पाप कमा रहे हो।

श्यामसुन्दर ने अपनी सारी ताक़त लगा कर सिर्फ़ यही कहना चाहा कि पुराने डाक्टर नीच नहीं थे। और वह कहने भी लगा—'जी, पुराने डाक्टर···'

पर नये डाक्टर ने और बोलने न दिया, काग़ज़ों पर पेंसिल मार कर बोले—शट् अप!

श्यामसुन्दर ने घबराकर अनजाने ही कह दिया—जी।

'जी क्या?'—कुढ़कर साहब ने पूछा।

श्यामसुन्दर और घबराया। घबरा कर जल्दी से बोला—जी, शट् अप्। और फिर अपने मुँह पर हाथ रख कर तत्काल भागा।

शायद नये साहब थोड़ा-सा हँसे।···

फिर वही सुनसान दुपहरिया आ पहुँची।

श्यामसुन्दर जैसे थक कर चकनाचूर हो गया था। सब जगह जैसे पीड़ा हो

रही थी। नीच, बेशरम, पापी!—क्या!—क्या वह सचमुच ही ऐसा है? क्या नये साहब ठीक कह रहे थे?

जाने कहाँ-कहाँ मन भटकता फिरा, जाने क्या-क्या याद आता रहा।

इस तरह जब वह स्वप्न और जागरण के बीच की स्थिति में नयन मूँदे एकाकी पड़ा था, एक अति स्निग्ध वाणी ने पैरों के पास पुकार कर कहा—सरकार जाग रहे हैं कि सोये हैं?

श्यामसुन्दर तन्द्रालस होकर उठ बैठा और बिना राधा की ओर देखे पूछने लगा—कहो, क्या बात है?

मीठी बोली ने कहा—सरकार के लिए 'षट्रस व्यंजन' लाई हूँ। आपकी सासजी ने भेजा है। क्या सरकार का जी कुछ ख़राब है?

श्यामसुन्दर ने फीकी हँसी हँस कर कहा—लाओ, सामने रक्खो। क्या लाई हो?

एकादशी को व्रत का 'उद्यापन' करके राधा की माँ ने थाल भर खाद्य पदार्थ भेजे थे। श्यामसुन्दर उन मिष्टान्नों पर, पूरी-कचौड़ियों पर, दही-रायते पर, एक नज़र डालकर हँसता-हँसता कहने लगा—अम्माँ से कहना, क्यों इस तरह बीच-बीच में मेरी ज़ुबान ख़राब कर रही हैं? सूखी रोटी और बिना छौंकी दाल-तरकारी खाने वाला आदमी एक दिन ये तर माल खा लेगा! उसके बाद?

राधा ने धोती से अपने चेहरे का पसीना पोंछा। धूप में चलने से उसका शुभ्र मुख बिलकुल सिन्दूरिया हो उठा था। पतले, लाल ओठों पर मीठी मुसकान लाकर बोली—सरकार क्यों इस तरह तकलीफ़ उठा रहे हैं? दासी को अपने पास रख लीजिये न, तन-मन से सरकार की सेवा करेगी।

श्यामसुन्दर ने सिर हिला कर कहा—सो तो ठीक है। डर सिर्फ़ इतना ही है कि दासी के असली हुज़ूर आ धमके कहीं तो फिर सरकार की चाँद होगी और जूते का तला होगा रामधुन के।

राधा मुँह में अंचल देकर हँसने लगी। फिर उसने अपने मुहल्ले की एक ऐसी ही कहानी सुनाई। श्यामसुन्दर उस कहानी को सुन कर हँसते-हँसते लोटन कबूतर हो गया।

सारा विषाद कपूर की तरह उड़ गया और शाम को वह भजनलाल के यहाँ से लौटकर अखाड़े में डट गया। आधा लोटा भाँग चढ़ाई और गुलाबी नशा लिये लाला की बैठक में आ जमा, जहाँ एक नया सँपेरा अपना बीन बजा कर लोगों को मन्त्र-मुग्ध कर रहा था।

आधी रात बीते वह नशे में धुत्त होकर जोरों से सिगरेट पीता अपने डेरे पर पहुँचा तो लछमना लालटेन और लाठी लिये खड़ा था। उदास होकर बोला—मालिक, मैं आपको ढूँढ़ने जा रहा था। ममेरा भाई आया है भागला, नानी मर रही है। चला जाऊँ मालिक?

श्यामसुन्दर ने मस्ती से कहा—चला जा। और कोठरी में बैठ कर उसने आधी रात को 'षट्रस व्यंजन' छके। खाता गया और झूमता गया।...

सुबह को उसे आलस्य घेरे रहा। शिथिल हाथों से शीशियाँ झाड़ रहा था कि नये डाक्टर की पुकार सुन पड़ी—लछमन, ऐ लछमन!

श्यामसुन्दर काम छोड़ कर दौड़ा आया और बोला—जी, वह रात अपनी ननिहाल चला गया। उसकी नानी बीमार है।

'किससे पूछ कर गया?'

'जी, मुझ से।'

'तुम उसे छुट्टी देने वाले कौन हो? मेरे पास क्यों नहीं भेजा?'

श्यामसुन्दर चुप हो गया। कोने में पानी का बाल्टा रक्खा रहता था। साहब ने उधर देखकर पूछा—इसमें आज पानी कौन डालेगा?

'जी' मैंने भर लिया है।'

तब साहब की नजर फर्श की ओर गई। और पूछा यहाँ झाड़ू किसने लगाई है?

'जी' मैंने लगा दी है।'

साहब घड़ी भर चुप रहे। फिर स्वर को थोड़ा नीचे उतार कर बोले—लेकिन यह सिद्धान्त के विरुद्ध है। जाओ।

एक घण्टे बाद फिर पुकार सुनाई दी—शर्मा!

फिर श्यामसुन्दर दौड़ा आया। साहब आज फिर तीन-चार नुस्खे फैलाये

बैठे थे। धौंक लगाकर बोले—सुना तुमने ? इन जाहिलों को जो मैंने सही दवायें लिखकर दी हैं, उनसे फ़ायदा नहीं हो रहा है। कहते हैं, वही पहिले वाली दवा दीजिये !

श्यामसुन्दर क्या जवाब दे, समझ नहीं पा रहा था। साहब ने तनिक हँसकर कहा—यहाँ के आदमी दुनिया के और आदमियों की तरह नहीं हैं शायद। शायद इन लोगों का दिल दाहिनी तरफ होता है। तभी न पेचिश में जुलाब की दवा फ़ायदा करती है, खाँसी में बदहजमी की दवा लाभदायक होती है।... आल राइट !' श्यामसुन्दर को वे पर्चे देते हुए कहा—जाओ वे ही उल्टी दवायें दो, इन उल्टी खोपड़ी वालों को।

श्यामसुन्दर शान्त भाव से वे कागज लेकर चल दिया तो किवाड़ के पास से सुन पाया नये डाक्टर धीरे-धीरे कह रहे हैं—कैसा अजीब मुल्क है ! कैसे अजीब आदमी यहाँ के !

× × × ×

इसी तरह सुख-दुख, मान-अपमान, हर्ष-विषाद और भलाई-बुराई के बीच दिन उभरते गये और रातें डूबती गईं।

और श्यामसुन्दर की हालत धीरे-धीरे ऐसी होती गई कि अकेला है तो अकेला है, कोई खींचकर ले गया तो चला गया। जाने क्यों उसका मन सुन्न-सा हो गया था, हँसता न था, रोता भी न था।

इसी तरह दो पखवारे बीत गए कि एक दिन फिर विचित्रता हो गई। भजनलाल मुदर्रिस रोगमुक्त हो गये थे। उनका लड़का सुरेश सुबह तड़के-तड़के ही आकर कह गया कि आज चाचाजी वहीं भोजन करें। उनके यहाँ कथा है सत्यनारायण की। दवाख़ना बन्द होने पर सीधे वहीं चले आयें !

पर श्यामसुन्दर को बिलकुल ही याद न रही। हाथ से दो रोटियाँ सेंक कर खाने बैठा था कि चिलचिलाती धूप में वह सुकुमार बालक दौड़ा हुआ आया और बोला—चलिये चाचाजी पिताजी और अम्माँ आपके इन्तजार में भूखे बैठे हैं। आप खा लेंगें तो हम लोग खायेंगे।

श्यामसुन्दर ने हाथ का ग्रास रख दिया और अपराधी की तरह पूछने लगा —मेरे लिए सब भूखे बैठे हैं ? तूने भी अभी नहीं खाया है रे ?

लड़के ने धीरे से सिर हिला दिया। श्यामसुन्दर ने लछमना को बुलाकर कहा—यह सब खाना उठा ले जाओ। और अति शीघ्रता से कपड़े पहिन कर वह बालक की अँगुली पकड़ कर लपक चला।...

दुपहरिया वहीं बीती, उसी आनन्द और हर्ष से भरी गृहस्थी में तीन बार पान खाये और दो बार सुरेश दौड़-दौड़कर चाचाजी के लिए सिगरेट खरीद लाया।

आज उसका हृदय बहुत प्रफुल्लित हुआ। इतने हँसी के चुटकुले उसने सुनाये की भाभी की आँखों में आँसू आ गये और सौम्य, शान्त, अध्यापक भजनलाल ने धीरे से कहा—तुम बड़े भारी मजाकिया हो। अगर किसी नाटक कम्पनी में होते तो नाम कमा लेते।

छोटी लड़की बराबर चाचा की गोद में लेट रही।...

धूप उतरती बेला वह उस घर से चला तो गाने की तबीयत हो रही थी। तभी नितान्त अप्रत्याशित रूप से उसने देखा कि तीसरे मकान से राधा निकल रही है। मकानों की यह पूरी कतार राधा के घर के पिछवाड़े पड़ती थी।

श्यामसुन्दर उमंग में भर कर आगे लपका। राधा सिर झुकाये चली जा रही थी। पलक मारते श्यामसुन्दर उसके निकट जा पहुँचा और सुन-सान पाकर पीछे-पीछे चलता आनन्द से गाने लगा—

'गोरी' पिछवाड़े का जाना छोड़ !
ओ गोरी, पिछवाड़े का...'

जैसे चोट खाकर राधा ने पीछे घूमकर देखा और भवें सिकोड़ कर बोली—धिक्कार है तुम्हें !

श्यामसुन्दर हक्का-बक्का रह गया।

पर राधा ने उसी भाव से कहा—लानत है तुम्हारी जवानी को !

श्यामसुन्दर ने हकला कर केवल इतना कहा—क्या हुआ ?

राधा ने कहा—इधर आओ जरा।

वह आड़ में उसे ले गई और सुनाया कि पुलिस चौकी का सिपाही मुबारक अली मुनिया के पीछे पड़ा है। मुनिया छोटे लाला के यहाँ दाल दलने का काम करने आती है तो यह पाजी सिपाही हर रोज राह में उससे भद्दे मजाक करता है। कल शाम को मुनिया को वहाँ से लौटते अबेर हो गई। मोड़ पर अँधेरा पड़ता है। यह पापी वहाँ छिपा खड़ा था। सो मुनिया को पकड़ लिया—'

कहते-कहते राधा रुक गई। श्यामसुन्दर को काटो तो खून नहीं। राधा ने फिर रुक-रुककर कहा—आज वह दुखियारी मेरे पास बैठी आँसू बहाती रही। मेरा खून खौल रहा है तब से। मैं तो तुम्हारे पास ही जा रही थी। तुम तो उसके भैया हो न! बहिन की इज्जत-आबरू लुटती है तो लुटने दो! तुम अपनी जवानी पर क्यों आँच आने दोगे?

श्यामसुन्दर थर-थर काँपने लगा।

राधा ने कहा—कुछ कर सको तो हामी भरो नहीं तो मैं इसका बदला लेकर तुम्हें दिखा दूँगी, मुनिया मेरी सखी है!

श्यामसुन्दर ने अति कठिनता से कहा—'मैं आज जान दे दूँगा!' और पलक मारते भाग चला।

नागिन की तरह फुँफकारती राधा पलक रोके श्यामसुन्दर की ओर देखती रही, जब तक वह दीखा।...

× × × ×

अखाड़े में भंग छन चुकी थी और पहलवान लँगोट कस रहे थे। तभी जाने किसने दौड़े आकर खबर दी कि छोटा डाक्टर चौकी पर मुबारक अली सिपाही को जूतों से मार रहा है। तब सबसे आगे वह भागा, वह पुरबिया पहलवान।...

पुरबिया ने श्यामसुन्दर को पीछे खींच कर मुबारक अली को हाथों से ही जो धुनना शुरू किया तो उसकी साँस रुकने लगी। यह देखकर एक समझदार साथी ने पहलवान को छुड़ा लिया।

श्यामसुन्दर हाथ में जूता लिये अभी तक खड़ा बुरी तरह हाँफ रहा था। उसके सम्पूर्ण चेहरे पर रक्त उभर आया था और आँखें जल रही थीं।

मुबारक अली अर्ध-मृत होकर जमीन पर पड़ा था, और उसके मुँह से और नाक से खून निकल रहा था।

पुरबिया पहलवान ने उसके आगे खड़े होकर आँखें चढ़ा कर कहा—खबरदार सरऊ, अब जो कभी 'बहिनिया' की ओर ताक्यो ! जौन पटाका देख हरामी, कि तोरे आँखीं के पुतरी निकसि के नाचै लागी !

और फिर उसने अपना चौड़ा पंजा फैलाया तो ज़मीन पर पड़े घायल सिपाही ने हाथ जोड़ कर कहा—पनाह माँगता हूँ ! ख़ुदा के वास्ते अब मत मारो पहलवान ! मैं मर जाऊँगा।

पहलवान मुबारक अली को घसीटता ले आया। पूरी भीड़ के सामने पहलवान ने उस पापी से मुनिया के पैरों पर सिर रखवाया।

पूरी भीड़ उस डगमग होकर जाते सिपाही के पीछे-पीछे चली गई तो श्याम-सुन्दर भीतर घर में घुस आया। मुनिया का चेहरा फ़क हो रहा था। चौखट पकड़े खड़ी थी। बड़े मियाँ डाक्टर के लिए खाट लेने दौड़े।

श्यामसुन्दर लाल आँखें लिये आँगन में खड़ा था। उसका ऐसा रूप देख कर मुनिया काँप उठी। श्यामसुन्दर उसी पर नज़र जमाये था। सहसा कठोर स्वर में बोला—इधर तो आ !

सहमी-सी मुनिया उसके पास आ खड़ी हुई। श्यामसुन्दर ने पलक मारते उसका जूड़ा पकड़ लिया और चिल्ला कर बोला—तू लाला के यहाँ क्यों काम करने गई ?

फल्-फल् करके मुनिया की आँखों में आँसू भर आये। पर श्यामसुन्दर ने ज़रा भी दया न खाई। ताक़त लगा कर जूड़ा खींचता चिल्ला कर बोला—जबाब दे हत्यारिन, तू क्यों काम करने गई ?

मुनिया की आँखों से आँसू टपकने लगे। करुण स्वर में रोती-रोती बोली—अब्बा की नौकरी छूट गई।

श्यामसुन्दर का हाथ ढीला हो गया। उसने धीरे-धीरे मुनिया का जूड़ा छोड़ दिया और वहीं जमीन पर सिर पकड़ कर बैठ गया।

मुनिया की आँखों से उसी तरह आँसू टपक रहे थे। वह श्यामसुन्दर से सट

कर बठ गई और छर्-छर् आँसू बहाती श्यामसुन्दर की बाँह पकड़ कर टूटी वाणी में कहने लगी—मुझे माफ़ कर दो भैया ! मैं अब कभी बाहर न जाऊँगी । चाहे अब्बा भूखे रहें, चाहे इनकी जान निकल जाय मैं तुम्हारी बात रक्खूँगी भैया ! मुझे माफ़ कर दो तुम्हारे पैरों पड़ूँ !—कह कर भैया के चरणों पर अपना अधम सिर झुकाने लगी तो भैया ने उस सिर को दोनों हाथों से रोक लिया और जोर से चीत्कार करके कहा—मुनिया ! और दुखियारी को छाती से चिपका कर फूट कर रो उठा ।

पुरबिया पहलवान जाने कब लौट आया था । उसने यह दृश्य देखा तो गद्‌गद होकर श्यामसुन्दर के आँसू पोंछता और खुद आँसू बहाता बोला—गुइयाँ, हमार जियरा टूक-टूक...तभी उसका हाथ मुनिया के सिर पर जा पड़ा तो बिलकुल पागलों की तरह कह उठा—हाय मोर बहिनिया ! हाय मोर चिरैया !···

वह पुरबिया पहलवान उसी दिन बूढ़े बकरीदी को अपने साथ ले गया और बड़े लाला के यहाँ स्थायी रूप से एक ऐसी नौकरी दिलवा दी जिसमें काम नहीं के बराबर करना पड़ता था ।...

× × × ×

दो दिन हुए, नये डाक्टर ख़ास इस्टेट में गये हुए थे । राजा साहब के बड़े भाई सख्त बीमार थे और वहाँ डाक्टरों का जमघट लगा था ।

सूरज डूबते-डूबते एक चपरासी आकर ख़बर दे गया कि नये डाक्टर सनीचर तक न आ सकेंगे । आप सब काम सँभाले रहें ।

श्यामसुन्दर अवसन्न होकर पड़ा था । न उसने फिर कुछ खाया, न बिस्तर बिछाया । अचेतन-सा हो गया था । उसी हालत में पड़े-पड़े जाने कब उसे नींद आ गई ।

पौ फटने के समय किसी ने उसे कन्धा पकड़ कर जगाया । श्यामसुन्दर एक भयंकर सपना देख रहा था । वह घबरा कर उठ बैठा और आँखें मल कर चारों ओर निहारने लगा तो पाटी के पास राधा की अम्माँ को बैठी पाया ।

राधा के टोले में जो डालचन्द मिस्त्री रहता था, उसका मँझला लड़का कलकत्ते में कहीं नौकरी करता था । वह लड़का बीस दिन की छुट्टी लेकर

घरवाली से मिलने आया था। उसने कल शाम राधा की अम्माँ को यह विचित्र समाचार सुनाया कि राधा का पति रामधुन कलकत्ते में है। एक फैक्टरी में नौकरी करता है। उसने एक बंगालिन रख ली थी। पिछले महीने वह बंगालिन झगड़ा करके भाग गई। रामधुन अब फैक्टरी की नौकरी छोड़ रहा है। वह किसी साथी के कहने से रंगून जाने की तैयारी कर रहा है।

बुढ़िया ने जल्दी-जल्दी पूरा क़िस्सा सुना कर कहा—बेटा, मुझे रात भर नींद नहीं आई। बेटा, तुम से भीख माँगने आई हूँ। बेटा, अपने भाई को लौटा लाओ। बेटा, रधिया का सिन्दूर चमका दो। बेटा, कलकत्ते चले जाओ। यह मैं पता लेती आई हूँ उसका। मैंने उस अभागिन से नहीं कहा। तुम्हारे हाथ जोड़ूँ बेटा, और किसी से चर्चा मत करियो। राम जानें, क्या हो, क्या न हो।

श्यामसुन्दर नीची नज़र किये बैठा रहा। उसने एक शब्द न कहा।

बुढ़िया गिड़गिड़ा कर पूछने लगी—जाओगे बेटा?

श्यामसुन्दर ने सिर उठा कर बुढ़िया की सजल आँखों को देखा और हँस कर बोला—ज़रूर जाऊँगा। आज ही जाऊँगा। अभी, इसी गाड़ी से!

बुढ़िया की आँखों से आँसू टपकने लगे।

श्यामसुन्दर ने उत्साह से कहा—मैं उसे खोज निकालूँगा। मैं उसे साथ लेकर लौटूँगा। मैं उसे बाँध कर लाऊँगा। तू अब तनिक भी चिन्ता न कर अम्माँ! मैं तेरे चरणों की शपथ खाकर...

बुढ़िया ने शीघ्रता से श्यामसुन्दर के मुख पर हाथ रख दिया और अपने आँचल से उसके पैर छू कर बोली—पाप में मत डुबाओ बेटा! और रोती गई, रोती गई। रोते-रोते ही उसने एक रुपयों की पोटली निकाली और आगे रखकर बोली—मैं तुम से कभी उऋण नहीं हो पाऊँगी कन्हैया!...

इस क़स्बे से रेलवे स्टेशन पाँच मील दूर था। ट्रेन की सवारियों के लिए बराबर लारी आती-जाती थी। दस बजे वाली ट्रेन कलकत्ते की ओर जाती है। सोचता-सोचता श्यामसुन्दर शीघ्रता से अपना बिस्तर तैयार करने लगा। और लारी पर चढ़ने वाला वही सब से पहिला यात्री था। लछमना सामान लिये साथ-साथ आया। श्यामसुन्दर ने उस से कहा कि 'राजा साहब की बहिन के

यहाँ जा रहा हूँ। एक बीमार को देखना है।......तीसरे दिन आधी रात को श्यामसुन्दर राधा के खोये पति रामधुन को साथ लिये यहाँ लारी से उतरा।

रामधुन को उसकी ससुराल तक पहुँचा कर श्यामसुन्दर हल्का मन लिये अपने डेरे पर पहुँचा तो शुक्ल पक्ष का चन्द्रमा नीम के पेड़ की आड़ में छिपा था।...

बहुत गहरी नींद में सोया। यहाँ तक कि राह चलने लगी और धूप छा गई चारों ओर।

लछमना ने आकर उसे जगाया और कहा—साहब परसों शाम ही आ गये थे।

श्यामसुन्दर ने लापरवाही से कहा—ठीक है। तेरी गाय बिया गई कि नहीं?

लछमना प्रसन्न होकर बोला—मालिक, आज खीस खाइये उसका। बछिया हुई है।

श्यामसुन्दर ने कहा—तू भाग्यवान है लछमना! फिर याद करके बोला—"तू नहीं रे, तेरी घरवाली। वह बड़ी भाग्यवती है।' और तब याद करके अपने से ही मानों बोला—वह भी भाग्यवती है। अभागा तो सिर्फ मैं हूँ, सिर्फ मैं! और तब उसके शुद्ध मानव ने मानो अति शान्त स्वर में कहा, 'दूसरों के सुख से ही सुखी रहो, श्यामसुन्दर! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ मित्र, आदमी का अपना सुख कुछ नहीं है।' श्यामसुन्दर ने मानो श्रद्धा से सिर नत कर लिया।...

× × × ×

आठ बजते-बजते नये डाक्टर ने उसे अपने पास बुला लिया और एकान्त करके लछमना से कहा—किसी को भीतर मत आने दो।' फिर मेज़ के सामने खड़े श्यामसुन्दर से कहा—बैठ जाओ। तुमसे कुछ बातें करनी हैं।

श्यामसुन्दर स्थिर-चित्त होकर बैठा था। तब नये डाक्टर ने अपने ड्राअर से एक लम्बा कागज़ निकाला और श्यामसुन्दर को देकर शान्त स्वर में बोले—इसे पढ़ लो।

श्यामसुन्दर ने पूरा कागज़ पढ़ लिया और उसे लौटाने लगा तो नये डाक्टर ने वैसे ही स्वर में कहा—मुझे बहुत अफ़सोस है कि मुझे तुम्हारे बारे में राजा

साहब से सब कहना पड़ा। तुम यक़ीन रक्खो, तुम्हारी जगह अगर मेरा अपना लड़का होता तो उसकी शिकायत भी मैं मालिक से करता ही। यह काग़ज़ तुमने पढ़ लिया है। यह पूरी लिस्ट है, तुम्हारे बेजा कामों की। तुम्हें इसके बारे में कुछ कहना हो तो कह सकते हो। कोई बात अगर मैंने असत्य लिखी हो तो बतला सकते हो। और वे श्यमासुन्दर की ओर प्रश्नमयी दृष्टि से देखने लगे।

तब श्यामसुन्दर ने धीमे स्वर में कहा—मुझे कुछ कहना नहीं है। आपने जो कुछ लिखा है, वह सब सत्य है।

नये डाक्टर ने क़लम आगे करके कहा—इस पर हस्ताक्षर करो अपना।

श्यामसुन्दर ने हस्ताक्षर कर दिया।

नये डाक्टर ने उस काग़ज को तह करके फिर ड्रावर खोला और एक दूसरा काग़ज निकाल कर बोले—राजा साहब से आज्ञा पाकर ही मैं तुम्हें यह काग़ज़ दे रहा हूँ। और चुपचपा वह दूसरा काग़ज उसके सामने रख दिया।

यह श्यामसुन्दर को नोटिस थी, जिसमें लिखा था कि कम्पाउंडर श्यामसुन्दर शर्मा को पहली तारीख़ से नौकरी से अलग किया जाता है, इन दो महान् अपराधों के कारण—(१) यह कि बिना कोई सूचना दिये, बिना आज्ञा लिये, वह तीन दिन नौकरी से ग़ायब रहा। (२) यह कि ज़मींदार हरसहाय के फौजदारी के केस में उसने ढाई सौ रुपया घूँस लेकर झूठी गवाही दी।

श्यामसुन्दर ने वह काग़ज सँभाल कर जेब में रख लिया।

नये डाक्टर सिर झुकाये हुए बोले—मुझे बहुत दुःख है कि मुझे तुम्हारे लिए यह काग़ज लिखना पड़ा। नियम के अनुसार, मैं तुम्हें दो मास का वेतन 'एक्स्ट्रा' दिलवाऊँगा। मैंने सदर को लिख दिया है। परसों नया आदमी आ जायेगा। यह टेम्परेरी प्रबन्ध है। तुम परसों से अपने कार्य से मुक्त हो।

श्यामसुन्दर ने उसी धीमे स्वर में पूछा—अब मैं जाऊँ?

जा सकते हो।...

बहुत समय के बाद, उस दिन फिर छोटे डाक्टर श्यामसुन्दर के कमरे में अट्टहास गूँजा। उस दिन वह हर एक मरीज़ से मज़ाक कर रहा था। बुढ़ियों

तक को नहीं छोड़ा। एक साथी ने ऐसा रंग देख कर कहा—आज क्या बात है डाक्टर, बड़े मस्त हो! गहरी छानी है क्या?

श्यामसुन्दर ने हँस कर कहा—बस यार, कुछ पूछो मत!...

× × × ×

हमेशा की तरह उस दिन भी बड़ी घड़ी ने ग्यारह बजाये और नये डाक्टर ने अपना हैट उठाया। आश्चर्य की बात थी कि उस दिन श्यामसुन्दर भी रोगियों से खाली हो गया ग्यारह बजते-बजते।

नये डाक्टर बरामदे में आ खड़े हुए और शायद अकारण ही श्यामसुन्दर के कमरे की ओर उनकी दृष्टि चली गई। जाने क्या देख रहे थे कि एक अजीब सी आवज ने उनको चौंका दिया।

यह दस कोस दूर के गाँव का हुलासी चमार था। नये डाक्टर के काले बूटों पर लोट कर बोला—सरकार मेरे धुनुआ की जान बचाओ। माई-बाप, धुनुआ को कुछ हो गया तो मैं बेमौत मर जाऊँगा।

पलक मारते दो आदमी धुनुआ को डोली पर लिये आ पहुँचे। डोली के साथ करुण क्रन्दन करती बुढ़िया चमारिन आई।

नये साहब ने एक बार ध्यान से चमार के जवान, इकलौते बेटे की परीक्षा की फिर व्यस्तभाव से श्यमासुन्द के पास आकर बोले—शर्मा, ऑपरेशन वाली मेज़ ठीक करो। जल्दी!

धनुआ की कंठ-नली पर एक अन्तर्मुख गाँठ भयंकर रूप से फूली हुई थी। उसका श्वांस बहुत धीर-धीरे चल रहा था! मरणोन्मुख अवस्था तक उसका बाप गाँव के उपचार करता रहा। जब कोई आशा न रही तो यहाँ लेकर भागा आया।

नये डाक्टर ने बड़ी सावधानी से उस गाँठ का ऑपरेशन कर दिया।

श्यामसुन्दर दत्तचित्त होकर सहायता कर रहा था।

सहसा नये डाक्टर घबरा कर पुकार उठे—शर्मा!

'जी।'

नये डाक्टर ने घबड़ा कर कहा—शर्मा, घाव का मवाद भरी चलता जा रहा

है। यह मवाद फेफड़े में चला जायगा। मवाद से कंठ-नली भर गई है। अब इसकी साँस रुक जायगी।—शर्मा, यह तो गया!

नये डाक्टर घबरा कर औज़ारों वाली आलमारी की ओर भागे। कोई ऐसा औजार है, कोई ऐसी पिचकारी है, कोई इस तरह की चीज़ है क्या?

वे अत्यन्त शीघ्रता से सब औजारों को उलटने-पलटने लगे। फिर जाने क्या हाथ में लिये आये ऑपरेशन वाली मेज़ की ओर।

और मेज से गज़ भर दूर खड़े रह गये। आगे पैर न बढ़े।

बिलकुल स्वप्न की तरह, बिलकुल 'उपन्यास' की तरह, नये डाक्टर ने देखा कि कम्पाउण्डर श्यामसुन्दर शर्मा धुनुआ के उस घाव पर ओठ लगाये मवाद को चूस रहा है! एक बार मुँह में भरा मवाद नीचे थूक दिया। फिर दुबारा ओठ लगा कर चूसा। फिर तिबारा।···

श्यामसुन्दर ने सँभाल कर पट्टी बाँध दी। फिर पसीने से तर मुख लिये नये डाक्टर के पास आकर बोला—आप हाथ धो लीजिये।

माथे का पसीना अँगुली से पोंछ कर तनिक-सा हँस कर बोला—बच गया। अब कोई डर नहीं है।

× × × ×

सारे दिन श्यामसुन्दर इधर-उधर घूमता फिरा। शाम हो गई। रात पड़ गई तो भी भटकता रहा।

बारह बजे वह अपनी कोठरी में लौटा। चारों ओर शान्तिदायिनी चाँदनी छाई थी। नीम का पेड़ अपनी छाया में आँखमिचौनी खेल रहा था चाँद की किरणों से।

श्यामसुन्दर अपनी कोठरी के दरवाजे पर आ लेटा। क्या हुआ? कहाँ से यह भाव उठा? उस पेड़ को, उस कोठरी को, उस चाँद को ताकते-ताकते मानो उस चाँद के कान हों, कह उठा—कल मैं जा रहा हूँ! कल चला जाऊँगा यहाँ से हमेशा के लिए!

जीवन के दस साल इस कोठरी में, इस नीम की छाया में बीत गये। आज आखिरी रात है। कल वह जाने कहाँ होगा?

एक भयंकर व्यथा से पीड़ित होकर वह उठकर बैठ गया। फिर टहलने लगा।

जरा दूरपर लछमा की टीन के आगे कुछ स्फुलिंग-सा चमक उठा। श्यामसुन्दर व्याकुल हृदय लिये उधर चला आया। लछमना की आँख खुल गई थी और वह उकड़ूँ बैठा चिलम पी रहा था। श्यामसुन्दर ने आधी रात में उसके आगे खड़े होकर कहा—लछमना, मैं सबेरे चला जाऊँगा?

'कहाँ मालिक?—' लछमना ने त्रस्तभाव से पूछा।

श्यामसुन्दर ने हँस कर कहा—मुझे नये साहब ने निकाल दिया है। कल मैं यहाँ से हमेशा के लिए जा रहा हूँ।

लछमना अँधेरे में गुम-सुम बैठा था।

श्यामसुन्दर ने प्यार के स्वर में कहा—लछमना, तू ने मेरे ऊपर बहुत एहसान किये हैं। तुझे कुछ भी बदले में नहीं दे जा रहा हूँ। भाई, जो कभी तेरे साथ बुरा व्यवहार किया हो, उसे याद मत रखना।

लछमना रोने लगा।

श्यामसुन्दर ने दीर्घ श्वास खींच कर कहा—सो जा बहुत रात हो गई। रो मत लछमना!...

...उसके संयम का बाँध टूट-फूट गया। उसने किसी से भी अपनी इस यात्रा के विषय में न कहा था। वह बात उसने अब पेड़ से कह दी, कोठरी से कह दी, लछमना से कह दी, चाँद से कह दी!

और कहाँ गई श्यामसुन्दर की धीरता, कहाँ गई मर्दानगी? वह अपने आँसू न रोक सका। घुटनों से छाती दबा कर आँखों से गरम पानी बहा कर निःशब्द चीत्कार करके श्यामसुन्दर 'अगोचर से कहने लगा—मैं कल चला जाऊँगा!'

हाय, कहीं से सहानुभूति का एक शब्द नहीं, विदा का नमस्कार नहीं!

× × × ×

...दूसरे दिन सबेरे नये डाक्टर अपेक्षाकृत जल्दी आ गये। अपना कमरा खुलवा कर भीतर आ बैठे। कुछ पढ़ रहे थे शायद कि बाहर दरवाजे पर खड़े श्यामसुन्दर ने नम्रता से पूछा—मैं अन्दर आ सकता हूँ?

नये डाक्टर ने चौंक कर सिर उठाया। चेहरे पर प्रसन्नता भाव आ गया। उसी भाव से बोले—आओ, आओ।

श्यामसुन्दर ने सामने वाली कुरसी पर बैठ कर नम्रता से कहा—मैं आज ही जाना चाहता हूँ।

नये डाक्टर ने कहा—ठीक है। और कुछ?

एक प्रार्थना और है, श्यामसुन्दर ने एक पोटली सामने मेज़ पर रख कर विनम्रता से कहा—यह मेरी पाप की कमाई है। जुलाहों के मुहल्ले में कोई कुँआ नहीं है। उन्हें फर्लाङ्ग भर से पानी लाना पड़ता है। मेरी अभिलाषा थी कि जुलाहों के मुहल्ले में मसजिद के पास एक पक्का कुँआ बन जाता। इसी अभिलाषा को पूरी करने के लिये इतनी सालों से घूस ले रहा था पैसे वालों से और हर महीने अपनी तनख्वाह में से दस रुपये डाल रहा था झूठी गवाही का ढाई सौ रुपया भी इसी पोटली में है। कुल नौ सौ अड़तालीस रुपया, पौने ग्यारह आना रक़म है। मेरी प्रार्थना है कि आप इसे स्वीकार करें। कभी कुँआ बन सके तो बहुत अच्छा होगा। न बन सके तो आप इस रक़म को चाहे जिस तरह ख़र्च कर दें।

नये डाक्टर ने कहा—ठीक है। और कुछ?

श्यामसुन्दर ने अप्रतिभ हो कर कहा—क्या मेरी बातों पर आप को विश्वास नहीं हो रहा है?

डाक्टर ने गंभीर होकर कहा—मुझे विश्वास है, लेकिन शर्मा...

'जी, साहब!'

नये डाक्टर ने उसकी आँखों में आँखें डाल कर अत्यन्त दृढ स्वर में कहा—तुम यहाँ से जा नहीं सकते!

'जी?'

'तुम नहीं जा सकते!'—नये डाक्टर ने मानो शिथिल होकर कहा—मुझे बहुत अफसोस है शर्मा, कि मैं तुम्हें कल तक पहिचान नहीं सका। मुझे बहुत खुशी है शर्मा, कि मैंने कल तुम्हें पहिचान लिया।

श्यामसुन्दर ने कम्पित कंठ से कहा—आप को धोखा हुआ है साहब!

मैं सचमुच नीच हूँ, सचमुच पापी हूँ, सचमुच घूसख़ोर हूँ। मैं आपके साथ रहने के क़ाबिल नहीं हूँ। आप महान हैं।—कहते-कहते श्यामसुन्दर की आँखें सजल हो उठीं। उन्हीं जल-भरी आँखों से नये साहब को निहारता वह करुण स्वर में बोला—'अब मुझे जाने दीजिये। और मुझे आशीर्वाद दीजिये कि कभी मैं भी आपकी तरह 'मनुष्य' बन सकूँ—

श्यामसुन्दर का गला भर आया और दिल भर आया। वह उठ कर खड़ा हो गया और आगे को झुक कर नये साहब की चरण-रज लेने लगा तो नये साहब ने ताक़त लगा कर उसे रोक लिया। फिर उसके सामने खड़े होकर उसके दोनों हाथ पकड़ कर गद्गद स्वर में बोले—मेरी ओर देखो!

श्यामसुन्दर की आँखों से आँसू टपक रहे थे। उसने सिर न उठाया। नये साहब ने काँपती ज़ुबान से कहा—मेरी ओर देखो शर्मा!

तब श्यामसुन्दर ने अपनी आँसुओं में तरती आँखें ऊपर कीं। उन आँखों से कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। तो भी श्यामसुन्दर जान पाया कि नये साहब की आँखों से टपाटप आँसू गिर रहे हैं। उन्हीं आँसुओं के बीच नये साहब ने किसी तरह कहा—शर्मा, तुम्हारे बिना मैं अब ज़िन्दगी नहीं बिता सकूँगा। मैं तुम से विनय कर रहा हूँ शर्मा! मैं तुम से भीख माँगता हूँ! कहो, 'मैं नहीं जाऊँगा!' कहो शर्मा, 'मैं नहीं जाऊँगा!' कहो!

तब श्यामसुन्दर ने मानो बिलकुल शक्ति खो दी। रोता-रोता बोला—मैं नहीं जाऊँगा।

नये साहब ने श्यामसुन्दर को कसकर छाती से लगा लिया।

श्री विष्णु प्रभाकर

जन्मकाल	रचनाकाल
१८१२ ई०	१६३१ ई०

धरती अब भी घूम रही है

आयु नीना की दस वर्ष की भी नहीं थी, लेकिन बुद्धि काफी प्रौढ़ हो गयी थी। जैसा कि अक्सर मातृ-हीन बालिकाओं के साथ होता है, बुजुर्गों ने उसके लिए आयु का बन्धन ढीला कर दिया था। इसलिए जब उसने सुना कि कुछ दूर पर सोता हुआ उसका छोटा भाई सुबक रहा है, तो वह चुपचाप उठी। एक क्षण भयातुर दृष्टि से चारों ओर देखा, फिर उसके पास जाकर बैठ गयी।

तब रात आधी बीत चुकी थी। चाँद वर्षा का अन्त हो चुका था। फिर भी कुछ दूर पर सोते हुए उनके मौरा के परिवार के दूध से धुले कपड़े अन्धकार की कालिख में चमक रहे थे। वही चमक नीना के नन्हे-से दिल में कसक उठी। किसी तरह रुलाई रोककर उसने धीरे से पुकारा—कमल!...ओ कमल!

कमल आठवें वर्ष में चल रहा था। उसके छोटे-से खटोले पर एक फटी-सी दरी बिछी थी। उसपर वह लेटा था गुड़मुड़, पैर उसने पेट से सटा रखे थे और मुँह को हाथों से ढँक रखा था। रह-रहकर उसका पेट सिकुड़ता और सुबकियाँ निकल जातीं। उसने बहन की पुकार का कोई जवाब नहीं दिया। नीना भी इतनी सहमी हुई थी कि दूसरी बार पुकारने का साहस न कर सकी। चुपचाप कमर सहलाती रही और देखती रही। कई क्षण बीत गये, तो उसे सीधा करके उसका मुँह अपने दोनों हाथों में ले लिया। तब उसकी आँखें डबडबा आयीं और आँसू ढुलक-कर कमल के मुख पर जा गिरे। वह कुनमुनाया, फिर आँखें बन्द किये-किये बोला—जीजी।

नीना ने चौंककर कहा—तू जाग रहा था, रे?

'नींद नहीं आती, जीजी, पिताजी कब आवेंगे? जीजी, पिताजी के पास चलो।'

'पिताजी...'

'हाँ, जीजी! पिताजी के पास चलो। आज मुझे मौसाजी ने मारा था। जीजी, गिलास तोड़ा, तो प्रदीप ने और मारा हमें...जीजी, यहाँ से चलो!'

नीना ने अनुभव किया कि कमल अब रोया, अब रोया। वह विह्वल हो उठी। उसने अपना मुँह उसके मुँह पर रख दिया और दोनों हाथों से उसे अपने वक्ष में समेटकर वह शिशु-माँ वहीं लेट गयी। बोली वह कुछ नहीं। बस उस स्तब्ध वातावरण में उसे जोर-जोर से थपथपाती रही और वह सुबकता रहा—और बोलता रहा—जीजी! आज मौसी ने हमें बासी रोटी दी। सारा हलुआ प्रदीप और रंजन को दे दिया और हमें बस खुरचन दी और जीजी, जब दोपहर को हम मौसाजी के कमरे में गये, तो हमें घुड़ककर निकाल दिया। जीजी, वहाँ हमें क्यों नहीं जाने देते? जीजी, तुम स्कूल से जल्दी आ जाया करो। जीजी, पिताजी को जेल में क्यों बन्द कर दिया? वहाँ पिताजी को रोटी कौन खिलाता है? हम वहाँ क्यों नहीं रहते? प्रदीप कहता था तेरे पिताजी चोर हैं!...

तब एकबारगी अपने को धोखा देती हुई नीना जोर से बोल उठी—प्रदीप झूठा है!

और कहकर अपनी ही आवाज पर वह भय से थर-थर काँप उठी। उसने कमल को जोर से खींच लिया। कमल को लगा, जैसे जीजी बड़े जोर से हिल रही है, हिलती चली जा रही है। उसने घबराकर कहा—जीजी, जीजी, क्या है? तुम्हें बुखार आ गया है?

'चुप, चुप। मौसी आ रही है।'

सचमुच कोई उठकर जल्दी-जल्दी उनके पास आया और कड़ककर पूछा—क्या है, नीना? कमल, क्या है, रे?...ओहो! भाई से लाड़ लड़ाया जा रहा है। मैं कहती हूँ, नीना, तू यहाँ क्यों आयी? अरी, बोलती क्यों नहीं?...ओहो! बड़े बेचारे गहरी नींद में सोये हैं! अभी तो बड़ी गुटर-गुटर मेरी शिकायत हो रही थी। जैसे मैं जानती ही नहीं...हाय रे मेरी किस्मत! ओ बहन! तू खुद तो मर गयी, पर मुझे इस नरक में छोड़ गयी...

तभी मौसा हड़बड़ाकर उठ बैठे। पूछा—क्या बात है? क्या हुआ?

'हुआ मेरा सर। दोनों भागने की सलाह कर रहे हैं।'

'कौन भागने की सलाह कर रहा है? नीना-कमल? अरे, कुछ लिया तो नहीं? अल्मारी की चाबी तो है? रात ही तो पाँच सौ रुपये लाकर रखे हैं। अरे, तुम बोलती क्यों नहीं? क्यों री नीना, कहाँ है रुपया?'

बोलते-बोलते मौसा उठकर वहाँ आ गये, जहाँ दोनों बच्चे एक-दूसरे में सिमटे-सकपकाये कबूतर की तरह आंखें बन्द किये पड़े थे। मौसी ने तुनककर कहा—क्या पता, क्या-क्या निकालते, वह तो मेरी आंख खुल गयी।

और फिर झपट कर नीना को उठाते हुए कहा—चल, अपनी खाट पर! खबरदार जो पास सोये! बाप तो आराम से जेल में जा बैठा, मुसीबत डाल गया मुझपर। न लाती, तो दुनिया मुँह पर थूकती, बहन के बच्चे थे। शहर की शहर में आंखों में लिहाज न आयी। लेकिन कहनेवाले यह नहीं देखते कि हमारे घर में क्या सोने-चांदी की खान है। क्या खर्च नहीं होता! पढ़ाई कितनी मंहगी हो गयी है और फिर बच्चों की खूराक बड़ों से ज्यादा होती है।

रुपये नहीं निकाले, इस बात से मौसा को बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने खाट पर बैठते हुए कहा—मैं कहता हूँ, तुम तो...

'अब चुप रहो। भूले ही चचेरी बहन हो, हैं तो बहन के बच्चे।'

'हां, बहन के बच्चे हैं, तभी तो बहनोई साहब को रिश्वत लेने की सूझी और रिश्वत भी क्या ली, बीस रुपये की! वह भी लेनी नहीं आयी। वहीं पकड़ गये। हुँ:! मैं रात पांच सौ लाया हूँ। कोई कह दे, साबित कर दे!'

'इतनी बुद्धि होती, तो क्या अब तक तीसरे दर्जे का क्लर्क बना रहता?'

'और मजा यह कि जब मैंने कहा कि ३००-४०० रुपये का प्रबन्ध कर दे, तुझे छुड़ाने का जिम्मा मेरा, तो सत्यवादी बन गये, मैं रिश्वत नहीं दूँगा। नहीं दूँगा, तो ली क्यों थी! अरे, लेते हो, तो दो भी! मैं तो...'

मौसी ने सहसा धीमे पड़ते हुए कहा—चुप भी करो, रात का वक्त है। आवाज़ बहुत दूर तक जाती है...

काफी देर बड़बड़ाने के बाद जब वे फिर सो गये, दोनों बालक तब भी

जागते पड़े थे। उनकी आंखों की नींद आँसू बनकर उनके गालों पर जमती जा रही थी। और उसके धुँधले परदे पर बहुत-से चित्र अनायास ही उभरते आ रहे थे। एक चित्र मौसी का था, जो उन्हें रोते-रोते घर लायी थी और वह प्रेम दर्शाया था कि वे भी रो-रोकर पागल हो गये थे। लेकिन जैसे-जैसे दिन बीतते गये, प्यार घटता गया और दया बढ़ती गयी, दया जो ऊँच-नीच का आधार और दम्भ की जननी है। उसी दया ने उन्हें आज पशु से भी तिरस्कृत बना दिया...

एक चित्र मौसा का था, जो तीसरे-चौथे बहुत से नोट लेकर आते थे और उन्हें लक्ष करके कहते थे—मैं कहता हूँ, उसने रिश्वत ली, तो दी क्यों नहीं? अरे, तीन सौ देने पड़ते, तो पांच सौ बटोरने का मार्ग भी तो खुलता...

एक चित्र पिता का था, पिता जो प्यार करता था; पिता, जिसे जेल में बन्द हुए दो महीने बीत चुके थे और अभी सात महीने शेष थे...

नीना ने सहसा दोनों हाथों से अपना मुँह मींच लिया। उसकी सुबकी निकलनेवाली थी। उसने मन-ही-मन विह्वल-विकल होकर कहा—पिताजी! अब नहीं सहा जाता! अब नहीं सहा जाता! मौसा तुम्हारे कमल को पीटते हैं। पिताजी! तुम आ जाओ! अब हम उस स्कूल में नहीं पढ़ेंगे! अब हम बढ़िया कपड़े नहीं पहनेंगे! पिताजी! तुमने रिश्वत ली थी, तो देते क्यों नहीं?... क्यों...क्यों?

इस प्रकार सोचते-सोचते उसकी बन्द आंखों के अन्धकार में पिता की मूर्त्ति और भी विशाल हो उठी...एक व्यक्ति की मूर्ति, जिसकी वाणी में मिठास थी, जिसने दोनों बच्चों को नये स्कूल में भर्ती करवा रखा था, जहां उन्हें कोई मारता-झिड़कता नहीं था, जहां नाश्ता मिलता था, जहां वे तस्वीरें काटते थे, खिलौने बनाते थे।...

और घर में पिता उनके लिए खाना बनाता था, अच्छी-अच्छी किताबें लाता था। उसने उनके लिए उनकी मां के मरने पर दूसरी शादी तक नहीं की थी...

नीना ने ये सब बातें पड़ोसियों के मुँह से सुनी थीं। वे सब उसके पिता की बड़ी तारीफ़ करते थे। उसने अपने कानों से पिता को यह कहते सुना था कि

रिश्वत लेना पाप है। लेकिन फिर उन्होंने रिश्वत ली...क्यों ली?...आखिर क्यों?...

पड़ोसिन कहती थी—उसका खर्च बहुत था, आमदनी कम थी। वह बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाना चाहता था और अच्छी शिक्षा बहुत मंहगी है...

मंहगी...मंहगी थी, तो उसने रिश्वत ली। मंहगी होना क्या होता है?... और अब पिता कैसे छूटेंगे? मौसा कहते थे—जज को रिश्वत देते, तो छूट जाते। एक जज ने तीन हजार लेकर एक डाकू को छोड़ दिया था। एक आदमी, जिसने एक औरत को मार डाला था, उसे भी जज ने छोड़ दिया था। पांच हजार लिये थे...पांच हजार कितने होते हैं? सौ...हजार...दस हजार...लाख... कितने होते हैं?...

लेकिन मौसा कहते थे कि रिश्वत तो और तरह की भी होती है। एक प्रोफेसर ने एक लड़की को एम० ए० में अव्वल कर दिया था, क्योंकि वह खूबसूरत थी...

नीना ने सहसा दृष्टि उठाकर आसमान में देखा। तारे जगमगा रहे थे और आकाश गंगा का स्रोत धवल ज्योत्स्ना में लिपटा पड़ा था। उसने सोचा यह सब कितना सुन्दर है! क्या यहाँ भी रिश्वत चलती है?

उसकी सुबकियाँ अब बिल्कुल बन्द हो चुकी थीं और वह बड़ी गम्भीरता से सुनी-सुनायी बातों को याद कर रही थी, पर समझ में उसकी कुछ नहीं आ रहा था...खूबसूरत होना भी क्या रिश्वत है? मौसा कहते थे कि नये हाकिम के पास खूबसूरत लड़की भेज दो और कुछ भी करवा लो...खूबसूरत लड़की और रुपया, रुपया और खूबसूरत लड़की! इन्हें लेकर जज और हाकिम काम क्यों कर देते हैं? क्यों...? क्यों...? और खूबसूरत लड़की का वे क्या करते हैं? काम करवाते होंगे, पर काम तो सभी करते हैं।...फिर खूबसूरत लड़की ही क्या?... और उसके मौसा बहुत से रुपये लाते हैं, पर लड़की कभी नहीं लाते।...

उसकी समझ में कुछ नहीं आया। इसी उधेड़-बुन में रात बीत गयी। एकाएक मौसी की पुकार ने उसकी तन्द्रा तोड़ दी। उसने हड़बड़ाकर आंखें खोल दीं। मौसी कह रही थी—नीना, ओ नीना! अरी, उठेगी नहीं? साढ़े चार बजे हैं।

साढ़े चार! अभी तो पहरुआ तीन की आवाज़ लगाकर गया था और आकाशगंगा का मार्ग भी मद्धम नहीं पड़ा था। इतनी जल्दी साढ़े चार बज गये? मौसी फिर चीखी—अरी, सुना नहीं नीना? कब से पुकार रही हूँ। दोनों भाई-बहन कुम्भकर्ण से बाजी लगाकर सोते हैं! चल, जल्दी! चौका-बासन कर। मैं आती हूँ...

नीना ने अब अंगड़ाई लेने का नाट्य किया, फिर कुन कुनाती हुई उठी—जा रही हूँ, मौसी।

जीने तक जाकर न जाने उसे क्या याद आया, वह कमल के पास गयी और बड़े प्यार से कान से मुँह लगाकर उसे पुकारा। फिर उत्तर की प्रतीक्षा न करके उसे कोली में समेटकर नीचे लिये चली गयी।

और जब दो घण्टे बाद मौसी नीचे उतरी, तो स्तब्ध रह गयी। रसोई घर जैसे दूध में धोया गया हो। मैल का निशान तक न था। बर्तन चांदी-से चमक रहे थे। कई क्षण अविश्वास से आँखें मलकर मौसी बोली—आज क्या बात है, नीना?

'कुछ नहीं, मौसी।'—नीना ने सकपका कर उत्तर दिया।

'कुछ नहीं कैसे? ऐसा काम क्या तू रोज करती है?'

कमल ने एकदम कहा—मौसी! आज पिताजी आवेंगे।

'पिताजी?...'

'हाँ, जीजी कहती थी'...

मौसी ने अविश्वास और आशंका से ऐसे देखा कि कमल सहमकर पीछे हट गया। कई क्षण उस स्तब्ध वातावरण में वे स्तब्ध बने रहे, फिर जैसे जागकर मौसी बोली—तो यह बात है, बाप के स्वागत के लिये रसोई घर सजाया गया है!

फिर एकबारगी बड़े जोर से हँस पड़ी। बोली—पर रानी जी! अभी तो पूरे सात महीने बाकी हैं, सात महीने! वाह रे, बाप के लिए दिल में कितना दर्द है। इसका पासंग भी हमारे लिए होता, तो...

नीना की काया एकाएक [illegible] गया और आग्नेय नेत्रों से कमल की ओर देखती हुई वह वहाँ से चली गयी। उस दृष्टि से कमल सहम गया, पर उसे अपने

अपराध का तब पता लगा, जब वह हो चुका था। स्कूल जाते समय रास्ते में भी नीना ने इस अपराध के लिए कमल को खूब डाँटा, इतना डाँटा कि वह रो पड़ा। रो पड़ा, तो उसे छाती से लगाकर खुद भी रोने लगी।

× × × ×

जिस समय वे इस प्रकार रो रहे थे, ठीक उसी समय उनसे बहुत दूर एक विशाल भवन में अट्टहास गूँज रहा था। छोटे न्यायमूर्ति आज विशेष प्रसन्न थे! उनकी छोटी पुत्री मनमोहनी को कमीशन ने आकाशवाणी में उप डायरेक्टर के पद के लिए चुन लिया था। कई मित्र बधाई देने आये हुए थे। उसी हर्ष का यह अट्टहास था। यद्यपि बाकायदा चाय पार्टी का कोई प्रबन्ध नहीं था, तो भी मेज पर अच्छी भीड़-भाड़ थी। अंग्रेज लोग चाय पीते समय बोलना पसन्द नहीं करते थे, पर भारत वासी क्या उनके गुलाम हैं! वे लोग जोर-जोर से बातें कर रहे थे। मनमोहिनी ने चाय बनाते हुए कहा—मुझे तो बिल्कुल आशा नहीं थी, पर सचिव साहब की कृपा को क्या कहूँ...

सचिव साहब बोले—मेरी कृपा! आप को कोई 'न' तो कर दे? आपकी प्रतिभा...

डायरेक्टर कह उठे—हाँ, इनकी प्रतिभा! आकाशवाणी तो [illegible] ही इनकी प्रतिभा का क्षेत्र!

सचिव साहब के नेत्र जैसे विस्फारित हो आये। उत्फुल्ल होकर बोले—क्या बात कही है आपने! आकाशवाणी और नारी दोनों एक ही तो हैं। नाट्य, नृत्य संगीत और कविता...

'और प्रचार।'

'हाँ, प्रचार भी नारी के ही अधिकार-क्षेत्र में है।'

इसी समय बैरे ने आकर सलाम किया। तार आया था। खोलने पर जाना न्यायमूर्ति के बड़े बेटे की नियुक्ति इन्कमटैक्स आफीसर के पद पर हो गयी है। उसे मद्रास जाना होगा।

क्या, क्या?—कहते हुए सब तार पर झपटे। हर्ष और भी मुखर हो आया [illegible]मूर्ति ने अट्टहास करते हुए अपनी पत्नी से कहा—देखा, निर्मल! मुझे पूरा

विश्वास था, शर्मा मेरी बात नहीं टाल सकता। और मेरी बात भी क्या, असल में वह तुम्हारा मुरीद है। कहता था, औरत...

बात काटकर सचिव साहब बोले—जी नहीं, यह न आप हैं और न आपकी श्रीमती, यह तो आपकी कौटुम्बिक प्रतिभा है।

इसपर सब ने स्वीकृति-सूचक हर्ष-ध्वनि की। न्यायमूर्ति इसका प्रतिवाद कर पाते कि बैरे ने आकर फिर सलाम किया।

विस्मित-से डायरेक्टर बोले—इस बार किसकी नियुक्ति होने वाली है?

बैरे ने कहा—दो बच्चे हजूर से मिलने आये हैं।

हमसे?—न्यायमूर्ति अचकचाकर बोले।

'जी।'

'किसके बच्चे से?'

'जी, मालूम नहीं। भाई-बहन हैं। गरीब जान पड़ते हैं।'

'अरे, तो बेवकूफ, कुछ दे-दिवाकर लौटा दिया होता।'

'बहुत कोशिश की, पर वे कुछ मांगते ही नहीं। बस, आपसे मिलना माँगते हैं।

न्यायमूर्ति तेजी से उठे। मुख उनका विकृत हो आया, पर न जाने क्या सोच-कर वह फिर बैठ गये। कहा—आज खुशी का दिन है। यहीं ले आ।

दो क्षण बाद बुरी तरह सहमे, सकपकाये हुए जिन दो बच्चों ने वहाँ प्रवेश किया, वे नीना और कमल थे। आँसुओं के दाग गालों पर अभी शेष थे। दृष्टि से भय झरा पड़ता था। एक साथ सब ने उनको देखा। जैसे मदिरा के प्याले में मक्खी पड़ गई हो। न्यायमूर्ति ने पूछा—कहाँ से आये हो?

जी...जी...—नीना ने कहना चाहा, पर मुँह से शब्द नहीं निकले और बावजूद सबके आश्वासन के वे कई क्षण हतप्रभ, बिमूढ़, अपलक देखते ही रहे, बस देखते ही रहे। आखिर मनमोहिनी उठी। पास आकर बोली—कितने प्यारे, कितने सुन्दर बच्चे हैं!

इन शब्दों में न जाने क्या था। नीना को जैसे करन्ट छू गयी। एक बारगी दृढ़ कण्ठ से बोल उठी—आपने हमारे पिताजी को जेल भेजा है। आप उन्हें छोड़ दें...

कमल ने भी उसी दृढ़ता से कहा—हमारे पास पचास रुपये हैं। आपने तीन हजार लेकर एक डाकू को छोड़ा है...

नीना बोली—लेकिन हमारे पिताजी डाकू नहीं हैं। उनका खर्च बढ़ गया था। उन्होंने बस बीस रुपये की रिश्वत ली थी।

कमल ने कहा—रुपये थोड़े हों तो...

नीना बोली—तो मैं एक-दो दिन आप के पास रह सकती हूँ।

कमल ने कहा—मेरी जीजी खूबसूरत है और आप खूबसूरत लड़कियों को लेकर काम कर देते हैं।

× × × ×

रटे हुए पार्ट की तरह एक-के-बाद एक-जब वे दोनों इस प्रकार बोल रहे थे, तो न जाने हमारे कथाकार को क्या हुआ, वह वहाँ से भाग खड़ा हुआ। उसे ऐसा लगा, जैसे धरती सूर्य की चुम्बक शक्ति से अलग हो रही है। लेकिन ऐसा होता, तो क्या हम यह 'पुनश्च' लिखने को बाकी रहते? धरती अब भी उसी तरह घूम रही है।

स्व० पं० बलदेव प्रसाद मिश्र

रचनाकाल

१९३२ ई०

जन्म — मृत्यु

१९७० वि० — १९५९ ई०

जयापीड़

दिगन्तविश्रान्तकीर्ति महाराज ललितादित्य के पौत्र जयापीड़ को सिंहासनारूढ़ हुए तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे।

उन दिनों काश्मीर विद्यापीठ था। शैवागम, व्याकरण, तन्त्र, कामशास्त्र और साहित्य का अध्ययन करने भारत के विद्वान् वहां जाते थे। काश्मीर का विद्वत्समाज जबतक किसी काव्य की श्रेष्ठता की घोषणा न करता था, तबतक उसका आदर न होता था। काश्मीर के कवियों की रसना पर सरस्वती नृत्य करती थीं; उनके रस-पिच्छिल कविता-पथपर वह मन्थर गति से चलती थीं।

उन दिनों काश्मीर संगीत की वासभूमि था। संगीत की अधिष्ठात्री देवी वहां की गणिकाओं में अनेकधा विभक्त हो गयी थी। उन दिनों काश्मीर के निवासी रूप के आश्रय थे।

महाराज जयापीड़ रति-रहित कामदेव से तुलित होते थे। वे सरस्वती के पुरुषावतार कहे जाते थे। वे लक्ष्मी के कारागार थे। कीर्ति से उन्हें द्वेष था, उसे उन्होंने निकाल दिया था। महाराज जयापीड़ के भय से ही मानों उसे कोई आश्रय न देता था; वह दसों दिशाओं में भटक रही थी।

अनेक महिलाएँ काश्मीर-भूमि की सपत्नी बनना चाहती थीं। उनके कज्जल-लिप्त, उच्छ्वास-भ्रष्ट पत्र महाराज जयापीड़ के दीप की शिखा को अर्पित हो चुके थे। पञ्चशर के षष्ठबाण-गणिकाएँ-भी व्यर्थ सिद्ध हो चुकी थीं। महामन्त्री इस

मृग की वागुरा के अन्वेषण में व्यग्र थे।

एक दिन महाराज जयापीड़ ने महामन्त्री से कहा—आर्य, मैं देशाटन करूंगा।

महामन्त्री ने कहा—देव, मैं स्वयं यही निवेदन करने वाला था। श्रीमान् बहुत दिनों से मृगयार्थ नहीं गये हैं। आज्ञा हो, किस कानन को अलंकृत करेंगे।

महाराज बोले—आर्य! स्वदेश-पर्यटन को तो देशाटन नहीं कहते।

महामन्त्री ने कहा—श्रीमान् को सिंहासनरूढ़ हुए तीन वर्ष ही हुए हैं। अभी पर-चक्र (शत्रु-दल) के उपद्रव की आशंका निर्मूल नहीं हुई है, परराष्ट्र-नीति पूर्णत: निर्धारित नहीं हुई है, स्वराष्ट्र के भी अनेक कर्तव्य शेष हैं, अभी देशाटन की चर्चा से सेवक को व्यग्र न करें।

महाराज ने कहा—आर्य! आप मेरे महामहिम पितामह के महामन्त्री थे, आप मेरे प्रात:-स्मरणीय पितृदेव के महामन्त्री थे, पुण्य-परिपाक से मैं भी आपकी रक्षा में निर्भय हूँ ; यदि अबतक पर-चक्र आदि के विषय का कर्तव्य आप शेष न कर पाये हों तो मैं अपना अभाग्य ही समझूं!

महामन्त्री बोले—इन कर्तव्यों को समाप्त समझना राजनीति नहीं। इनका सदा प्रारम्भ ही मानना श्रेयकर होता है। महाराज! तरुण वय, ऐश्वर्य और स्वातन्त्र्य उन्मादक होते हैं। कौतूहल इनका प्रधान उत्तेजक होता है। इनके नियमन के लिए बन्धन की आवश्यकता होती है। सर्वोत्तम बन्धन प्रिय पत्नी होती है। आप विवाह करें और देवी के साथ देशाटन करें।

महाराज ने कहा—आर्य! आप मेरे पितामह-तुल्य हैं। आपको मेरा अविनय क्षमा करना होगा। मैं देशाटन के बाद आप की आज्ञा शिरोधार्य करूंगा। आप मुझे अधिक अविनय का अवसर न दें।

महामन्त्री कुछ काल चिन्तामग्न रहे। तब उन्होंने कहा—एवमस्तु! आप कहाँ पधारेंगे?

महाराज बोले—आर्य! मेरी अविनय-परम्परा को क्षमा करें। मैं एकाकी जाऊँगा। कहीं कोई प्रबन्ध न करना होगा और मेरी यात्रा का समाचार यथा-

साध्य गुप्त रखना होगा।

महामन्त्री बोले—आपकी यात्रा गुप्त कैसे रहेगी ? क्या चन्द्र को दीपक से दिखलाना पड़ता है और आप एकाकी नहीं जा सकते।

महाराज ने कहा—एकाकी न रहूँगा। खड्ग मेरे साथ रहेगा। आपका आशीर्वाद मेरा प्रधान रक्षक होगा।

महामन्त्री रुद्ध कण्ठ से बोले—महाराज ! स्वनामधन्य ललितादित्य मेरे मित्र थे। उनकी सम्पत्ति की मैंने अपनी समझकर रक्षा की। आपके पिता की लक्ष्मी मैंने न्यास (धरोहर) समझकर पालन किया ; अब उसे आप संभालिये, मुझे अवकाश दीजिये। मेरी वृद्धावस्था को नरक बनाने का उपक्रम न कीजिये।

महाराज बोले—आर्य ! स्नेह आपको विचलित कर रहा है। मुझे संसार का कुछ अनुभव कर लेने दीजिये। तब यह भार मुझपर न्यस्त कीजियेगा। अन्यथा, यह भार मुझे ले डूबेगा।

महामन्त्री कुछ देर चुप रहकर कहा—महाराज ! देशाटन में अनेक विपत्तियाँ होती हैं। ग्रीष्म, वर्षा और शीत सिरपर रहते हैं। धूलिदिग्ध, कंटकाकीर्ण निम्नोन्नत भूमि पर चलना पड़ता है। भूमिशायी होना पड़ता है, इष्टकाओं (ईंट) का उपधान (तकिया) करना होता है। भयंकर अरण्यों को पार करना पड़ता है। आवर्त्तमयी नदियों का अतिक्रमण करना पड़ता है ; सिंह जन्तुओं का भय होता है। ठक (ठग) तस्कर, अग्निकाण्ड का भय होता है। देशोपप्लव की आशंका रहती है। अपरिचितों में वास करना पड़ता है। गृहस्थ लोग अपरिचितों को शरण नहीं देते। देते भी हैं तो गोशाला या बाहरी आलिन्द में शयन करना पड़ता है। गृहिणियों की भर्त्सना सहन करनी पड़ती है। क्षुधा और पिपासा व्याकुल करती हैं। समय पर और अनुकूल भोजन नहीं मिलता। रोगों और उपदेवताओं का भय होता है। गूढ़पुरुष (जासूस) समझकर राजा कारागारों में निक्षेप या बध कर देते हैं। महाराज ! देशाटन के असंख्य दोष हैं।

महाराज ने कहा—आर्य ! गुण भी अनेक हैं। सहनशक्ति बढ़ती है, भाषाओं और प्रथाओं का ज्ञान होता है, देशों के दोष-गुण ज्ञात होते हैं, मानव-चरित्र

का परिचय होता है, शक्ति और साहस की परिक्षा का अवसर प्राप्त होता है, अपने देश की अन्य देशों से तुलना करने का विवेक होता है, अनेक विचित्र इतिहास सुनने में आते हैं, प्रसिद्ध पुरुषों और स्थानों को देखने का सौभाग्य होता है, अपनी त्रुटियों को मार्जित करने का अवसर मिलता है। दूसरों को अनुकूल करने की कला में दक्षता प्राप्त होती है। आर्य ! देशाटन के गुण भी असंख्य हैं।

महामन्त्री ने कहा—आप इस वृद्ध की बात नहीं ही मानेंगे तो मंगल (यात्रा) कीजिये, पर एक प्रतिज्ञा कीजिये।

महाराज बोले—आज्ञा।

महामन्त्री ने कहा—कल मैं आपको एक ऊर्मिका (अंगूठी) दूँगा। उसे बहुत सावधानी से रखियेगा। आप उसे जिस नगर के प्रधान श्रेष्ठी को दिखलावेंगे वह यथासाध्य आपकी सहायता करेगा। यदि कभी किसी विपत्ति में पड़ें तो निकटतम नगर के श्रेष्ठी को किसी भी प्रकार सूचित कर दीजियेगा।

महाराज ने कहा—मैं प्रतिज्ञा करता हूँ।

महामन्त्री बोले—एक बात और। अति साहस और कौतूहल सर्वदा और सर्वथा निन्द्य हैं। इनसे दूर रहियेगा।

× × × ×

एक सप्ताह बाद महामन्त्रीजी को एक व्यक्ति ने एक पत्र दिया। महामन्त्री उसका रंग देखते ही चौंके। उन्होंने तुरत ही उसे खोला। सांकेतिक लिपि में यह लिखा था—

'……आज्ञानुसार सीमा-प्रदेश से दल-सहित महाराज के साथ हूँ। आज्ञानुसार ही इन्द्रप्रस्थ तक जाऊँगा और वहाँ दूसरे दल को उनके साथ करके लौट आऊँगा……संख्या १०२'

१५ दिनों बाद महामन्त्री दूसरा पत्र पढ़ रहे थे—

'……हम ४०० सार्थवाह (काफिला बनाकर यात्रा करने वाले व्यापारी) आज इन्द्रप्रस्थ से काशी जा रहे हैं। अभियुक्त हमारे साथ है। अभियुक्त ने इन्द्रप्रस्थ के सब प्रसिद्ध स्थान देखे और नगर श्रेष्ठी से मिला।...संख्या १११'

एक मास बाद—

'......इन्द्रप्रस्थ के सार्थवाह अपना पण्य (बेचने की वस्तु) बेचकर लौट गये। तान्त्रिकजी पुष्पपुर (पटना) जा रहे हैं। हम लोग शाम्बरी (इन्द्रजाल दिखलाने वाले) हैं। तान्त्रिकजी के साथ जा रहे हैं।...संख्या २५६'

उसी दिन शाम्बरी लोगों के साथ जाने वाले तान्त्रिक ने अपने स्मृतिपत्र में (डायरी) यह लिखा—

'......काशी विचित्र है। तान्त्रिक रूप में सर्वत्र विचरण किया। यहाँ के वेदपाठी अष्ट विकृतियों में निष्णात हैं। व्याकरण उतना उन्नत नहीं। कई सन्यासी वेदान्त के अच्छे पण्डित हैं। तन्त्र के नाम पर कुछ लोग उदर-पोषण कर रहे हैं। मीमांसा की दुर्दशा है! वैदिक मन्त्रार्थ नहीं जानते। वे उन गर्दभों के समान हैं जिनपर चन्दन लदा हो।...ज्यौतिष भी हीनावस्था में है। उत्सर्गापवाद की ओर किसी का ध्यान नहीं।...वारांगनाएं गायन में दक्ष हैं, नृत्य में उतनी पटु नहीं; रूप भी अलौकिक नहीं।...मार्दंगिकों (मृदंग बजाने वालों) के हाथ मधुर नहीं, ताल-ज्ञान अच्छा है।...वस्त्र, सुगन्ध-द्रव्य, धातु-पात्र आदि का व्यवसाय उन्नत है।...'

दो मास बाद महामन्त्री को पत्र मिला—

'......तान्त्रिकजी तीर्थयात्रियों के साथ भगवान् जगन्नाथ का दर्शन करने चले हैं।......संख्या ३१७'

तीन मास बाद—

'......तान्त्रिकजी हमसे जगन्नाथपुरी से पृथक् हो गये। वे पौण्ड्रवर्धन होते हुए गौड़ जा रहे हैं। उनके साथ अब देवाजीवी (देवताओं की मूर्तियाँ दिखाकर उदर-पोषण करने वाले) हैं। उस दल में तान्त्रिकजी वैद्य हो गये हैं। ......संख्या ३१७'

और एक मास बाद—

'......गौड़ से प्रणाम स्वीकृत हो। वैद्यजी अभी साथ हैं। कल वे पृथक् होंगे। उन्होंने एक गृह लिया है। हममें से आठ व्यक्तियों को वैतनिक सेवक होने का सौभाग्य मिला है। संख्या ६३२।'

उसी दिन वैद्यजी का स्मृतिपत्र—

'......श्रेष्ठी से कल मिला। उसने चार सहस्र स्वर्णमुद्राएँ दीं। इतनी ही मैंने माँगी थी। उसने कहा कि मैं तुम्हें नहीं पहचानता, अभिज्ञान (चिह्न) मेरे लिए अलम् है। यही मैं चाहता भी था।...निवासियों की प्रकृति मधुर है। भूमि शस्य-श्यामला। कादम्ब अति उत्तम। स्त्रियों के लोचन और केश दर्शनीय; दन्तपंक्ति मोहक।...निवासियों में कलाओं के प्रति स्वभावतः आसक्ति। विदे-विदेशियों से व्यवहार सहृदयतापूर्ण।...गृह ले लिया है। सब विश्वस्त और अनुरक्त हैं। श्रेष्ठी उन्हें जानता है—उनका प्रतिभू (जमानतदार) होने को तत्पर है।...मार्ग में कहीं कष्ट नहीं हुआ। महामन्त्रीजी व्यर्थ व्यग्र होते थे।...कल स्थानीय कार्तिकेय मन्दिर में नगर की सर्वश्रेष्ठ गणिका कमला का नृत्य है। यहाँ के नरेश जयन्त भी पधारेंगे। मन्दिर उन्हींका है। भव्य है।......'

महाराज जयापीड़ को मन्दिर के बाहर ही ज्ञात हो गया कि नृत्य हो रहा है—मृदंग बज रहा था। मन्दिर के द्वार तक दर्शक खड़े थे। वे सबसे पीछे खड़े हो गये। आगे के मनुष्य ने पीछे देखा और विस्मित होकर उन्हें मार्ग दिया। इस प्रकार वे दालान पार कर उस चबूतरे तक पहुँच गये जिस पर महाराज जयन्त और उसके सामन्त विराजमान थे और नृत्य हो रहा था; चबूतरे पर चारों ओर कुछ दूर तक लोग खड़े थे। एक दर्शक ने आग्रह से महाराज को ऊपर आने का संकेत किया। वे ऊपर चढ़ गये और थोड़ी ही देर में सबसे आगे वाली पंक्ति में हो गये। उनके आगे ही महाराज जयन्त थे। दूसरी ओर महिलाएँ थीं।

ऊँचे दीपाधारों में स्थूल वर्त्तिकाएँ जल रही थीं। तैल, अगुरु और चन्दन से वासित था; मन्दिर भीनी सुगन्ध से पूर्ण था।

मध्य में भारी दरी बिछी थी। उसपर कमला का नृत्य हो रहा था।

महाराज जयापीड़ कमला को देखने लगे। ज्ञात होता था कि चन्द्र की लक्ष्मी शरीर धारण कर भूलोक में आ गयी थी। अवयव-संस्थान अति मनोहर और उन्नित अनुपात में थे, केवल मध्यदेश अधिक कृश था। वह शाटी (साड़ी) को कच्छ (काछा) देकर धारण किये हुए थी जिससे नृत्य में मध्य और नितम्बों

की लचक और दलक पूर्णतया स्पष्ट होती थी। वह अर्ध कूर्पासक (चोली) पहने थी। उसके मस्तक पर कस्तूरी-बिन्दु था। वह मध्यदेश में एक उत्तरीय बांधे हुए थी जिसकी ग्रन्थि नाभि के निकट थी और दोनों छोर एक-एक हाथ लटक रहे थे। वह मोचक (कर्णफूल), उच्चितक (कलाई का एक आभूषण) और दोनों कन्धों पर मोती के वैकक्षक (यज्ञोपवीत की तरह पहनी माला) पहने थी। उसके पैरों में घुँघुरू थे। उसकी वेणी गुल्फों से कुछ ऊपर तक लटक रही थी। उसके दोनों ओर दो मार्दंगिक थे।

जब जयापीड़ आकर खड़े हुए, कमला मत्तस्खलितक नामक अंगहार दिखला कर 'मदविलसित' अंगहार दिखलाने वाली ही थी कि उसकी दृष्टि इधर पड़ी। कमला स्थिर-सी हुई, उसके नेत्र जयापीड़ के नेत्रों से मिले। जयापीड़ को ज्ञात हुआ कि एक सिहरन आँखों में उत्पन्न होकर क्षणभर में पैरों से निकल कर भूमि में समा गयी। उनके मस्तक पर पसीना हो आया और कर्णान्त जलने लगे।

उसी क्षण मार्दंगिक ने तीसरी मात्रापर गम्भीर थाप दी। कमला चतुर्गुण गति में घूमकर ६वीं मात्रा में ताल में मिल गयी। उसने अंगहार छोड़ दिया था, वह शृङ्गार रस में भावों का विनियोग दिखा रही थी। उसने फिर जयापीड़ की ओर देखा, पर महाराज जयन्त के सामन्त और महिलाएँ इस विदेशी को साश्चर्य देख रही थीं।

कमला की दृष्टि में मधुरता छा गयी। वह व्याकोशमध्या हुई, आँखों के तारे स्मेर हुए, नयनों में आनन्द और अश्रु छलकने लगे। जयापीड़ की श्वास-क्रिया क्षणभर के लिए रुक गयी। उन्होंने किसी गणिका में रतिदृष्टि की यह निपुणता, निपुणता की यह पराकाष्ठा न देखी थी। घुँघुरू बोल रहे थे, उनकी थिरक पर जयापीड़ का हृदय लोट रहा था।

इसके बाद कमला लय के काम दिखाने लगी। मात्राओं का क्रमतः, सरल, क्लिष्ट, सूक्ष्म और असम्भव-प्राय विभाजन होने लगा। किसी-किसी दर्शक के मुख से कभी-कभी अव्यक्त ध्वनि निकल जाती थी। जयापीड़ प्रस्तर-प्रतिमा हो गये थे।

डेढ़ प्रहर के बाद कमला समपर आकर जब रुकी, महाराज जयन्त उठ खड़े

हुए। दर्शक कमला की प्रशंसा में शतमुख हो गये। कमला की दृष्टि वहाँ पड़ी जहाँ उसने कुछ कष्ट से, बहुत देर से न देखा था। सहस्रों व्यक्ति थे, वह विदेशी न था।

× × × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल दासी ने कमला से कहा—आर्ये, स्नान कर लीजिये।

कमला बोली—आज मैं देर में स्नान करूँगी। पूजा ब्राह्मणों से करा लेना।

चेटी कला ने आकर कहा—आर्ये, स्नान क्यों न करोगी?

कमला—शिरोवेदना है।

चेटी ने मुस्कराकर कहा—मैंने वैद्य को बुलवाया है। वह तृतीय कक्ष में है।

कमला—हमारे वैद्य सब रोगों में क्वाथ देते हैं।

चेटी—मैंने नवीन वैद्य बुलवाया है।

कमला—तू अनुदिन धृष्ट होती जा रही है। अपरिचित वैद्य की औषधि मैं न खाऊँगी।

चेटी ने मुस्कराकर पूछा—तो वैद्य को विदा करूँ?

कमला—हाँ।

कला ने दासी को पुकार कर कहा—तृतीय कक्ष में वैद्यजी हैं। उन्हें दक्षिणा देकर विदा कर दे।

दासी ने पूछा—वहाँ कई व्यक्ति हैं, वैद्यजी कौन से हैं?

कला—कल मन्दिर में जो विदेशी खड़ा था, वही।

कमला उठ खड़ी हुई। उसने चेटी का हाथ पकड़ कर कहा—कला! तूने कैसे जाना?

कला—आर्या किसपर अनुरक्त हैं, यह जानना भी कठिन है?

कमला—वह वैद्य है?

दासी ने आकर वैद्य के जाने की सूचना दी। कमला ने क्रुद्ध होकर कहा—किसी सेवक को भेज! दौड़कर बुला लावे।

दासी ने कला से कहा—वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर गया। कह गया—अब मैं कभी न आऊँगा।

दासी चली गयी। कमला बैठ गयी। उसकी आँखों में अश्रु भर आये।

कला ने कहा—आर्ये, अविनय क्षमा हो। वे न आये थे।

कमला—दासी ने कहा कि......

कला—वह मेरी शिक्षा थी। तुम आश्वस्त होओ। उन्हें लाने विट गया है।

कमला ने वलय उतार कर कला को पहनाते हुए, कहा—ब्राह्मण को मना कर, मैं स्नान करने जाती हूँ।

उसी समय महाराज जयन्त की कन्या कल्याणी देवी से उनकी सखी अमला ने कहा—सखी! कल तुम मन्दिर में न गयीं, जातीं तो लोचन सफल हो जाते।

कल्याणी ने कहा—उँह, बहुत बार कमला को देखा है।

अमला—तुम ऐसी वस्तु देखतीं जिसे कमला ने भी साग्रह देखा।

कल्याणी—कोई नवीन मृग या पक्षी होगा।

अमला—नहीं, मनुष्य।

कल्याणी—कलतक गौड़ का कोई पुरुष उसका मनोहरण न कर सका था।

अमला—वह विदेशी था, काश्मीरक।

कल्याणी—कुछ कुतूहल हुआ होगा उसे।

अमला—नहीं, उस काश्मीरक के रूप ने कमला के हृदय का स्पर्श किया। वह 'मदविलसित' दिखलाने जा रही थी। तभी उसकी दृष्टि उस काश्मीरक पर पड़ी और वह क्षुभित हो गयी। मार्दंगिक ने तीसरी मात्रा पर गम्भीर थाप देकर उसे सचेत किया, तब वह अंगहार छोड़कर भावों का विनियोग दिखलाने लगी।

कल्याणी—पुरुष सुन्दर था?

अमला—तुम देखतीं तो विवाह न करने का आग्रह दूर हो जाता।

कल्याणी—अच्छा!

अमला—कल तुम लोचन-फल से वञ्चित हो गयीं।

कल्याणी—कभी नेत्रों को सफल कर लूँगी।

(कल्याणी हँसी हँसीं)

अमला—वह सम्भवतः चला गया हो। विदेशियों का क्या ठिकाना! देख लेतीं तो हँसना भूल जाता।

कल्याणी—देखती हूँ, तुम आसक्त हो गयी हो ?

अमला ने लज्जित होकर कहा—अपना मुख मैंने देखा है ।

× × × ×

महाराज जयापीड़ विट के साथ कमला के भवन के द्वार पर पहुँचे । प्रधान द्वार के स्तम्भों में कदली-वृक्ष बंधे थे । विचित्र बन्दनवारें बंधी थी । द्वार की देहली के पास भूमि पर आटे और कुंकुम से चित्रकारी की गयी थी और उस पर पुष्प पड़े थे । द्वार के दोनों ओर सजल घट थे जिन में पंच पल्लव थे । घटों पर अपूर्व चित्रकारी थी ।

वे भीतर प्रविष्ट हुए । भवन मध्य में था । उसके चारों ओर शीतलच्छाय वृक्ष थे । उन पर लताएं थी । क्यारियों में फूलों के पौधे थे । बीच-बीच में छोटी छोटी वेदियां (चबूतरे) थीं ।

विटे ने विनय से कहा—इधर से श्रीमन् !

महाराज प्रथम प्रकोष्ठ में प्रविष्ट हुए । सात सोपानों के बाद सम भूमि थी । अन्तिम सोपान पर चार द्वारपाल खड़े थे । उन्होंने इन दोनों को झुक कर प्रणाम किया । एक ओर उत्तम अश्व बंधे थे । उन से कुछ दूर १२–१४ वानर शृंखलाओं में बंधे उछल कूद कर रहे थे । हस्तिपक (हाथीवान) एक हाथी को अन्न के पिण्ड खिला रहा था । एक ओर मेष (मेढ़ा) की गर्दन मली जा रही थी ।

महाराज द्वितीय कोष्ठ में प्रविष्ट हुए । एक कोने में वृषों की सींगों पर तेल मला जा रहा था । एक ओर आसनों पर बैठे नगर के कुछ युवक कामशास्त्र पढ़ रहे थे, जिन्हें उनके अभिभावको ने चतुरता की शिक्षा के लिए यहां भेजा था ।

तीसरे प्रकोष्ठ में पाशकपीठ (चौपड़ का खाना) और सारियां (पासे) रखी थी । नगर की कुछ गणिकाएं खेल रही थीं । ये भी शिक्षार्थ आयी थीं । वहां वृद्ध विट और दासियां ताम्बूल, पुष्पसार (इत्र), चित्र आदि लिए घूम रही थीं ।

चतुर्थ प्रकोष्ठ में अनेक युवतियां मृदंग का अभ्यास कर रही थीं । कुछ युवक बंशी बजा रहे थे । कुछ लोग वीणा बजा रहे थे । कुछ नर्त्तकियां नृत्य सीख रही थीं । कुछ भाव बताने का अभ्यास कर रही थीं ।

पंचम प्रकोष्ठ में एक ओर महानस (रसोई घर) था । मिठाइयां बनरहीथीं.

लड्डू बांधे जा रहे थे; चाशनी तैयार की जा रही थी। बघार दिये जा रहे थे।

षष्ठ प्रकोष्ठ में एक ओर प्रसिद्ध चित्रकार कुछ युवकों और युवतियों को शिक्षा दे रहे थे। एक ओर सोने-चांदी के आभूषण बन रहे थे, मीनाकारी हो रही थी, शंख छांटे जा रहे थे, प्रवाल घिसे जा रहे थे। एक ओर पुष्पसार बनाये जा रहे थे। एक ओर ताम्बूल लग रहे थे। एक ओर चन्दन घिसा जा रहा था। मदिरा पी जा रही थी। कटाक्षों से देखा जा रहा था। हंसी सुन पड़ती थी। नगर के बहुत से प्रसिद्ध धनी आसनों पर बैठे सुख ले रहे थे।

सातवें प्रकोष्ठ में पारावत (कबूतर) क्रीड़ा कर रहे थे, शुक बोल रहे थे, सारिकाएं कलह कर रही थीं, तीतर लड़ाये जा रहे थे, मयूर नाच रहे थे, हंस घूम रहे थे।

आठवें प्रकोष्ठ में महाराज जयापीड़ ने एक पर्यंकिका (छोटा पलंग) पर श्वेत वस्त्र धारण किये एक वृद्धा को बैठे देखा। तीन-चार दासियां पान, इत्र आदि लिये वहां खड़ी थीं।

महाराज ने विट की ओर देखा। विट ने कहा—ये कमला की माता हैं।

नवां प्रकोष्ठ वाद्य-यन्त्रों से पूर्ण था।

दशम प्रकोष्ठ में चारों ओर पुरुष प्रमाण (आदमकद) शीशे लगे थे, गद्दा बिछा था। चौकी पर ताम्बूल, पुष्पसार आदि रखे थे। एक दासी द्वार पर खड़ी थी। उसने निवेदन किया—आर्या वृक्ष-वाटिका में हैं, वहीं पधारें।

विट महाराज जयापीड़ को लेकर वृक्ष वाटिका की ओर चला। दशम प्रकोष्ठ के एक द्वार से एक लम्बा दालान पार कर ये लोग एक दूसरे द्वार पर पहुँचे। उसे खोलकर विट आगे बढ़ा। भवन के चारों ओर के वृक्षों के बीच से एक मार्ग था। सामने ही १५ हाथ ऊंची चहारदीवारी देख पड़ती थी। ये लोग वहां पहुँचे। उसके द्वार पर चार सशस्त्र रक्षक थे। भीतर पांच कोस का उद्यान था। बीच-बीच में कुंज-गृह, दोलाएं (झूले) वेदिकाएं और जलयन्त्र (फुहारे) थे। ठीक मध्य में १५० हाथ की चतुष्कोण दीर्घिका (छोटा सरोवर) थी। उसमें सौगन्धिक, उत्पल, कोकनद आदि जाति के कमल खिले थे, जल पर पराग फैला था और हंस-हंसिनियां उसमें विचरण कर रही थीं। उद्यान के चारों कोणों पर चार छोटे

गृह थे। दीर्घिका में मध्य-दघ्न (कमर भर) जल था।

विट ने महाराज को एक दोला पर बैठाया। उस पर एक पात्र में ताम्बूल, एला, केसर थी। महाराज को विट ने ताम्बूल की दो वीटिकाएँ (बीड़े) दीं और कहा—आप यहां विराजें, मैं कमला को सूचित करूं।

विट ने कहा—कमले! वैद्यजी पधारे हैं।

कमला ने पूछा—कहां हैं?

विट—उधर दोला पर हैं। मैं यहीं लाता हूँ। तुम लेट जाओ।

महाराज ने दूर से देखा—कमला एक प्रेंखा (दोला) पर लेटी है। एक दासी के हाथ में दलवृन्तक (पंखा) है, एक के हाथ में ताम्बूलकरंक (पनडब्बा)। एक दासी वीणा बजा रही है।

जयापीड़ ने कहा—देवि! आप उठें नहीं। यथा सुख लेटी रहें।

विट और महाराज दूसरी प्रेंखा पर बैठे। एक दासी ने महाराज के सामने पुष्पसार और ताम्बूल रखे।

महाराज ने कुछ देर कमला को देखा और पूछा—क्या व्याधि है और कब से है?

विट ने कहा—आप नाड़ी देखें।

महाराज ने कमला का हाथ अपने हाथ में लिया। एक क्षण के लिये उनका हाथ कांपा। कमला का हाथ बीच-बीच में कांपता था।

विट ने पूछा—वैद्यजी! क्या है?

वैद्य ने कहा—नाड़ी में कुछ चंचलता और उष्मा है। इतना अनिद्रा से भी सम्भव है। रोग तो इनको कोई नहीं।

कमला ने विट से कहा—भाव! आप तो इन की बहुत प्रशंसा करते थे।

वैद्य का मुख लाल हो गया। उसने कहा—देवि! रोग न हो तो वैद्य क्या कहे।

विट बोला—वैद्य! इन्हें सुनिद्रा नहीं होती, खान-पान से भी अरुचि है। चित्त में उद्विग्नता है।

वैद्य बोला—अभी कोई रोग स्पष्ट नहीं है, पर विषम ज्वर (अंतरिया और

कामज्वर) के कुछ लक्षण हैं। सम्पूर्ण लक्षण अभी नहीं हैं।

कमला ने एक बार विट की ओर देखा और तब चुभती दृष्टि से वैद्य की ओर।

विट ने कहा—कमले! वैद्य का निदान देखा!

कमला ने सिर झुका लिया।

विट बोला—वैद्य! साधु! ये एक पुरुष पर अनुरक्त हैं। उसका कुल, शील, गुण सभी कुछ अज्ञात है। काम को नमस्कार! मैं यह इसलिए कह रहा हूँ कि वैद्य से छिपाना न चाहिये।

वैद्य ने कहा—वह धन्य है जिसपर ये अनुरक्त हैं। पर उसका कुलशील तो बाधक नहीं।

कमला का मुख लाल हो गया। वह बोली—जिस कुल में मुझे जन्म मिला है उसके उपयुक्त ही बात आपने कही।

वैद्य ने लज्जित होकर उत्तर दिया—देवि। आपको कष्ट पहुँचाने की मेरी भावना न थी। मेरा इतना ही अभिप्राय था कि आप स्वतन्त्र हैं।

विट ने कहा—बुलाने पर यदि वह प्रत्याख्यान करे?

वैद्य बोला—भद्र। यह सम्भव है?

विट—कल तक इनकी अनुरक्ति भी तो ख-पुष्प ही थी।

वैद्य का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा।

विट—कल कार्त्तिकेय-मन्दिर में इनके हृदय का अपहरण हो गया।

वैद्य ने मुख पोंछ कर कहा—अहो! तस्कर का हस्तोच्चय (हाथ की सफाई)! पर उसने गर्हित काम किया!

कमला ने पूछा—क्या वैद्य?

वैद्य—मन्दिर में तस्करता।

कमला मुँह फेरकर मुस्कराने लगी।

वैद्य—तस्कर अति साहसी भी है। महाराज जयन्त की उपस्थिति में उसने ऐसा किया।

विट हँस पड़ा। उसने कहा—पर यही बात अनुकूल है। तस्कर पहचान लिया गया। न्यायकर्ता स्वयं वहां था। अब तस्कर को अधिकरणशाला (अदालत)

में उपस्थित भर करना है।

वैद्य—यदि तस्कर देवी से क्षमा चाहे।

विट—तो वह पुरस्कृत भी किया जायगा।

वैद्य—तो तस्कर को सूचित कीजिये कि उसका दोष प्रकट हो गया।

विट ने कहा—एवमस्तु! मैं उसे समझाने और बुलाने जाता हूँ। आप कुछ देर विराजें, आपके समक्ष ही वह आवे।

वैद्य का चेहरा कुछ उतर गया। विट चला गया।

कमला ने पूछा—आप काश्मीरक हैं?

'हां'

'कौन से वर्ण आपके शुभ नाम को अलंकृत करते हैं।'

'गौड़वासी मुझे मलायानिल कहते हैं।'

'वैद्य, मुझे दो दिनों से हृत्कम्प होता है। ज्ञात होता है कि श्वास-क्रिया रुक जायगी। आप चिकित्सा करेंगे?'

'आप के विश्वास के लिए कृतज्ञ हूँ।'

'आप कितने दिन गौड़ देश को अलंकृत करेंगे?'

'जबतक अन्न-जल हो।'

'आप गौड़ को स्थायी वास के योग्य नहीं समझते?'

'मेरा भाग्य इतना प्रबल कहां!'

'वैद्य, मैं चाहती हूँ कि एक सप्ताह आप मेरे इस कुटीर में निवास करें। इससे मेरा कल्याण होगा।'

'मेरा अहोभाग्य है।'

'आपके लिए कोई विशेष उपकरण प्रस्तुत रखा जाय?'

'देवि! मैं साधारण जन हूँ। अतः मेरे व्यसन सीमित हैं। मुझे केवल एक वीणा चाहिये।'

'आप संगीतज्ञ भी हैं?'

'नहीं देवि! मनोविनोदार्थ दो-एक गायन सीखे हैं।'

'आर्य क्षमा करेंगे; आप ने वैद्यक का अध्ययन किन से किया है?'

'काश्मीर के महाराज जयापीड़ से।'

कमला चौंक पड़ी। उसने कहा—आर्य! आप उनके शिष्य हैं? वे तो पीयूषपाणि वैद्य हैं। पर वे तो कभी-कभी किसी असाध्य रोग की ही चिकित्सा करते हैं और किसी को शिष्य भी नहीं बनाते।

'मेरा अहोभाग्य कि उन्होंने मुझे शिष्य किया। उन्होंने यह आज्ञा भी दी कि मैं उनके औषध-भाण्डार से चाहे जो औषध ले लिया करूं।'

'आर्य, तब तो आपके समान वैद्य अत्र भारतवर्ष में नहीं है। कुछ दिन हुए, यहाँ अद्वितीय वैद्य आचार्य रोहसेन पधारे थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि महाराज जयापीड़ की तुलना में मैं बालक हूँ।'

'देवि! आपके यहाँ रहने में एक समय (शर्त) है।'

'क्या?'

'अन्य लोगों की चिकित्सा करने में स्वतंत्र रहूँगा। मेरे कहीं आने जाने पर प्रतिबन्ध न रहेगा।'

'यह तो उचित ही है। इसमें समय क्या?'

इसी समय विट वहाँ आया। उसने कहा—वैद्य, उनका दर्शन न हुआ।

कमला ने पूछा—आप यहां कब पधारेंगे?

वैद्य ने उठते हुए कहा—आज तीन बजे अमृत योग है। उसी समय।

× × ×

वैद्यजी कमला के यहां आ गये। उन्हें कमला के वासक गृह (शयन-कक्ष) के बगल वाला कक्ष मिला।

कमला ने वहां आकर कहा—इस कक्ष में रहने से मुझे सुविधा होगी। यहां आपको अनेक कष्ट होंगे; उनके लिए क्षमा चाहती हूँ।

वैद्य—कष्ट की चिन्ता न करें।

कमला—मेरी पाचिका निपुण नहीं। यहां भोजन करते समय आर्या का स्मरण आपको होगा।

वैद्य ने मुस्करा कर कहा—अभी दार-परिग्रह नहीं किया है।

कमला के हृदय पर से एक बोझ उतर गया, वह बोली—काश्मीर में

महिलाएँ नहीं हैं ?

वैद्य—हैं, पर विवाह में अर्थ का प्रयोजन होता है। अब आप से जो द्रव्य मिलेगा उससे काम चल जायगा।

कमला—काश्मीर में देव-दुर्लभ रूप और गुण का मूल्य नहीं होता ?

वैद्य—मुझे तो ईश्वर ने देव-दुर्लभ कोई भी वस्तु नहीं दी है।

सायंकाल आठ बजे वैद्य जी अपने कक्ष से निकले। कमला अपने कक्ष से निकली। पूछा—किस वस्तु की आवश्यकता है ? दासी से कह दिया करें।

वैद्य—मैं बाहर जा रहा हूँ। दस बजे तक आ जाऊँगा।

कमला—किसी सेवक को साथ भेजूँ ?

'नहीं।'

'किसी औषधि को आमन्त्रित करने जा रहे हैं ?'

'नहीं देवि ! मैं एक गर्हित कार्य से जा रहा हूँ। यहां की एक महिला ने मुझे प्रणय-पाश में बांध लिया है। मैं उन्हीं से मिलने जा रहा हूँ।'

कमला ने बहुत कष्ट से अपना मुख अविकृत रखा और हँसकर कहा—गौड़ भूमि धन्य हुई। मैं तो आपके हृदय को शुष्क समझती थी।

वैद्यजी चले गये। कमला कुछ देर वहीं खड़ी रही, फिर अपने कक्ष में चली गयी और शय्यापर लेटकर रोने लगी।

दस बजे वैद्यजी आये। उन्होंने कक्ष में आकर दासी से कहा—मैं देवी को देखना चाहता हूँ।

दासी बोली—देवी तो अभिसार को गयी हैं।

वैद्य कुछ न बोले।

दासी ने कहा—श्रीमान् भोजन करें।

श्रीमान् ने कहा—कर आया हूँ।

दासी चली गयी।

वैद्य कमरे में टहलने लगे। थोड़ी देर बाद वे एक पुस्तक लेकर बैठे। दस-बीस पंक्तियां पढ़कर उन्होंने पुस्तक बन्द कर दी और टहलने लगे। उसके बाद वे वीणा लेकर बैठे और उसे मिलाने लगे।

अर्धरात्रि को कमला आयी। तीसरे कक्ष में दासी ने कहा—वैद्यजी ने भोजन नहीं किया।

कमला ने विस्मित होकर पूछा—वीणा कौन बजा रहा है?

'आर्ये, वैद्य!'

कमला आगे बढ़ी। वासक-गृह के बाहर दालान में वृद्ध विट, वेश्याएँ और कमला की माता बैठी थीं। सबके नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था।

एक वृद्ध विट ने कहा—कमले! तुम्हारे यहां रहने का फल आज प्राप्त हुआ।

माता ने भारी कंठ से कहा—पुत्रि! ऐसी वीणा काश्मीर के स्वर्गीय महाराज ललितादित्य ही बजाते थे। वे गन्धर्व कहे जाते थे।

कमला वैद्य के कक्ष-द्वार पर आकर खड़ी हुई। वैद्य के नेत्र बन्द थे, उनकी गोद में वीणा थी। एक मृग उनके पास ध्यानावस्थित बैठा था। वीणा से अद्भुत स्वर, मूर्च्छना का विस्तार हो रहा था। उंगलियाँ वीणा के तारों पर अत्यन्त सरलता से, पर विद्युद्वेग से चल रही थीं। मन्द्रतम और तारतम स्वर समान स्पष्टता और विचित्र क्रम से निकल रहे थे। उनकी सम्बद्धता से स्वर-लहरियां उत्पन्न होती थीं, वे लहरियां एक स्वरधारा में परिवर्तित हो जाती थीं। उसमें हृदय कभी उठता था, कभी गिरता था, कभी दूर तक जाकर वापस आता था, कभी आवर्त्त में घूमने लगता था।

कमला के नेत्र मुंदने लगे, उसका हृदय मन्थित होने लगा, उसे रोमांच हो आया और अश्रुधारा बह चली।

वह मृग के पास जाकर बैठ गयी और थोड़ी देर में वैद्य के चरणों के पास सिर रखकर लेट गयी।

दो घड़ियों के बाद वैद्य का हाथ रुका। वीणा स्तब्ध हो गयी, पर स्वरलहरी मूर्च्छित होती रही। कुछ देर तक यही ज्ञात होता रहा कि वीणा बज रही है। मृग के नेत्र खुले। उसने आगे आकर वीणा की तुम्बिका पर अपना मुख रखा। वैद्य ने वीणा एक ओर रख दी, तभी उनकी दृष्टि कमला पर पड़ी।

उन्होंने व्यस्त होकर कहा—देवी!

कमलाने चौंककर सिर उठाया और उनके पैर पकड़ लिये। उसने कहा—एक भिक्षा लिये बिना न उठूंगी।

वैद्य—यह तो भिक्षा का प्रकार नहीं।

कमला—आप मुझे वीणा की शिक्षा दें, यही भिक्षा है।

वैद्य—यह अत्यन्त साधना की वस्तु है। अभिसार से और इससे विरोध है।

कमला ने नेत्र पोंछ कर कहा—श्रीमान् भी तो वही करने गये थे!

'मैं शिक्षा पूर्ण कर चुका हूँ।'

'मैं भी शिक्षा पूर्ण होने तक न करूंगी।'

'कहना सरल है।'

'करना भी।'

'तुम महाराज जयन्त की.........'

'नर्त्तकी हूँ, प्रेयसी नहीं। कल ही मैं उस कार्य का त्याग करूंगी।'

'वीणा की साधना १२ वर्षों की है।'

'बस?'

'मैं सदा गौड़ में ही न रहूँगा।'

'आप जहां जायंगे, मैं जाऊंगी।'

'तो देवि! मैं तुम्हें शिक्षा दूंगा।'

कमला ने प्रणाम कर कहा—मैं कृतार्थ हुई। आपने किनसे शिक्षा प्राप्त की है?

'स्वर्गीय महाराज ललितादित्य से।'

कमला चौंक कर बोली—उन्होंने तो केवल महाराज जयापीड़ को ही शिक्षा दी, यही सुना जाता है।

वैद्य—मुझे भी दी थी।

'महाराज जयापीड़ कैसा बजाते हैं?'

'मुझ से अच्छा नहीं।'

'आपके गुरु महाराज ने किन से शिक्षा प्राप्त की?'

'उनकी एक गन्धर्व से मित्रता थी। उन्हीं गन्धर्व ने उनको शिक्षा दी थी।'

कमला ने अत्यन्त विस्मित होकर पुनः प्रणाम किया।

वैद्य बोले—एक मास बाद शुभ मुहूर्त्त है। तब तक प्रतीक्षा करना होगा, थोड़ा देवाराधन भी करना होगा। उसकी विधि मैं बतलाऊंगा।

× × × ×

वृक्षवाटिका में विट ने कहा—कमले! अब तुम उचित नहीं कर रही हो।

कमला—भाव! प्रणय अनुचित है!

विट—प्रणय अनुचित नहीं। पर एक तो वैद्य विदेशी हैं।

कमला—कहीं तो रहेंगे ही। मैं वहीं चली जाऊंगी।

विट—दूसरे, दरिद्र हैं।

कमला—गुणहीन धनिकों से श्रेष्ठ।

विट—लोग हंसेंगे।

कमला—यह भी कहेंगे कि प्रीति ही के कारण मैं उनके साथ हूँ, धन के लोभ से नहीं।

विट—उनका कुल-शील?

कमला—भाव! मेरा? वे क्षत्रिय हैं। शील तो आप भी देख रहे हैं।

विट—हां, प्रत्यह किसी रमणी से मिलने जाते हैं।

कमला—उनका भाव जानने के लिए जैसे मैंने भूठा अभिसार किया था वैसे ही वे भी जाते हों!

विट—सम्भावना ही तो!

कमला—मुझे तो वे छद्मवेशी ज्ञात होते हैं। वे दरिद्र भी निश्चय ही नहीं हैं।

विट—कैसे?

कमला—प्रथम दिन मन्दिर में वे दो बार पीछे घूमे। इससे अनुमान होता है कि तांबूल-करंकवाहिनी उनके पीछे रहती थी। यहां वे कई बार पादत्राण धारण और मोचन करानेवाले की प्रतीक्षा में कुछ क्षणों रुके रहे। और भी, इतना विभव देख कर भी वे चमत्कृत नहीं। वीणा तो उस दिन आपने सुनी ही!

विट—वे स्वर आज भी कानों में गूंज रहे हैं। तुमपर उनकी आसक्ति तो अवश्य है।

कमला—अभी निश्चय नहीं !

विट—तुम यह सोचती होओ कि वे पहले अपने मुख से कहें, तो तुम आकाश का चन्द्र हाथ में लेना चाहती हो ।

कमला ने कुछ उत्तर न दिया ।

× × × ×

तीन दिनों बाद—

कमला महाराज जयन्त के यहां से नृत्य कर, आयी । चेटी ने एक पत्र दिया । कहा—वैद्यजी दे गये हैं ।

कमला अपने कक्ष में आयी और दीपधार के पास बैठकर उसने पत्र खोला । उसमें एक और बन्द पत्र था । वह काश्मीर के महामन्त्री के लिए था ।

कमला अपना पत्र पढ़ने लगी ।

'देवि !

अति लज्जित होकर यह पत्र लिख रहा हूँ । मैं जिन महिला पर अनुरक्त हूँ उन पर एक और व्यक्ति भी अनुरक्त है । उससे आज मेरा द्वन्द्व युद्ध है । यदि मैं जीवित रहा तो प्रातःकाल तक आऊंगा । कल सायंकाल तक भी मैं न आऊं तो दूसरा पत्र काश्मीर के महामन्त्री के यहां पहुँचवाने की व्यवस्था कर दीजियेगा ।

आप के यहां मैं बहुत सुख से रहा । आपको अनेक कष्ट दिये । इसके लिए क्षमाप्रार्थी ।

मलयानिल ।'

कमला के हाथ कांपने लगे । पत्र भूमि पर गिर पड़ा । वह स्तब्ध होकर बैठी रह गयी । कुछ देर बाद उसने सब आभूषण उतार कर फेंक दिये और रोने लगी ।

चेटी बाहर से देख रही थी । उसने जाकर विट से कहा । विट तत्क्षण वहां आया । कमला ने अश्रु पोंछ कर पत्र विट के हाथ में दे दिया । विट ने पढ़ा ।

कमला ने कहा—आप उन्हें खोजिये ।

विट ने कहा—इतने बड़े गौड़ में कहां-कहां खोजा जाय ! चारों ओर रक्षक हैं, उन्हें सन्देह होगा । वैसे तो वे अपने प्रतिद्वन्द्वी से युद्ध कर आ भी सकते हैं

और किसी को कुछ ज्ञात न होगा; पर अन्वेषण से तो वे दण्डनीय हो जायँगे। द्वन्द्वयुद्ध गौड़ में वर्जित है, यह तो जानती ही हो।

कमला ने चिन्तित होकर कहा—तब?

विट—प्रातःकाल तक रुकना ही होगा। जन-संचार होने पर मैं अन्वेषण के लिए जाऊँगा।

कमला के नेत्रों से अश्रु बहने लगे।

विट ने कहा—रुदन कर अमंगल न करो। ईश्वर की कृपा से वे आवेंगे, मेरा आत्मा कहता है।

सूर्योदय के कुछ पहले विट गृह से बाहर निकला। कुछ दूर जाने पर उसे कोई आता दिखायी पड़ा। विट ठिठक गया। उस व्यक्ति के निकट आने पर विट ने बहुत झुककर प्रणाम किया और कहा—स्वागत वीर!

वैद्य चुपचाप आगे बढ़े। विट ने चलते-चलते पूछा—सब कुशल है न?

वैद्य ने कहा—हां।

कमला कक्ष के बाहर पादचार (टहलना) कर रही थी। वह आगे बढ़ी और कहा—आप, आप आ गये?

वैद्य बोले नहीं। अपने कक्ष में गये। कमला पीछे-पीछे गयी। उज्ज्वल प्रकाश में कमला ने वैद्य को देखा और उसके मुख से एक हलकी चीख निकली, उसने वैद्य का हाथ पकड़ कर कहा—यह क्या?

वैद्य के दक्षिण भुजदण्ड पर का दूर तक का मांस लुप्त था और दक्षिण ओर पैरों तक वस्त्र पर रक्त था।

वैद्य ने कहा—युद्ध का चिह्न। देवि! मैं जा रहा हूँ।

कमला का मुख विवर्ण था। उसके नेत्रों में भय और चिन्ता थी।

वैद्य ने पुनः कहा—मैं प्रतिद्वन्द्वी को समाप्त कर आया हूँ। थोड़ी ही देर में राजपुरुष अन्वेषण करना प्रारम्भ करेंगे। उनके अन्वेषण के पूर्व ही मैं गौड़ से बाहर हो जाना चाहता हूँ।

कमला ने कहा—नहीं, आप यहीं रहिये। यहाँ आप का किसी को पता न चलेगा।

वैद्य—मैं आपको विपत्ति में नहीं डालना चाहता।

कमला—मैं आपके लिए विपत्ति में पड़ूँ, यह सौभाग्य होगा। आप नहीं जा सकते।

वैद्य—आप क्यों एक विदेशी के लिए विपत्ति मोल लें?

कमला के नेत्रों में अश्रु उमड़ आये, उसके अधर फड़कने लगे।

वैद्य ने कहा—अच्छा तो आज्ञा दीजिये।

कमला ने सहसा वैद्य के स्कन्ध पर अपना सिर रख दिया और कहा—मलय! मुझे भी समाप्त कर जाओ, फिर सब दिशाएँ तुम्हारे लिए उन्मुक्त हैं।

वैद्य एक क्षण किंकर्त्तव्यविमूढ़ से रहे। दूसरे क्षण उन्होंने कहा—कमले! मैं एक महिला से प्रेम करता हूँ।

'इससे मुझे क्या?'

'यह तुम्हारा अविचार है।'

'मलय! अपनी दासी पर जितनी अनुकम्पा करते हो, उतनी मुझ पर कर सकोगे?'

'उससे बहुत अधिक।'

'तब मेरा जीवन सफल है। तुम्हारा प्रेम पाने का तो स्वप्न भी मैं कैसे देख सकती थी!'

'क्यों?'

'दासी हो सकना भी असम्भव लगता था, इसलिए!'

'प्रिये!'

'प्रभु! इस सम्बोधन का सुख मैं सहन न कर सकूंगी। मुझे दासी कहो।'

'मैं तो स्वयं तुम्हारा अक्रीत दास हूँ।'

'मलय!'

'प्रभुका नाम लेती हो?'

'दासी को कोई प्रभु इस प्रकार स्कन्ध का आश्रय देता है?'

मलय ने जोर करके कमला का सिर ऊपर उठाया और अपना सिर उस पर झुकाया।

उसी समय वहाँ विट ने प्रवेश किया। उसने कहा—साधु वैद्य ! अब कमला स्वस्थ हो जायगी। यह अभूतपूर्व उपचार मैंने देखा।

कमला और मलय लज्जित होकर पृथक् हो गये।

सहसा विट ने कहा—आह ! यह क्या ? वैद्य जी ! पहले अपना उपचार करा लो।

कमला ने व्यस्त हो कर कहा—मलय ! तुम लेटो, मैं पट्टिका (पट्टी) बाँध दूँ।

वैद्य ने कहा—भद्र ! आप कष्ट न करें।

विट बोला—आप पहले वस्त्र-परिवर्त्तन करें। इन वस्त्रों को मैं अग्निदेव को अर्पित करूँ।

वस्त्र-परिर्तन के बाद विट ने एक औषध लगा कर पट्टी बाँध दी। मलय ने पर्यंक पर लेट कर कहा—भद्र ! आपने बहुत उपकार किया।

विट—तो पुरस्कार दीजिये।

मलय—अवश्य।

विट—मुझे वैद्यक की शिक्षा दीजिये। आप की यह अभूतपूर्व विधि मुझे बहुत अच्छी लगी है।

कमला और मलय हँस पड़े।

विट चला गया।

कमला ने मलय को एक माला पहनायी और सिरहाने बैठ कर उनके केशों पर हाथ फेरने लगी। मलय ने कमला का दूसरा हाथ अपने हाथों में ले लिया, उनकी आँखें झपने लगीं।

× × × ×

दिन में कोई दस बजे कमला ने आकर देखा—मलय सोये हैं। उनके मुख पर मुस्कान है, मानो वे सुस्वप्न देख रहे हों। वह उनके पास बैठ गयी और उनका हाथ अपने हाथों में लिया। शीतल स्पर्श से भी मलय की नींद न टूटी। कमला ने बगल ही में रखी पुष्पसार की कुतुपी (कुप्पी) उठायी और अपने हाथों में उसे रगड़ कर हलके हाथों मलय के वस्त्रों में लगाने लगी। गोजी

(नाक को ऊपरी ओष्ठ से जोड़ने वाला भाग) पर पुष्पसार लगाते समय मलय जरा हिले, उन्होंने लम्बी साँस ली और उनके नेत्र खुल गये।

कमला ने उन पर झुक कर पूछा—उठोगे नहीं ?

मलय ने उसका एक हाथ अपने हृदय पर रख कर आँखें बन्द कर लीं।

कमला ने स्नेहसिक्त स्वर में कहा—उठो, देर न करो। हाथ कैसा है ?

मलय ने चौंक कर हाथ की ओर देखा।

कमला ने कहा—भूल ही गये थे !

मलय मुस्कराये, कहा—अभी न उठाओ। तुम भी सो जाओ।

कमला ने हँस कर कहा—उठो मलय ! आज कामदेव-पूजा है। स्नान कर लो।

'कैसी ?'

'हमारे तो वही देव हैं। उठो, नागरिक और अन्य लोग आ रहे हैं।'

'मुझे क्या करना होगा ?'

'मेरे साथ पूजा करनी होगी।'

'क्यों ?'

'मुझे दासी बनाया है, यह प्रमाणित करना होगा।'

'मुझे दास बनाया है, इस का प्रदर्शन है ?

'बुरा है ?'

'बहुत अच्छा है। पर मुझ जैसा साधारण व्यक्ति...........'

कमला ने मलय के मुँह पर हाथ रख दिया और उनके सिर के नीचे हाथ देकर उन्हें बैठा दिया।

मलय स्नानादि करने चले गये। चेटी ने ससंभ्रम आकर कहा—महाराजाधिराज जयन्त और प्रधान मन्त्री पधारे हैं।

कमला ने चौंक कर कहा—क्या ?

'हाँ देवि ! महाराज और प्रधान मन्त्री !'

'कहाँ हैं ?'

'शिष्टमण्डप (अतिथियों के बैठने का स्थान) में।'

'आती हूँ।'

कमला दोनों को प्रणाम कर बैठी। महाराज ने कहा—तुमने तो आमन्त्रण नहीं भेजा, पर हम चले आये।

कमला ने सिर झुका लिया, कहा—दासी को साहस नहीं हुआ।

'पर त्यागपत्र भेजना क्या आवश्यक था?'

'महाराज, मैं शिक्षा प्राप्त करना चाहती हूँ।'

'कैसी?'

'वीणा की।'

'वीणा की शिक्षा! तुम?'

'हाँ महाराज। महाराजाधिराज स्वनामधन्य ललितादित्य के शिष्य से।'

'महाराज जयापीड़ से?'

'नहीं, उनके एक शिष्य और हैं, उन से।'

'हूँ, काश्मीर जाओगी?'

'वे यहीं पधारे हैं।'

'अच्छा! उनका शुभनाम?'

'आर्य मलयानिल।'

'तुम्हारे वैद्य?'

'जी हाँ!'

'वे वीणा बजाते हैं?'

'अपूर्व!'

'उन्हीं के साथ आज कामदेव पूजन भी है?'

'प्राणप्रिय से शिक्षा प्राप्त करना क्या अनुचित है?'

'इस से बढ़कर सौभाग्य नहीं। आर्य मलयानिल कहाँ हैं?'

'स्नान कर रहे हैं।'

'हम उनसे मिलना चाहते हैं।'

'जो आज्ञा। मैं उन से कहती हूँ।'

'उन से निवेदन करो।'

कमला चली गयी। थोड़ी देर के बाद वह मलयानिल के साथ आयी।

महाराजाधिराज जयन्त और प्रधान मन्त्री उठ खड़े हुए। महाराजाधिराज ने आगे बढ़कर कहा—स्वागत। आपका हाथ कैसा है?

मलय नमस्कार करते हुए चौंके। महाराज जयन्त ने कहा—मैंने ज्योतिष का कुछ अभ्यास किया है। कमले! आज रात को इन्होंने अद्‌भुत वीरता प्रकट की है।

कमला ने आशंका और चिन्ताभरी दृष्टि से महाराज को देखा।

महाराज कहने लगे—केवल एक असिपुत्रिका से सिंह को मार डालना इन्हीं का काम है।

कमला कुछ न समझी।

महाराज कहते चले—राज्य में एक नरखादक सिंह कई दिनों से उत्पात कर रहा था। उसे मारने के सब प्रयास विफल हुए। इन्होंने उसे समाप्त कर दिया। उसी से युद्ध करने में इन के हाथ में क्षत हुआ है।

कमला और भी संभ्रम में पड़ गयी।

महाराज ने कहा—सिंह के मुख में इन के हाथ का मांस और अंगद प्राप्त हुआ है।

प्रधान मंत्री ने अंगद आगे बढ़ाया।

मलय ने कहा—महाराज! आप को असत्य समाचार मिला है।

महाराज ने कहा—श्रीमान्! इधर देखिये।

महाराज ने अंगद का नीचे का भाग सामने किया। उस पर काश्मीर का राज्यचिन्ह बना था और मलय का मुख।

महाराज ने कहा—महाराज जयापीड़! मेरा राज्य, मेरा शरीर, मेरा सर्वस्व, आपके चरणों में है।

कमला चौंककर पीछे हटी। उस ने मलय की ओर देखकर कहा—तुम... महाराज!

मलय ने उसे सहारा देकर कहा—मैं मलय हूँ।

महाराज जयन्त ने आगे बढ़कर महाराज जयापीड़ को हृदय से लगा लिया और कहा—महाराज! आप देवी कमला से......

जयापीड़ ने कहा—विवाह करूँगा।

महाराज जयन्त ने अपना उत्तरीय कमला के सिरपर ओढ़ाते हुए कहा—तो इस क्षण से कमला 'बधू' शब्द की अधिकारिणी है और वह मेरी कल्याणी की मर्यादा की भी अधिकारिणी है।

कमला कम्पित होकर गिर-सी पड़ी।

—:०:—

श्री मोहनलाल गुप्त

जन्मकाल रचनाकाल

१६७१ वि० १६३२ ई०

अँधेरी रात

अँधेरी रात—और आधी। अभी-अभी घड़ी ने बारह बजाये पर इसे सुना किसने। रजत अपनी खिड़की पर खड़ा देख रहा था बाहर। पहरे का सिपाही सो रहा था। गली के मोड़ पर जलती हुई बूढ़ी लालटेन अपने अंधकारमय भविष्य को देखने का प्रयास कर रही थी। दिन भर घोड़ों और मनुष्यों के पैरों द्वारा रौंदी जानेवाली सड़क अब शान्त हो रही है—थकित-पीड़ित सो रही है। कुत्तों को उसका सोना नहीं सुहाता—भूँक-भूँक कर उसकी नींद हराम कर रहे हैं। आसपास घरों में श्मशान की नीरवता व्याप रही है। ऐसा लगता है जैसे मनुष्य का अस्तित्व ही न हो—बूढ़ी दुनिया हमेशा के लिए सो गयी हो।

अनन्त शून्य से हृदय के अंधकार का एकीकरण करने के लिए रजत घर से निकल पड़ा। बदन पर एक कुरता और एक धोती, बस। कुरते के बटन खुले हुए, बाल बिखरे हुए। कोई देखता तो कहता कि स्वप्न में चल रहा है। गली के कुत्तों ने स्वागत किया, पर परिचित देखकर चुप हो गये। गली से सड़क पर आया फिर भी अन्धकार साथ नहीं छोड़ता। सड़क के किनारे के विद्युत-बल्ब हवा में लटकते हुए जुगनू मात्र लग रहे थे। बाहर-भीतर चारों ओर अन्धकार, घोर अन्धकार। मस्तिष्क का भार लिए रजत आगे बढ़ रहा है। टटोल कर चलने की आदत नहीं। अन्धकार में पैर पड़ते ही जा रहे हैं—आगे। जीवन में भी तो ऐसे ही बढ़ना पड़ता है।

रजत चल रहा है। वह बस चलना चाहता है। सीमा पर पहुँचने के लिए उतना उत्सुक नहीं। तब उसके लिए एक समस्या बन जायगी अब क्या करे।

इसीलिए वह चलने में ही जीवन की सार्थकता, अधूरे चित्र में ही चित्र का सौंदर्य, अपूर्ण यात्रा में ही यात्रा का आनन्द मानता है। वह इसी में संतुष्ट है।

पैरों में ठोकर लगी। रजत रुककर देखता है। चप्पल से निकले हुए अंगूठे को हलकी-सी खराश लगी। वह हँसा—जीवन यात्रा में राह के रोड़े कष्ट ही देते हों सो बात नहीं—थोड़ी देर के लिए विश्राम मिल जाता है। पत्थर के छोटे-छोटे टुकड़े अकसर जीवन धारा के मोड़ बन बैठते हैं।

अरे यह क्या—अचानक एक धक्का लगा, सड़क और गली के मोड़ पर। रजत डर-सा गया। देखा—तम से आवृत कोई स्त्री, गोद में कुछ छिपाये—शायद बच्चा था। बच्चा चिहुँक कर रो पड़ा। स्त्री उलटे पैरों तेजी से भाग खड़ी हुई। रजत खड़ा का खड़ा रह गया—प्रस्तर मूर्ति-सा। कुछ समझ में नहीं आया। अँधेरी रात, स्त्री, बच्चा......माँ......मस्तिष्क के लिए एक उलझन पैदा हो गयी।

रजत फिर चलने लगा—सोचता हुआ। मस्तिष्क अपना काम कर रहा था, पैर अपना। दोनों अपना काम खतम करने के लिए—सीमा पर पहुँचने को उत्सुक थे—पर रजत नहीं। रजत के लिए सीमा न थी, विस्तार ही विस्तार था।

तो वह स्त्री कौन थी, घर से क्यों निकली, कहाँ जा रही थी, यह अँधेरी रात और एकाकी—कितना साहस! रजत यह क्या सोचने लगा—उस स्त्री को इतना महत्व क्यों दिया जाय। सड़क पर कितने ही तो चलते रहते हैं। कहीं भी किसी से मुठभेड़ हो सकती है। इसमें विशेषता ही क्या है? पर यह अँधेरी रात—एकाकी—गोद में बच्चा!

रजत का मस्तिष्क उलझा जा रहा था। वह तेजी से आगे बढ़ रहा था। सड़क भी उसके साथ चली जा रही थी। निर्जन सड़क के दोनों किनारों के वृक्षों की कतार भयावनी सृष्टि कर रही थी। ऐसा लग रहा था जैसे दोनों ओर विशाल बाहु फैलाये दैत्य चुपचाप खड़े हैं। तमसावृत्त प्रकृति भी जनसमुदाय के समान निद्रा के आलिंगन में जकड़ी निश्चेष्ट थी। घोंसले शब्द-शून्य, पल्लव शांत थे। सड़क पर केवल रजत चल रहा था। जनशून्य, नीरव, शान्त सड़क सो रही थी—ठण्डी हवा लोरी गाती-सी लग रही थी।

दोनों ओर घरों के अन्दर मानव अपने सपनों की दुनिया लिए सो रहे हैं—लेकिन कब तक? रजत नहीं चाहता कि प्रातःकाल हो और इतने अमृत मानवों का सुनहरा संसार ढह जाय, खंडहर बन जाय। इन्हीं टूटे सपनों के आघात से संसार इतना जीर्ण-शीर्ण हो चला है—मानव इसे नहीं समझता।

रजत घाट के किनारे आ गया है। सामने गंगा की तमसावृत्त शान्त जल-धारा है। जल की नीलिमा, वृक्षों की हरीतिमा और अन्धकार की कालिमा सब मिलकर एक हो गयी हैं। गङ्गा तट की विशाल अट्टालिकाएँ सर झुकाये खड़ी हैं। उनके सारे वैभव-गर्व को मृत्यु का-सा अन्धकार निगल रहा है। रजत की आँखों के सामने था केवल धुँधलापन। अचानक दूर किनारे पर एक चिता जल उठी—जैसे विधवा रजनी ने सिन्दूर लगाया हो।

रजत का मस्तिष्क प्रकाशित हो उठा। चिता की रूप-रेखा सामने थी। वह अपलक चिता की लाल लपटों का सौंदर्य निरख रहा था—जीवन को निगलने-वाली मृत्यु की मादक हँसी का दर्शन कर रहा था। चिता की लपटों का उल्लास मृत्यु का विजयोन्माद है। चारों ओर अन्धकार है—मृत्यु का ही साम्राज्य तो! जीवन की एक झलक भी नहीं।

अचानक बच्चे की चीख सुनाई दी। रजत ने ध्यान से देखा—सीढ़ियों के ऊपर एक स्त्री की रूप-रेखा दिखाई दी। वह बुर्ज के सिरे पर खड़ी नीचे जल-राशि की ओर देख रही थी। रजत आशंका से काँप उठा। दबे पैरों पीछे आ खड़ा हुआ। स्त्री ने चौंककर पीछे देखा।

'डरो नहीं, यहाँ क्या कर रही हो?'

स्त्री ने गोद के बच्चे को सिमटा लिया। बोली—तुम भी पुरुष हो, मैं तुमसे नहीं डरती, हटो सामने से।

विद्रोहिणी नारी की रूप-रेखा सामने थी। रजत सहम गया।

'क्या किसी पुरुष ने तुम्हें सताया है?'

'हाँ, सताया है पर मुझे तुम्हारे कोमल शब्दों का मरहम नहीं चाहिये। मुझे किसीकी भी सहानुभूति नहीं चाहिये।'

'तो तुम क्या चाहती हो?'

'मुझे अपना काम करने दो।'

'कौन-सा काम ?'

एकाएक बच्चा चीख उठा।

'इसे तुम फेंकना चाहती हो ? जीवित शिशु को गङ्गा की गोद में बहा दोगी ? तुम माता हो ?'

माँ रो पड़ी। बच्चे को छाती से लगा लिया।

'घर लौट जाओ। माँ बनना कोई पाप नहीं। इस बच्चे की माँ बनकर दुनिया को दिखा दो कि तुम किसी से नहीं डरती।'

'नहीं, डरती हूँ, मैं पुरुषों से डरती हूँ। तुमसे डरती हूँ। तुम्हारे बीच रहना है। तुम लोग जीने नहीं दोगे। नहीं, नहीं, मैं अपने बच्चे को साथ लेकर मरूँगी।'

एक के बचाने की चेष्टा में दो के प्राण जा रहे थे। रजत काँप उठा।

'अच्छा, यह बच्चा मुझे दे दो।'

'तुम क्या करोगे ?'

'घबड़ाओ नहीं, तुम माँ बनने से डरती हो पर मैं साहस कर सकता हूँ पिता होने का।'

'पुरुष जो हो।'

'कुछ भी कहो, बच्चा मुझे दे दो।'

स्त्री रजत के पैरों पर गिर पड़ी—बच्चे को वहीं छोड़ अँधेरे में एक ओर चली गयी। एक सिसकती हुई आवाज अब भी सुनाई दे रही है—जैसे अँधेरी रात रो रही हो।

रात खतम होने को आयी। सामने दूर पर चिता बुझ रही थी। सृष्टि में जीवन का संचार हो रहा था, दिशाओं में जागरण का आभास दिखाई दे रहा था।

सड़क में जान लौट आयी। रजत घर लौट रहा था। उसकी गोद में बच्चा था।

श्रीमती कमला चौधरी

जन्मकाल रचनाकाल

१९०६ १९३३ ई०

स्पन्दन

'महात्माजी, सुरीला की जीवन-नौका की पतवार अब मैं आपके हाथों में देता हूँ। आपकी कृपा-दृष्टि के सिवा संसार में इस दुखिया के लिए दूसरा शान्ति का साधन नहीं है।'

'अपनी एक मात्र कन्या को अपने समीप न रखकर आश्रम में छोड़ने के लिए विकल क्यों हो?'

'महात्माजी, कभी आप मेरे मित्र थे, मेरी जिन्दगी आप से छिपी नहीं है। आप महान् आत्मा हो! आपने अपने जीवन में घोर परिवर्तन कर लिया है—आज तपस्वी हो। किन्तु मैं—मैं जो आज से बीस वर्ष पहले था, बिलकुल वही हूँ। केवल इतना अन्तर हुआ है कि जिस दिन से सुरीला विधवा हुई मुझे अपने दुर्व्यसन नरकाग्नि के समान जला रहे हैं।

'महात्माजी, मैं महानीच हूँ, पापी हूँ, दुराचारी हूँ, व्यभिचारी हूँ। किन्तु मेरी पुत्री सुरीला देवी है, लक्ष्मी है, पवित्रता की प्रतिमा है। गुरुदेव, उस पर दया करो। मुझे भय है कि मुझ पामर के दुर्व्यसनों का प्रभाव कहीं उसके पुनीत विचारों को दूषित न कर दे। अब तक वह पूर्णतः संसार के संसर्ग में नहीं आई है। वह कवि है और किसी और लोक में विचरण करती रहती है। किन्तु नव-यौवन का विकास उसे इस पापी संसार से परिचित कराके रहेगा। देव, उसकी पवित्रता की रक्षा करो। वह विधवा है। मैं उसका पतित पिता उसकी आत्मोन्नति का इच्छुक हूँ। मेरी अन्तिम अभिलाषा है, मेरी देवी समान पुत्री देवी ही बन कर रहे।'

महात्मा ने सुरीला को आश्रम में रखना स्वीकार कर लिया।

(२)

महात्मा कभी बैरिस्टर थे। उनकी स्त्री लक्ष्मी ने अन्तिम समय में कहा था—दूसरा विवाह न करना, वरना मेरे बच्चों की दुर्गति हो जायगी। दूसरी माँ प्यार के बदले इनसे......

क्रूर काल ने लक्ष्मी को अपना वाक्य पूरा नहीं करने दिया किन्तु यह अधूरा वाक्य ही बैरिस्टर दीक्षित के हृदय पर अमर छाप डाल गया। लक्ष्मी की उन्मीलित आँखें जाने कैसी व्यथा छोड़ गई थीं, वे टूटते हुए शब्द विनय की ऐसी अनन्त सीमा दिग्दर्शन करा गये थे कि बैरिस्टर दीक्षित ने अनेक विपत्तियों का सामना किया किन्तु दूसरा विवाह नहीं किया। उस दिन से उनके कार्यक्रम में बच्चों का लालन-पालन और मृत लक्ष्मी के चित्र का पूजन सम्मिलित हो गया।

स्त्री के देहावसान के समय बैरिस्टर दीक्षित नवयुवक ही थे। नवीन सभ्यता, पश्चिमीय शिक्षा और फैशनेबिल सोसाइटी का रंग उनमें भी पूर्ण मात्रा में व्याप्त था। और शायद उनके वे ही पूर्व संस्कार चेष्टा करने पर भी उनके मन को चलायमान करते थे। हमेशा उनके हृदय में देवासुर-संग्राम छिड़ा रहता। कितनी ही बार आसुरी वृत्तियों ने अपनी विजय-घोषणा करने का निश्चय कर लिया लेकिन लक्ष्मी की उन आँखों और शब्दों ने सदा उनकी रक्षा की।

संयम के अराधना-हेतु स्त्री-जाति से सर्वथा दूर रहने का उन्होंने निश्चय किया। उनके कई मित्र ऐसे थे, जिनकी स्त्रियों से भी उनकी काफी घनिष्ठता थी। लक्ष्मी के मृत्यु के बाद उन लोगों ने बैरिस्टर दीक्षित को पूर्ण सहानुभूति के साथ बच्चों के लालन-पालन में सहायता भी दी किन्तु बैरिस्टर दीक्षित ने उन लोगों की सहानुभूति की जरा भी परवा न करके उससे मिलना—जुलना तक बन्द कर दिया। वे अपने चारों ओर के वायुमण्डल में अब स्त्री के नाम को भी स्थान देना नहीं चाहते थे।

बच्चों को पालने वाली पुरानी आया से भी कह दिया गया कि अब घर जाओ तुम्हारी पेंशन प्रतिमास मनीआर्डर द्वारा पहुँचती रहेगी। इस मामले में बैरिस्टर दीक्षित ने न आया के आँसुओं की चिन्ता की, न बच्चों के मानसिक

क्लेश की। हाँ, बच्चों को स्वतंत्रता थी कि जब इच्छा हो, आया के घर जाकर उससे मिल आया करें। उनके अन्य कर्मचारियों में जो सपत्नीक थे, उनके वेतन में वृद्धि के साथ उन्हें आज्ञा हुई कि अलग घर लेकर अपने परिवार को रखें।

यहाँ तक कि बैरिस्टर साहब ने किसी स्त्री-मुवक्किल का केस भी लेना छोड़ दिया। अपनी कन्या सुनीता से बोर्डिंग-हाउस में मिलने तक न जाते, क्योंकि अध्यापिका से मुकाबिला किये बिना लड़कियों से मिल सकना बोर्डिंग-हाउस के नियमानुसार सम्भव नहीं था। छुट्टियों में सुनीता का बड़ा भाई उसे लिवा लाता, तभी पिता-पुत्री एक-दूसरे को देख सकते।

इस प्रकार अनेक कठिन नियमों के आवरण में वे अपने को छिपाकर रखने लगे।

(३)

बैरिस्टर दीक्षित अपने साथ इतनी सख्ती करने पर भी मानसिक संयम न रख पाते। हर समय मानसिक भावनाओं के साथ उनको घोर युद्ध करना पड़ता। दिन-भर किसी प्रकार विभिन्न कार्यों में चित्त को उलझाये रखते रात में गीता-पाठ के साथ निद्रादेवी का आह्वान करते, फिर भी स्वप्न में अतीत काल के हास-विलास के दृश्य अपनी छाया डाल ही जाते।

श्यामाचरण वकील के यहाँ पार्टी है। कैलाश बिहारी आगा की स्त्री रागिणी आज कैसी सज-धजकर आई है। रागिणी के रूप की बराबरी करने वाली फैशनेबिल स्त्री जगत में दूसरी नहीं है। धानी साड़ी मुख पर कैसी खिल रही है।... ऐसे स्वप्न उनके चित्त को उद्विग्न कर जाते।

बैरिस्टर साहब आफिस में कानून का अध्ययन कर रहे हैं और बाहर बरामदे में कोई नया मुवक्किल मुहर्रिर से गुफ्तगू करता है, तो बैरिस्टर साहब की चितेरी कल्पना सब कुछ भुलाकर स्त्री के चित्र उनके सम्मुख खींचती। कोई सफेद साड़ी पहिने विधवा होगी। पति की सम्पत्ति पर किसी ने अधिकार कर लिया होगा और अब अब रोटी भी देना अस्वीकार करता होगा। लाचार मुकदमे की बात सोच कर आई हैं। ध्वनि से भी स्त्री ही प्रतीत होती है। संकोच से धीरे-धीरे बोल रही है।

मुहर्रिर के द्वारा मशविरा तो दे दूँगा किन्तु केस अपने हाथ में नहीं लूँगा।

उसी समय मुहर्रिर कमरे में आता, बैरिस्टर साहब की निमग्नता में बाधा पड़ती वे कुछ कम्पित हृदय से कल्पनानुसार सुनने की प्रतीक्षा करते। मुहर्रिर कहता—साहब, छदम्मीलाल नामक एक मुवक्किल आया है।

लज्जा और ग्लानि से चित्त चंचल हो उठता। वे सोचते—यह क्या है? पहले तो मेरी मानसिक स्थिति ऐसी दुर्बल नहीं थी। प्रवृत्तियों को पराजित करने के साधन उल्टे मुझे ही पराजित कर रहे हैं और मानसिक उन्नति के मार्ग से विमुख करके पतन के मार्ग की ओर आकृष्ट करते हैं। क्या उपाय करूँ भगवन्!

(४)

पुत्र-पुत्रियों के कर्तव्य से निवृत्त होकर बैरिस्टर दीक्षित ने संन्यास ले लिया। हिमालय की पहाड़ियों में भ्रमण करते हुए एक पहुँचे हुए महात्मा से उनका साक्षात हुआ। उसी दिन वे उनके शिष्य हो गये।

महात्मा वास्तव में एक दिव्य पुरुष थे। संसार से विरक्त होकर वर्षों उन्होंने कठिन तपस्या की थी। बहुत दिनों तक मानव-समाज से परे भयानक जंगलों और दुर्गम पहाड़ों में विचरण करते रहे थे किन्तु अपनी साधना को सफलीभूत करके अब फिर मानव-समाज के उपकार की कामना से इस ओर आ गये थे। योगिराज की इच्छा एक आश्रम बनाने की थी, जिसमें भटकते हुए प्राणियों को शान्ति और अध्यात्मवाद का अध्ययन करने का अवसर मिले साथ ही निर्धनों के लिये वे एक चिकित्सालय भी खोलना चाहते थे। उन्हें अनेक संजीवनी जड़ी बूटियों का ज्ञान था।

बैरिस्टर दीक्षित ने अपनी सम्पत्ति का आधा भाग देकर योगिराज की इच्छा पूरी की और स्वयं भी उनके साथ आश्रम में रहकर सेवा और उपासना में तन्मय हो गये।

योगिराज की कृपादृष्टि से पूर्ण शान्ति भी प्राप्त हुई और थोड़े ही दिनों में कठिन अभ्यास और तपस्या के द्वारा वे एक महान् तपस्वी बन गये। योगिराज के अनेक शिष्यों में बैरिस्टर दीक्षित का स्थान सर्व प्रथम था। चारों ओर उनकी ख्याति फैल रही थी। उन पर भी लोगों की श्रद्धा भक्ति उनके गुरु से कम नहीं थी।

योगिराज के शरीर छोड़ देने पर आश्रम ने गुरुदेव के पद के योग्य बैरिस्टर दीक्षित को ही समझा और उसी दिन से उन्हें महात्मा की पदवी भी मिल गई।

अब वे बैरिस्टर दीक्षित नहीं, एक प्रसिद्ध महात्मा थे ।

(५)

सुरीला को आश्रम की सीढ़ियों पर बिठाकर उसके पिता गुरुदेव के दर्शन करने गये थे । सुरीला सुदूर तक गंगा की उज्ज्वल जल धारा का अवलोकन करती हुई अपने विचारो में निमग्न थी । पिता मुझे सन्यास लिवाना चाहते हैं कहते हैं,—इन महात्मा की कृपा से मुझे कृष्ण भगवान के दर्शन हो जायगें, मुझे शान्ति मिलेगी। जिन नट नागर के स्वप्न मैं अपनी कविताओं में अंकित करती रहती हूँ, उनके दर्शन पाने से बढ़ कर और क्या सौभाग्य हो सकता है, किन्तु पिता से विलग होना भी तो आसान नहीं है । और अपने अन्दर अशान्ति तो मुझे कुछ प्रतीत होती नहीं। लोग मुझे दुखिया समझ कर मुझ पर करुणा का भाव दीखलाते हैं, मेरे दुख पर आँसू बहाते हैं पर मै तो बहुत सुखी हूँ । पिता मुझे कितना प्यार करते हैं ।

मेरी माँ नही है, भाई-बहन भी नहीं हैं, मैं अकेली हूँ, लेकिन यह अकेलापन अब तक तो कुछ अखरता नहीं है । कितने तो काम हैं, मुझे यह सोचने की फुर्सत ही कब मिलती है कि मैं अकेली हूँ ।

पति के मैंने दर्शन ही नहीं किये । कभी मन दुखी अवश्य होने लगता है । मेरा विवाह पिता ने इतनी छोटी उम्र में क्यों कर दिया ? विलायत जाते समय पतिदेव मुझ से मिलने आये थे पर लज्जावश मैं उनके समीप गई ही नहीं । वे नाराज़ होकर प्रातः ही चले गये, और विदेश ही में उनकी मृत्यु हो गई । यह ख़याल अवश्य हृदय को ठेस पहुँचाता है ।

पिता को छोड़ कर मैं यहां कैसे रहूँगी ? यह आश्रम तो मेरे घर जैसा भी नहीं है । गंगा का किनारा होने से कुछ सुहावना अवश्य जान पड़ता है । मुझे यहाँ फुलवारी लगाने को कहाँ मिलेगी ? कविताएं भी शायद ही लिख सकूँ । महात्मा की आज्ञा पर ही तो चलना होगा न ।

और फिर पिताजी को कितना कष्ट होगा ? अँधियाले ही में चाय पीते हैं । कोई नौकर भी इतने सबेरे नहीं उठ सकेगा । और मेरी मैना मुझे न देखकर व्याकुल हो जायगी । मदनगौर बिना मेरे खिलाये आधा चारा भी नहीं खायगा ।

कहीं नौकरों ने संध्या समय कबूतरों को बन्द नहीं किया, तो उन्हें बिल्ली खा

जायगी। मेरे पीछे मेरी फुलवाड़ी उजड़ जायगी। मेरी सारी चिड़ियाँ मर जायँगी। मिसरानी के बनाये खाने से पिता जी का पेट भी नहीं भरेगा। वे और भी दुबले हो जायगे, खाँसी भी बढ़ जायगी।

सम्भव है, हर समय शराब ही पीते रहें। अभी तो मैं बहुत देर तक उन्हें बातों में लगा लेती हूँ, ताश खेलती हूँ, गाना सुनाती हूँ और संध्या को चिड़िया-खाने की सैर कराती हूँ। फिर संध्या से ही बोतल लेकर बैठ जाया करेंगे। परमात्मा क्या होगा? मैं तो चुपके से शराब में पानी मिला देती हूँ मेरे पीछे खालिस शराब की पूरी बोतल ही पी गये, तो फिर मुँह से खून गिरने लगेगा। कुछ भी हो, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मेरे पिता शराब पीते हैं, तो क्या हुआ? उन के बराबर मेरे लिए कौन हो सकता है? कौन मुझे वैसा प्यार करेगा? मैं यहाँ किसी प्रकार भी नहीं रहूँगी। किन्तु पिता को कैसे समझाऊँ, वे नाराज़ हो जायगें, दुखी होंगे सोचते-सोचते सुरीला के सुन्दर नेत्रों से बड़े-बड़े मोती जैसे आँसू टपकने लगे।

महात्मा का शिष्य शेखर स्नान कर के आ रहा था, दूर से सुरीला श्वेत संग-मरमर की प्रतिमा-सी जान पड़ी। सीढ़ी पर वह ठिठक गया-कोई दुखिया है, रो रही है। उस ने मीठी वाणी में पूछा—देवी, रोती क्यों हो? क्या मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ?

सुरीला पुरुषों के संसर्ग में नहीं रही थी लेकिन प्रकृति से ही वह निर्भीक थी। लज्जा के वातावरण में वह पड़ी ही न थी। उस ने बालकों की भाँति आंसू पोंछते हुए पूछा—तुम महात्मा के पुत्र हो?

मैं महात्मा जी का शिष्य हूँ। वे मुझ पर पुत्र की भाँति ही स्नेह करते हैं।

तो तुम कुछ न कर सकोगे। इसी आश्रम के हो न?

'आश्रमवासी होने से क्या हुआ? कुछ कहो भी तो। सम्भव है, मैं तुम्हारा कुछ उपकार कर सकूँ। हम लोगों का ध्येय ही तो परोपकार है।'

सुरीला ने क्षण भर पहले सोची हुई सारी बातें शेखर को सुना दीं और बोली—क्या अब तुम मेरे पिता से सिफारिश कर सकोगे? यों तो मेरे पिता मेरी प्रत्येक इच्छा पूरी करते हैं मगर उनका विचार जम गया कि इस आश्रम में रहने से मेरा कल्याण होगा।

शेखर ने अत्यन्त मधुर शब्दों में सुरीला के पिता के विचारों का समर्थन किया और अनेक प्रकार से सान्त्वना देते हुए उसने कहा—इसमें क्या हर्ज है ? पिता की आज्ञानुसार कुछ दिन यहां रह देखो। यदि मन न लगे, तो चली जाना। यहाँ किसी प्रकार का बन्धन थोड़े ही है। तुम्हारी स्वतंत्रता में भी बाधा नहीं पड़ेगी। अपनी इच्छानुसार कविता भी कर सकोगी, फुलवारी में विचरण भी कर सकोगी। यहाँ शिक्षा आदि के अनेक साधन हैं। चलो, तुम्हें यहाँ का पुस्तकालय और चित्रशाला दिखलाऊँ। यहाँ तुम चित्रकला, चिकित्सा, संगीत-कला आदि का भी अध्ययन कर सकती हो।

सुरीला को यह जानकर बहुत सान्त्वना मिली कि शेखर भी कवि है। यहाँ उसे सहानुभूति भी मिल सकती है। शेखर के शब्दों में जाने कैसी मोहनी थी कि सुरीला आश्रम में रहने को तैयार हो गई।

पिता शीघ्र-शीघ्र आने का वादा करके चले गये।

(६)

सुरीला और शेखर में मित्रता हो गई। आश्रम में स्त्री-पुरुषों के परस्पर मिलने-जुलने के लिए कोई खास नियम नहीं था। सबको पूर्ण स्वतंत्रता थी। दोनों आश्रम के कार्य, पूजा-उपासना आदि से निवृत्त होकर कलकल-नादिनी गंगा के तट पर बैठ कर कविता लिखते, कभी वार्तालाप करते और कभी अध्यात्मवाद का विषय लेकर वाद-विवाद करते। दोनों के विचारों में किसी प्रकार की अपवित्रता नहीं थी। वे यथाशक्ति गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलते। गुरु के उपदेशानुसार ही अध्ययन, उपासना तथा अभ्यास करते।

किन्तु गुरु को यह मैत्री खटकी। एक नवयुवक और नवयुवती का इस प्रकार हर समय का साथ, एक का दूसरे के प्रति इतना अनुराग, उचित नहीं है। संयम में विघ्न पड़ सकता है। शेखर अभी अभ्यास ही कर रहा है, तपस्वी नहीं बन पाया है, और सुरीला को तो आश्रम में प्रविष्ट हुए अभी कुछ ही दिन हुए हैं। गुरुदेव ने अपने ये विचार किसी पर प्रकट तो नहीं किये पर इन दोनों पर कड़ी दृष्टि रखना आरम्भ कर दिया।

उन्होंने शेखर से कहा—पुत्र, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। भगवान तुम पर

शीघ्र प्रसन्न होंगे। अब वह समय आ गया है कि तुम कुछ दिनों तक एकान्त-वास में तपस्या करो। एक सप्ताह बाद तुम्हें एक पहाड़ की कन्दरा में जाना होगा।

शेखर ने मस्तक नत करके गुरुदेव की आज्ञा स्वीकार की। गुरु ने सुरीला को नीचे से बदलकर छत पर अपने कमरे के समीप एक दूसरा स्थान दे दिया। सुरीला के मन में शंका हुई—क्या गुरु मेरे ऊपर सन्देह करते हैं किन्तु उसने स्वयं ही अपने विचार की निन्दा की और गुरु की श्रद्धा-भक्ति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने दिया।

उस दिन रजनी दुग्ध से—स्नान कर रही थी। उसके शरीर से दुग्ध धारा ने बहकर सारी प्रकृति को श्वेत बना दिया था। उसी श्वेत वातावरण में हरी घास की सुकोमल शय्या पर बैठे सुरीला और शेखर वार्तालाप कर रहे थे। शेखर ने कहा—सुरीला, गुरुदेव की आज्ञा से अब मैं एक मास के लिए एकान्तवास करने जाऊँगा।

सुरीला पर वज्रपात हुआ। उसे ऐसा जान पड़ा, मानो हृदय की धड़कन बन्द हुई जाती है। वेदना उसके हृदय को मसलने लगी। वह भयभीत हिरणी की नाईं छलकते आँसुओं से शेखर का मुँह निहारती रह गई।

सुरीला की यह दशा देखकर शेखर का मन भी जाने कैसा होने लगा किन्तु उन्होंने हृदय को दृढ़ करके कहा—घबराती क्यों हो! शान्ति से चित्त एकाग्र करके रहो। गुरु के उपदेशों पर मनन करना; तुम्हारा चित्त सावधान हो जायगा।

सुरीला ने कहा—शेखर, तुम चले जाओगे, तो मैं किसी प्रकार भी यहाँ न रह सकूँगी। मुझे पिता के यहाँ पहुँचा दो।

'नहीं, सुरीला, इतने दिनों के अभ्यास को इस प्रकार न तोड़ो। मैं गुरुदेव से प्रार्थना करूँगा कि वे अब तुम्हें अधिक समय दें। गुरु के उपदेशों से तुम्हें शान्ति मिलेगी।'

घबड़ाकर सुरीला ने कहा—नहीं, शेखर ऐसा न करना बल्कि गुरु से कहो, मुझे भी एकान्तवास की आज्ञा दें।

'ऐसा तो नहीं हो सकेगा सुरीला, गुरुदेव तुम्हें एकान्तवास में जाने की आज्ञा नहीं देंगे। अभी तुम उस कठिन तपस्या में सफल न हो सकोगी!'

'तो शेखर, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मुझे क्षमा करना, शेखर, गुरु से मुझे एक प्रकार का भय लगता है। उनसे अधिक मुझे तुम पर......'

बीच ही में बात काटकर शेखर ने ताड़ना के शब्दों में कहा—कैसी बातें करती हो, सुरीला! गुरुदेव पर भक्ति करो।

काँपते हुए स्वर से सुरीला ने कहा—शेखर, मैंने अनेक बार देखा है, गुरु छिपकर हम दोनों की बातें सुनते हैं।

'तो दोष क्या है? हम लोगों पर दृष्टि रखना गुरु का कर्त्तव्य है।'

सिसकते हुए सुरीला बोली—इतना ही नहीं, शेखर, रात्रि में मुझे कई बार शुबहा हुआ, किवाड़ की दराज में से कोई मेरे कमरे में झाँकता है। तुमने जो अपना चित्र बनाकर मुझे दिया था, वह मेरे कमरे से कोई चुराकर ले गया। मुझे यह काम गुरु का ही जान पड़ता है। मैं यहाँ नहीं रहूँगी, या फिर तुम कुछ दिनों बाद जाना।

सुरीला सिसक-सिसक कर रोने लगी। क्षणभर मौन रहने के बाद उसने शेखर से कहा—शेखर, मेरा मन तुमसे भय नहीं खाता।

इस सरलता पर शेखर हँस दिया। और इस समय इस प्रसंग को भुलाने के लिए उसने कहा—आओ, कुछ देर रामायण का पाठ करें।

(७)

सुरीला रामायण गाने लगी। शेखर आधा लेटा हुआ सुनने लगा। पुष्पवाटिका का मनोरम प्रसंग चल रहा था। दोनों तुलसीदास के भक्ति रस का स्वाद ले रहे थे, बिलकुल रामायण में तन्मय थे।

और गुरु? गुरु छत की खिड़की पर आधी रात में दोनों के बीच का भेद लेने के लिए बैठे थे! जाग्रत अवस्था में ही गुरु को स्वप्न-सा भान हुआ—यह सुरीला कितनी सुन्दर है, मानो सौन्दर्य स्वयं देवी-रूप में प्रकट हुआ है। रागिणी का रूप इसकी छाया के बराबर भी न था।

गुरु चौंक पड़े। आज वर्षों बाद अतीत काल की स्मृति क्यों हिलोरें लेने लगीं? 'हरि ओ३म्' उच्चारण करके गुरु ने आकाश पर हँसते हुए चन्द्रमा को देखा और क्षितिज पर बैठी हुई सुरीला पर दृष्टि डाली। उन्हें ऐसा जान पड़ा, मानो चन्द्रमा का कुछ भाग टूटकर सुरीला बन गया है। उन्हें प्रतीत होने लगा कि भगवान ने प्रसन्न होकर उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान की है। सुरीला चन्द्रमा का अंश ही नहीं, रामायण की सीता भी है विष्णु की लक्ष्मी भी है, कृष्ण की राधिका भी है और कामदेव की सौन्दर्यवती रति भी है। गुरु बेसुध होकर, भक्ति-सागर में डूबकर राधा, लक्ष्मी, सीता के दर्शनामृत का पान करने लगे।

इस समाधिस्थ अवस्था में कितना समय व्यतीत हो गया, गुरु जान ही न सके। कुक्कुट ने मदमाती बांग से उषा के आगमन की सूचना दी, तो शेखर ने कहा—सुरीला, उठो, आज आश्रम की धुलाई करने की हम लोगों की पारी है। मैं पानी लाता हूँ, तुम चलकर पहले गुरुदेव का कमरा झाड़ दो।

गुरु खिड़की पर सर रखे निद्रा में निमग्न थे। यह समय तो उनका वायु-सेवन के लिए आश्रम से बाहर जाने का है। सुरीला झाड़ू लिये गुरु के जागने की प्रतीक्षा में द्वार पर खड़ी रही। गुरु मनोरञ्जक स्वप्न देख रहे थे—वृन्दावन विजन बन में चन्द्रदेव पूर्ण कलाओं से शोभायमान हैं। मनोमुग्धकारी रजत चन्द्रिका विपिन को सौरभ दान कर रही है, और उसी विमल चांदनी की शय्या पर सौ चन्द्रमा की कान्ति को लज्जित करने वाले भगवान कृष्ण दाहने कर में मुरलिका लिये नृत्य कर रहे हैं, और उन के बाएं पार्श्व में प्रियतमा राधिका शोभा पा रही हैं।

अनेक देवताओं के साथ गुरु भी विमान पर बैठे पुष्प-वर्षा कर रहे हैं। भक्त-वत्सल भगवान कृष्ण ने मुरलिका ऊपर उठाकर गुरु को समीप आने का संकेत किया। भक्ति में उन्मत्त होकर गुरु विमान से कूद पड़े और भगवान ने उन्हें अपने में लीन कर लिया। अब भगवान कृष्ण और गुरु जुदा नहीं थे।

फिर एक बार राधिका के मुख पर दृष्टि डाल कर मुरली मनोहर ने कहा—प्रिये, संसार में तुम सुरीला थीं और मैं महात्मा था। अभी मृत्यु लोक में फिर चल कर प्राणियों का उद्धार करना है।

इतना कह कर भगवान पूर्ण गति से नृत्य करने लगे। रासलीला समाप्त कर वे राधिका को लेकर फिर संसार में चले आये। अभी पृथ्वी का पूर्णोद्धार नहीं हुआ था।

राधिका बोली—प्राणेश, क्या मुझे अभी और विलग रहना होगा? इस बार की जुदाई तो सीता-बनवास से भी अधिक हो गई, देव।

कृष्ण ने राधिका का आलिंगन कर लिया और बोले—नहीं प्रिये, अब हम-तुम साथ रह कर ही पृथिवी का उद्धार करेंगे।

जाग कर भी गुरु को चेतना नहीं हुई। उन्मत्त की भाँति सुरीला का हाथ पकड़ कर बोले—राधिका प्रिये,.........

सुरीला गुरु का हाथ झटक कर चीखती हुई भागी—मुझे बचाओ, शेखर।

शेखर जल की बाल्टी लेकर सीढ़ियां पार कर चुका था। यह दृश्य देखकर अप्रतिभ-सा खड़ा रह गया। उसी समय सुरीला बिजली की भांति टूट कर उसके पैरों के समीप गिर पड़ी। बाल्टी की कोर माथे में चुभ गई और खून की धारा बह निकली।

बेसुध-सी सुरीला को गोद में उठाकर शेखर आश्रम से बाहर हो गया। सारे आश्रम में कोलाहल मच गया। घटना का पता लगाने के लिए आश्रमवासी गुरु के समीप गये। लेकिन दरवाजे बन्द थे। सबों ने समझा, गुरु समाधि में हैं। शेखर ने बिना कुछ कहे ही साथियों से विदा मांग ली।

पिता से चिपट कर सुरीला खूब रोई। पिता भी रोने लगे।

अच्छा किया आ गई सुरीला। अब मेरा अन्तिम समय निकट जान पड़ता है। बात करते-करते उन के मुँह से लाल-लाल रक्त गिरने लगा। शेखर उपचार में लग गया। सुरीला और भी बिलख उठी—मुझे अपने से जुदा कर के तुम ने अपनी क्या गति करली पिताजी।

× × × ×

नौकर ने शेखर के नाम एक पत्र लाकर दिया—

शेखर, सुरीला ने मेरी आँखें खोल दी। मैं...भ्रम में था जिसे अब तक

स्वप्न समझा था, वास्तव में हकीकत थी, और जिसे हकीकत समझी थी, वही स्वप्न था। मुझे अपने मार्ग का दिग्दर्शन अब हुआ। मैं जाता हूँ और आश्रम का भार तुम दोनों पर छोड़ता हूँ। तुम सुशीला से विवाह कर लो, तुम्हारा कल्याण होगा। मानुषिक प्रेम द्वारा ही तुम्हें दिव्य प्रेम का परिचय मिलेगा। प्रवृत्तियों के दमन करने से नहीं, बल्कि उन्हें आध्यात्मिक रूप में परिवर्तित करने से ही वास्तविक शान्ति की प्राप्ति होगी। यही तुम्हारे गुरु का अन्तिम उपदेश है।

श्रीमती शशि तिवारी

जन्मकाल रचनाकाल

१९१९ ई० १९३३ ई०

गिद्ध और श्रेवंती के फूल

वह सामनेवाला बँगला हमेशा कोई नया गुल खिलाकर अपने आपको आकर्षण का केन्द्र बना लेता है। अभी, आज ही, एक ऐसी ही घटना घट चुकी है। मार खाती हुई बकरी की मिमियाहट ने पूरी चाल से फरियाद की। बच्चे उस बँगले की फेंसिंग तक पहुँच चुके हैं, पुरुष अपने-अपने फाटकों पर, वृद्धा-प्रौढ़ाएँ बरामदों या दरवाजों की चौखठों पर, गृहिणियाँ और बधुएँ खिड़कियों पर आ गयी हैं।

देखनेवाले सब लोगों की मूक दृष्टियाँ एक दूसरे को प्रश्न चिन्ह समझ रही थीं पर उत्तर तो था वह सामने वाला लाल बँगला जहाँ बकरी मिमियाए जा रही है और वृद्ध सड़ासड़ बेतों से मारे जा रहा है। डरते-डरते उससे पूछा गया—

'भला यह मार क्यों?'

'क्यों क्या? बकरी ने फेंसिंग से सटे गुलाब के फूल जो खा लिये।'

'आखिर जानवर है।'

'जानवर है तो क्या अपना बगीचा जरा दें? वाह भाई!'

'इस मार से भला उसने कुछ सीखा?'

'बकरी क्या सीखेगी? पर ग़लती की सजा तो मिलनी ही चाहिए।'

वह बैसाख की तपती दोपहर और उसपर बूढ़े की खरी मार और खाने-वाली मूक निरीह बकरी। बेहोश बकरी के मुँह से फेन गिर रहा है। कौन बूढ़े की दुश्मनी मोल लेने का साहस करे और बकरी पर पानी छिड़के?

घटना लगभग खत्म हो चुकी थी और लोग भी लगभग जा ही चुके थे।

आज की यह घटना और उस दिन जब हमारा बँगला बच्चों की किलकारियों, फूलों की महक और फलों की गन्ध से सबको अपनी तरफ आकर्षित करता था, तब भी इस बंगले में किरायेदारों की भरमार थी। मकान मालिक ऐसा सरकारी कर्मचारी था जहाँ से उसे बिना कुछ खर्च किये ही मकान बनाने की पूरी सुविधा मिल सके और वह उसका पूरा-पूरा फायदा उठाने में सिद्धहस्त भी था, अतएव बंगले का तीन चौथाई से अधिक सामान सरकारी ही था। एक दिन आया, जब अधिकारियों ने उसे उसी बंगले की जीविका पर निर्भर कर सरकारी माल की और अधिक सुरक्षा के भार से मुक्त कर दिया। हम तो अपने इस चरित नायक पर कोई लांछन नहीं ही लगाना चाहेंगे, पर लोगों का ऐसा कहना है कि इस तरह से सरकार को जब अपने माल की चिन्ता हुई, तब तक बुद्धिमान् गृहस्थ ने अपना घर उस माल से इस सीमा तक भर लिया था कि वृद्धावस्था में उसे रोटियों की चिन्ता न रही। साथ ही आनेवाली पीढ़ी के सिर पर छत्र-छाया भी हो गयी। अपने घर की अपेक्षा वह हमारी घड़ी ही अधिक था। सुबह चार बजे उसकी बैठक की लाइट जल जाती, साढ़े चार बजे चाय, फिर घूमने जाया जाता, लौटकर सात बजे तक खुरपी ले फूलों के पौधे सँवारे जाते, साथ ही हजारे से पानी और आँखों से स्नेह और तब ठीक सात बजे अखबार उसका मित्र होता, आठ से नौ के बीच किसी भी मौसम में कैसा ही अपरिचित व्यक्ति भी चाहता तो आँगन की धूप में सँवलाया दुबला शरीर, आराम-कुर्सी तथा तेल की शीशी—इन तीनों के सहयोग को देख सकता था। फिर हाथ में नौ बजे चाय का कप आता, भले ही उस वक्त हम आप कोई भी पहुँच जायें पर कप की चाय केवल उसके स्वामी की ही होती। उसके पश्चात् भोजन, स्नान-ध्यान और विश्राम। अपरान्ह में क्रम उलट दिया जाता, अन्तर होता, तो यही कि फिर रात में वह अपनी कोने में रखी मेज पर झुका हुआ डायरी लिखता होता और ठीक घड़ी की सुई दस पर पहुँचते न पहुँचते लाइट बुझा कर सोने चल देता। तीनों ऋतुओं पर उसका समान रूप से अधिकार था। बरसात में सुबह का भ्रमण उसी बरामदे में हो जाता। घड़ियों में निश्चित ही व्यतिक्रम देखा जा सकता था, किन्तु उस जीवित पेण्डुलम में नहीं।

पहली से लेकर दस तारीख तक एक बार वह सौभाग्यशाली दिन जरूर ही आता जब गिद्ध और चिड़ियाओं में भी व्यवहारिक बात होती। हिसाबी व्यक्ति था, न कौड़ी कम न कौड़ी ज्यादा। उस जमाने में भी किराया लेने का उसका अपना अलग ढंग था। मकान का किराया था सिर्फ दस रुपया पर तीन रुपया वाटर, दो रुपया पखाना, एक रुपया नाली, पाँच रुपया कारपोरेशन और नजूल टैक्स, इस तरह किरायेदार तेइस रुपया देकर दस रुपयों की रसीद पाता। रसीद में टैक्सों का भला क्या जिक्र ?

यों उसके तीन रुताने थीं। पर समाज में सम्मानित और क़ायदे से उत्तराधिकारिणी केवल एक ही बेटी थी—बाकी दोनों बेटे-बेटी समाज से दूर थे। तीनों को ही वह न जाने कब कहाँ बिदा कर चुका था। वह और उसकी पत्नी को छोड़ तीसरा व्यक्ति कभी उसके घर में दिखाई नहीं दिया।

करीब आठ वर्ष पूर्व की एक सांझ के झुटपुटे में ताँगा आकर रुका और उसमें से दूर की यात्रा से थकी-थकायी युवावस्था वाली एक प्रौढ़ा युवती अपने चार नन्हें मुन्नों के साथ पाँचवें के आगमन की सूचना लिये उतरी। कानों-कानों में फुसफुसाहट हुई...

...बड़े भाग। शादी के बाद पहली बार शैवंती आयी, देखो तो।

बच्चे मां का पल्ला पकड़कर चिल्ला-चिल्लाकर पूछने लगे...आई। आजोबा का घर यही है ?

'हाँ हाँ।'

'सचमुच, कित्ता बड़ा है बंडू!'

'हो-हो'

'बंडू! ये लो बैग—।'

'अरे मधू! पानी का लोटा उठा तो'

'अरे नलू! इश्श, तुम खड़ी-खड़ी क्या देख रही हो ? बसन्त को ले लो न गोद में।'

'माँ कोई हमें लेने नहीं आया ?'

'हो सकता है चिट्ठी न मिली हो।'

'हो हो ?'

'देख बंडू, शैतानी मत करना, नहीं तो आजोबा नाराज़ होंगे। समझा !'

ताँगेवाले ने पूछा—

'आई साहब, सामान कहाँ रखना है ?'

'यहीं नीचे रख दो।'

माँ फाटक खोलकर अन्दर जाने लगी तो बच्चे बोले—

'आई ! हम भी चलें तुम्हारे साथ ?'

'नहीं सामान के पास ठहरो, मैं अभी आती हूँ।'

बरामदे में पहुँच शेवन्ती ने हाथ का सामान रख बूढ़े गृहस्थ को प्रणाम किया।

'बाबा ! नमस्कार !!'

जैसे कान में किसी ने गरम तेल डाल दिया हो। पंचम स्वर में बाबा ने पूछा—

'शेवन्ती ! तू आलीस क ग।'

'हाँ बाबा। अभी इसी गाड़ी से तो चली आ रही हूँ।'

शेवन्ती ने मन्द्र स्वर के 'स' में उत्तर दिया।

'लेकिन तू आ कैसे गयी ? मैंने तो पहिले ही लिख दिया था कि यहाँ इस साल पानी की बहुत कमी है।'

'पर बाबा, मैं क्या करती ? इस बार कमजोरी अधिक होने के कारण डाक्टर ने हवा-पानी बदलने के साथ ही खूब आराम करने के लिए भी कहा है।'

'तो वहीं क्यों न किया ?'

'मैंने तो कहा था, पर वे माने नहीं और मुझे भेज ही दिया।'

'अरे कैसे मूर्ख हो तुम लोग, अगर तबियत ख़राब ही होना है तो जैसा नागपुर वैसा इन्दौर।'

'आप ठीक कह रहे हैं। मैंने भी उनसे यही कहा कि जब मौत आती ही है तो वह न यहाँ रुकेगी न वहाँ। पर किसी ने मेरी बात नहीं सुनी। कहने लगे हम कितना भी आराम दें, पर बेटी को जितना आराम माँ दे सकेगी उतना कोई नहीं। मैं क्या कहती।'

ने कितनी कठिनाई और लाड़ से खरीदी है। वैसे मैंने उन्हें बहुत मना किया पर वे मानी ही नहीं। बोलीं—हम भला तुझे क्या देंगे, बेटी ?

यह शेवंती भी यहाँ की बात वहाँ क्या कहेगी, मगर ये सब बच्चे, पर मैं करूँ भी क्या !

अपने पेट की बेटी के लिए कुछ कहना अपने लिए कहने के ही बराबर है और बच्चे भी तो उसी के हैं यानी मेरे ही।

वृद्धा की आँखों से करुणा विदा हो गयी थी और दर्प अपने गुलाबी वस्त्रों में आ गया था। अण्डे-सी सफेद बड़ी-बड़ी आँखों को लिये वृद्धा स्थिर अचल खड़ी थी, कोटर जितने भीतर धँस रहे थे, आँखें बाहर आ रही थीं और काली पुतलियाँ उस गुलाबी सफेदी में ऐसी स्थिर थीं जैसे सुन्दरता में ढिठौना लगा हो।

बादलों की गर्जना सी बूढ़े की आवाज़ सुनायी दी—

'जल्दी खाना बनाओ। शेवन्ती रात दस बजे की गाड़ी से वापस इन्दौर जायेगी।'

'खड़ी क्या हो ? जाओ न !'

गृहिणी के मुख पर जीवित ललामी की जो हल्की परत थी, वह भी लाश की सफ़ेदी में बदली जा रही थी। न गति, न स्पन्दन। लगता था, पाषाण-प्रतिमा है, जो उच्च कोटि के मूर्तिकार द्वारा निर्मित हुई हो। भ्रम होता 'हाउस आफ वैक्स' के कलाकार ने किसी वैसी ही जीवित प्रतिमा को देखकर ही तो अपनी कला में जान न डाली हो ?

बेटी की करुणा कराहते हुए बोली—

'पर बाबा ! सासू बाई क्या कहेंगी ? घर में वे ही होते तो कोई बात न थी, पर—...? सिर्फ आठ दिन ही रुकने दीजिए' फिर मैं जाकर कोई भी बहाना बता दूँगी। न होगा यही कह दूंगी, बच्चों ने मुझे बहुत तंग किया, इसीलिए चली आयी।'

बाबा ने कहा—

'शक्य नहीं, जाओ जल्दी खाना बनाओ। सुना नहीं तुमने !'

'आई ज़रा सुनो, खाना-वाना कुछ न बनाओ। मुझे भूख नहीं। इन बच्चों के लिए काफी से ज्यादा है साथ में। अगर सम्भव हो तो यहाँ आकर पाँच मिनिट को बैठ जाओ, फिर मैं ताँगेवाले को बुलाती हूँ।

माँ सोच रही थी कि शेवंती के पास जाकर बैठने से तो अच्छा है, लिहाफ़ में मुँह छुपा लूँ।

बाबा आज्ञा देकर जा चुका था। माँ के पैर आगे न बढ़े। जहाँ खड़ी थी, बस वहीं बैठ गयी।

शेवंती के आँसुओं की लड़ियाँ मकाई के दाने सी बिखरने लगीं।

अमीर माँ को मकाई की जरूरत न थी। रक्तमांस के खिंचाव ने बिना जाने ही हाथ आगे बढ़ा दिया और कब शेवंती ने माँ के घुटनों पर सिर टेक दिया। दोनों न जान सकीं।

बचपन में माता-पिता, भाई-बहन, कुटुम्ब-परिवार की ममता से हीन मधुकरी पर पले उस व्यक्ति ने आज जब अपने हाथों इतना वैभव समेट लिया था, तब वह उसे सहेजना ही नहीं, दाँतों से पकड़ रखना चाहता है। वह सोचता—

'भला शेवंती के एक-दो महीने वहाँ रहने से उसकी जचकी में चार पाँच सौ रुपये न खर्च हो जायें?'

शेवंती सिसक रही थी और अब हिचकियाँ बँध गयीं।

'अरे शेवंती! बेटी ये कैसा पागलपन कर रही हो। क्या तुम्हें मालूम नहीं कि इस यमदग्नि की गृहस्थी में मैंने अपने आपको खपा दिया और मैं अपनी··· ···तुम तो मेरी बेटी हो। मेरी ही तरफ़ देखकर अपने को सँभालो।'

'माँ प्रसव-वेदना में कितनी औरतें हर साल जाती हैं। मेरे लिए चारों अच्छी तरह निबट गये।'

'दुत पगली······।'

शब्द गले से फँस रहे थे—

'सुनो बेटा, इस तरह मत घबराओ। भगवान् तुम्हें जल्दी छुटकारा देंगे।'

'हाँ माँ! यही आशीर्वाद दो कि इस बार शेवंती को जीवन से ही छुटकारा मिल जाए।'

'देवा ! देवा !! हे काय ? इतनी निराशा ! सुनो बेटी ! तुम अपने मामा के घर चली जाओ, वो अभी पिछले महीने में ही आये थे और तुम्हें पूछ रहे थे। उन्हें बहुत खुशी होगी तुमको देखकर।'

'खुशी ! और मुझे देखकर ! जिनके हाँड़-माँस का यह शरीर है वे मुँह नहीं देखना चाहते और मामा ? माँ के भाई, कहाँ के कौन ?'

'अरे ! वही तो तुम्हारा मामा है जिस के कंधे पर चढ़-चढ़ कर और जिसे घोड़ा बना-बना कर तुम इतनी बड़ी हुई हो।'

'नहीं माँ ! अब लौटकर इंदौर जाकर भी किसी को मुँह दिखाने की इच्छा नहीं और यहाँ की तो कोई बात ही नहीं उठती। मन करता है, बच्चों को अनाथालय में भरती करा के आराम से रेलगाड़ी की पटरी पर सो जाऊँ।'

'शेवंती ऽऽ छि: छि:'

'हाँऽ माँ ! अब बहुत हो गया इस से ज्यादा नहीं।'

अब माँ कि स्थिरता की नींव का पत्थर खिसक गया और उसका सिर टिक गया बेटी की पीठ पर।

गंगा यमुना का संगम रो रहा था।

साधन हीना माँ कौन-सा मुँह लेकर समझाती। उसकी जीवन-ज्योती अपने हाथों अपने को फूँक-फूँक कर बुझा देना चाहती है। वह स्वयं भी तो गीली लकड़ी की तरह फूँक फूँक कर जलायी जा रही है; पर खतम नहीं होती, और बूढ़ा है कि उसे ठोक-ठोक कर, पटक-पटक कर सिलगा रहा है, ज्यों-ज्यों वह फुँक रही है, उसका सोने सा रंग और दमकता जाता है।

माँ कि इस उलझन ने नन्हू ही छोटे भाई को सुलाने में व्यस्त थी, उम्र में बड़ी होने के नाते समझ भी कुछ अधिक थी ही। उसने देखा-नानी और माँ के इस अपूर्व मिलन को। क्या बड़े होने पर मुझे भी बाबा ऐसे ही भगा देंगे और माँ मुझे भी इसी तरह लिपटाकर रोयेगी ! पर अभी तो बाबा मुझे ही सबसे ज्यादा प्यार करते हैं। 'न बाबा ! मैं लगन नहीं करूँगी।'

अभी माँ-बेटी का जी हल्का भी न हो पाया था कि वृद्ध आया और देखा, चूल्हा ठंडा है और बरामदे में यह नाटक हो रहा है।

माँ बेटियों का ध्यान बच्चों पर से हटते ही बंडू जो बहुत ही चञ्चल था, बगीचे के सुन्दर-सुन्दर फूल और कोटन की पत्तियां कमीज में भर लाया। बड़े ने आलमारी में किताबों का अम्बार लगा देखा तो नाना-नानी को अपना पुस्तकीय ज्ञान दिखाने के लिये उत्सुक हो उठा। अपने लायक किताब खखूरने लगा, छोटा बच्चा गोद में झपक गया था और नलू निर्वाक्, अवाक्, माँ-नानी के मिलन को देख रही थी।

व्यवस्थित जीवन में यह अव्यवस्था देख वृद्ध का खून खौल उठा। शेवंती के फूलों से बगीचा भरा-भरा लहलहा रहा था। वह एक-एक फूल और कली को रोज बड़े प्रेम से निहारता था। ये फूल उसकी दूसरी पत्नी के निशानी थे। पर जिस मानवीय शेवंती को स्वयं उसने अपने हाथों रोपा था, वह आज फूलवती थी और इन्हीं इने-गिने दिनों में कली खिलेगी, एक नया फूल आयेगा शेवंती के गाछ पर। लेकिन वृद्ध ने अपने रोपे पौधे की ओर न निहारा, न उसके फूले हुए फूलों की ओर ही। वह आँखें बचा रहा था, कहीं कुछ लपट न जाय। शेवंती बिचारी यम के फंदे से छूट गिद्ध की गिरफ्त में आ गयी थी जो उसके अन्तर तक को नोचे डाल रहा था और उस घाव का निशान शेवन्ती का भी निशान मिटा देने को काफी था।

वृद्ध ने झपट कर बंडू की झोली के फूल छितरा दिये और अब तक के प्यार से सहलाये हुए गाल पर जोर का एक थप्पड़ जड़ दिया। बंडू ने आग्नेय नेत्रों से वृद्ध को देखा। इतनी उमंगों से तोड़े फूल? जिन्हें वह अभी माँ और भाई-बहिनों को दिखा भी न पाया था। फूल कितने सुन्दर थे। स्कूल के वार्षिकोत्सव में ही यों इतने फूल उसने देखे थे। इन्दौर में तिमंज़िले पर किराये के दो कमरे। वहाँ कहाँ फूल और पत्तियाँ!

गर्जना आई—

'यह कौन सा नाटक है? तुम दोनों रो क्यों रही हो? क्या मैं मर गया हूँ। बच्चे क्या कर रहे हैं? उधर भी तुम्हारा ध्यान नहीं जाता। दुष्ट बन्दरों ने बगीचे अशोकवन बना दिया है।'

बंडू ने मा से कहा—

'आई ! उठ, आपले घरी चल ।'

अब तक शेवंती व्यवस्थित हो गयी थी। बिना कुछ बोले बाहर आँगन में आयी तो देखा तेरस का चाँद ठुठरा-ठुठरा-सा सामने आ गया था। बिना चप्पल के ही बाहर चली गयी। बंडू ने दौड़ कर उसकी साड़ी का पल्ला पकड़ लिया।

'माँ माँ, मैं भी चल रहा हूँ। अपन अपने नानाजी के यहाँ जाएँगे। तुम कहाँ आ गयी थीं ? बूढ़ा बड़ा खराब है।"

शेवंती चुपचाप गयी और ताँगा ले आई और दोनों साथ ही बरामदे में आये। वृद्ध पूछ ही बैठा—

'अरे ताँगा ले आई ? अभी से—'

'हाँ रात का वक्त है। बच्चे एक बार सोये कि फिर जल्दी उठते नहीं और आज तो दो दिन के थके-थकाये हैं।,

न जाने कौन वृद्ध की जिह्वा से बोल उठा—

'उपासी ही जायगी ?'

'उपास, भूख ? अब कुछ भी तो शेष नहीं है बाबा।'

ताँगे वाला सामान रख रहा था, बच्चे उछल-कूदकर ताँगे पर जा बैठे, शेवंती के कहने पर केवल नलू ने आजोबा को प्रणाम किया और फिर शेवंती ने बाबा के पैर छुये। अनजाने एक हाथ शेवंती को आशीर्वाद दे रहा था और दूसरा आंखें मल रहा था। वृद्ध देहलीज के बाहर न आया। गृहिणी फाटक तक आयी। एक सिकुड़ा मुड़ा-मुड़ाया कागज़ शेवंती को पकड़ाने लगी और एक घिसी-घिसायी अँगूठी उँगली में डालने लगी शेवंती ने उँगली झटक दी और कागज का टुकड़ा पकड़ा ही नहीं। माँ ने अटकते-अटकते बड़ी मुश्किल से कहा—

'लै लो बेटी ! यह मेरी माँ की अंतिम भेट है और मेरी भी...'

'रहने दो मां नाना जी की निशानी।'

'लै लो बेटी ! क्या माँ की आखिरी निशानी भी ठुकरा दोगी, बाप पर मान करके।'

शेवंती ने हाथ बढ़ा दिया। मन कह रहा था, फेंक के मार दें। ममता कुछ और ही कह रही थी।

बच्चे ताँगे में खुश बैठे थे। शेवंती भी आकर बैठ गयी। नानी ने एक-एक के सिर पर सूखा हाथ फेरा और फिर शेवंती के घुटनों पर क्षण भर को सिर टिका दिया। किन्तु शेवंती का ताँगा चल दिया। लौटकर जाती हुई शेवंती ने देखा बँगले की बड़ी सी खिड़की को, जिसमें से दिख रही थी प्रतिमा सी निर्वाक् माँ और घड़ी सा यंत्रचालित पिता, जिसने इतने में ही व्यवस्थित हो फूलों को समेटा और फिर नियमित हो जो डायरी लिखने बैठ गया था।

मन की उथल-पुथल पर तर्क का पत्थर रखते हुए वृद्ध डायरी के पन्नों पर लिखे जा रहा था तेजी से—

शेवंती गयी, चली गयी, जाने दो, लोग क्या कहेंगे? कहने दो, अगर रुकती तो क्या कुछ—ओह...और फिर वे सब बन्दरों से बच्चे, बगीचा ही उजाड़ देते, फिर हल्ला-गुल्ला, कितनी परेशानी होती, उसे बुरा लगा होगा तभी उपासी ही चली गयी। मत खाने दो। पूछने का धरम था, पूछ लिया। मुझे किस-किस ने मदद की थी बढ़ने में। दिन बँधे थे लोगों के घर खाने के। कुत्ते जैसे टुकड़े डाल देते थे लोग। मैं कहाँ मरा? शेवंती भी नहीं मरेगी। मरनेवाले को कोई नहीं बचा सकता। और उधर—कितना हुंडा (दहेज) दिया शेवंती के लिए 'क्लर्क' लड़का ढूँढ़ने में। बड़े चरित्रवाले बनते हैं—फिर भी शेवंती को चैन नहीं—मर जाये तो ठीक है।

बच्चों ने मा को व्यवस्थित बैठे देखा तो प्रश्नों की बौछार लगा दी।

'माँ बूढ़ा कौन था?'

'माँ तुम, कहाँ आ गयी थी?'

बंडू बोला—

'आई! तू आजेबा चा घर विसर ली काग?'

'मी आजोबा चा घर विसरली नाँहीं रे! पण दैवच माझा घर विसरला आहे रे बंड्या!'

पं० गंगाप्रसाद मिश्र

जन्मकाल	रचनाकाल
१६१७ वि०	१६३४ ई०

खानदानी फिल्लू

उस्ताद खुरशेद अली खां हिन्दुस्तान के उन गवैयों में से थे जिनका लोहा बड़े-बड़े कलाकार मानते थे। निष्ठावान लोगों का कहना था, उन्हें, निश्चय ही सरस्वती का इष्ट है अन्यथा गाना तो न जाने कितने लोगों का सुना, पर जो तबियतदारी, रंगत और अदाकारी खां साहब में देखी वह बड़े-बड़े उस्तादों में नहीं पायी। खां साहब जब बैठकर आलाप शुरू करते थे तो सुनने वालों को जैसे इस झगड़ों झंझटों की दुनिया के ऊपर किसी ऐसी दुनिया में ले जाते जहां राग रागनियों के स्वर हवा में गूंजते होते और फूलों में फैलती कला की सुगन्ध सबको बेसुध करती होती। उस्ताद का आलाप ही ऐसा मोहक होता कि मालूम होता राग स्वयं हाथ बांधकर आकर खड़ा हो गया है और जब वह बन्दिश शुरू करते तो ताल और स्वर का एक ऐसा अद्भुत मिश्रण उपस्थित होता कि श्रोता सिर धुनने लगते। उनका तानपूरा छेड़ने का ही एक ऐसा अनोखा ढंग था कि वह निर्जीव तानपूरा उनके हाथ में सजीव सा बनकर कुछ अलौकिक स्वर ही निकालने लगता। मालूम होता जैसे उस्ताद तानपूरा के हृदय को भी उतना ही पहचानते हैं जितना अपने हृदय को।

सच बात यह थी कि कला अपने आप आकर खुरशेद अली खां के आंगन में बरस नहीं गयी थी। लड़कपन से ही उनके मन में गवैया बनने की लगन थी और इसके लिये उन्होंने अपनी जिन्दगी होम कर दी थी। उन्होंने जिन्दगी का कोई सुख नहीं जाना था। सैर तमाशा की तरफ कभी निगाह नहीं की थी, कला की साधना ही में अपना सारा समय व्यतीत किया था। यों, मां के कहने से

उन्होंने विवाह कर लिया था, पर वह बहुत कुछ कर्तव्य पालन ही था। असली-विवाह उनका कला से ही हुआ था, जिसका मुंह ताकते ही उनकी जिन्दगी के दिन गुजर रहे थे। सुबह तीन चार बजे से उठकर वह षड्ज साधना शुरू करते और बारह बजे तक रियाज चलता। गरीबी के साये में पलती हुई गृहस्थी थी, खाने को सूखे चने या बाजरे की रोटियां जुड़ती, न घी न दूध। दिन में कुछ आराम करने के बाद फिर रियाज शुरू होता और वह आधी रात तक चलता रहता। मतलब यह कि संगीत के जल से ही मुंह धोकर वह उठते और संगीत का ही अञ्जन आंखों में डालकर वह सोते। उनकी दुनिया संगीत की दुनिया थी। उनकी हर सांस संगीत की साधना के लिये होती, इसी के लिये उनका जीवन था। इतने जबरदस्त रियाज के साथ सूखी रोटियां मिलने का प्रभाव यह था कि रियाज करते करते खुरशेद अली खां खून थूकने लगते।

जिस खां साहब, जिस कत्थक और जिस ध्रुपदिये के विषय में खुरशेद अली को यह मालूम हो जाता कि उसके पास कुछ गुण हैं, उसके चरणों में अपने प्राण न्योछावर कर देते। उसके पैर दाबते, चिलम भरते, उगालदान साफ करते और पेट में घुसकर उन बन्दिशों को जानने की चेष्टा करते जिन्हें ये गवैये किसी को सिखाना न चाहते थे, जिसका प्रयोग किसी उस्ताद से झपट हो जाने के वक्त किया करते थे, और जिन्हें अपने पेट में रक्खे अक्सर दुनिया से उठ भी जाते थे। न जाने कितनी बार इन उस्तादों के दरवाजे से वह दुतकारे गये थे, पर इसका उन्होंने कभी बुरा न माना था। इसे वह उस व्यक्ति की दुतकार न समझते थे। वह कहते थे, कला मुझे स्वीकार नहीं कर रही है और जब मैं साबित कर दूँगा कि मैं उसका सच्चा सेवक हूँ, तो वह निश्चय ही मुझे अपनी गोद में लेगी। अपनी सच्ची सेवा और खुशामद से वह उस नकचढ़े उस्ताद को पानी कर देते और कुछ न कुछ उससे ले ही मरते। कला की खोज में वह मारे मारे फिरे थे, गलियों और कूचों की खाक छानी थी और संगीत का हीरा जिस कीचड़ में भी पड़ा उन्होंने देखा था, वहीं से सिजदा करके उन्होंने उसे दांतों से उठाया था। उनके जीवन का उद्देश्य केवल संगीत था, उसी मार्ग पर वह बेसुध चले जा रहे थे, दुनिया में दायें बायें क्या है इसकी ओर कभी उन्होंने आंख

उठाकर भी न देखा था। उनकी इस कठोर तपस्या का फल यह था कि चालीस वर्ष के अनवरत परिश्रम के पश्चात अब कला उनकी अनुगामिनी हुई थी। जहां वे उसका आवाहन करते वहां कला साकार आकर उपस्थित हो जाती। यही कारण था कि बड़े बड़ों को यह मानना पड़ता था कि खुरशेद अली में कुछ अलौकिक प्रतिभा है। वह मां शारदा का लाड़ला बेटा है।

अक्सर लक्ष्मी उस पर कृपा नहीं करती, जिस पर सरस्वती का वरदहस्त होता है। परन्तु जब से चांदपुर के दरबार में विजय दशमी के उत्सव में खुरशेद अली खां की स्वर लहरी सारे एकत्रित गवैयों और श्रोताओं के मन पर छा गई तो सम्पत्ति भी उन पर बरसने लगी। अब कला के पारखी राज-दरबारों का कोई भी महत्वपूर्ण उत्सव ऐसा नहीं होता जिसमें खुरशेद अली खां न बुलाये जाते हों। जहां वह न पहुँच पाते वहां समारोह फीका-फीका लगता। अब उस्ताद को पैसे की कमी न रहती। जहां वह जाते सैकड़ों रुपये कला के गुण ग्राहक उन पर न्योछावर कर देते। उस्ताद और उनके परिवार की जिन्दगी सुख से कटने लगी थी, पर खां साहब तबियत के पूरे कलाकार थे। पैसे का मोह उन्हें छू न गया था, उसे वह हाथ का मैल ही समझते थे और उसे दोनों हाथ उलीचते रहते थे। उन्होंने गरीबी के दिन देखे थे। किसी को दीन दशा में देखते तो उनका मन भर आता। वे पूरा प्रयत्न करते कि उसे गरीबी के पंजे से छुड़ा लें। जब तक वह यह न कर लेते उन्हें चैन न आता। यह करते समय उन्हें इस बात की बिल्कुल फिक्र न रहती कि वह दूसरे की निर्धनता को अपनी सम्पन्नता से बदल रहे हैं।

कला के प्रति खां साहब का मोह अटूट था ही फैयाजी और दरियादिली उनसे गिरी थी तो किसी को मिली थी। मामूली से मामूली कलाकार के गले की एक मुरकी यार तान पर, एक बन्दिश पर वह रीझ जाते तो उसे रुपयों से तौल देते। संगीत और कला के उन सब रूपों पर जो उनके मन को छूते थे वह अधिक से अधिक धन न्योछावर कर देते थे। कला को वे अमूल्य समझते थे और कलाकार को जो कुछ भी दे दिया जाय उसे वह थोड़ा ही मानते थे। फलस्वरुप खां साहब के यहां पैसा आने का यदि एक रास्ता था तो जाने के अनेक। भविष्य के

विषय में उन्होंने कभी चिन्ता न की थी। जो कमाते थे वह खर्च करते जाते थे। अपने बेटे महमूद अली को भी उन्होंने कला की सेवा में ही लगाया था और यह प्रयत्न कर रहे थे कि यह खूब परिश्रम और तपस्या करके उनसे भी बड़ा कलाकार बने। इतनी अवस्था हो जाने पर और इतनी कीर्ति प्राप्त कर लेने पर भी उस्ताद ने रियाज न छोड़ा था। अब भी अपने समय का बड़ा भाग वह स्वर साधन में ही व्यतीत करते थे। नतीजा यह था कि जैसे जैसे उस्ताद की अवस्था बढ़ती जाती थी, वैसे ही वैसे उनकी कला का विकास होता जाता था, उनके गले का माधुर्य बढ़ता जाता था और उनकी गमक बलवती होती जाती थी।

× × × ×

धीरे-धीरे समय ने करवट बदली। कला के ये संरक्षक राजा महाराजा विलीन हो गये। कला का संरक्षण सम्पन्नता का अनिवार्य गुण न रह गया। जीवन व्यस्त हो गया था। किसे फुर्सत थी कि दो तीन घण्टे बैठ कर राग का अलाप सुने, बड़ा ख्याल, छोटा ख्याल, और तराना सुने। अमुक राग में निषाद कोमल लगती हो या तीव्र धनोपार्जन पर इसका असर नहीं पड़ता। तब जीवन में इसका महत्व क्या? मन बहलाना ही है तो हल्के फुल्के दो चार मिनट में समाप्त हो जाने वाले गाने सुने और ताजे हो गये। अपने सारे आकर्षण लिये हुए फिल्म की रुपहली सपनों की दुनियां लोगों के नेत्रों ही नहीं हृदय में बस गयी। फिल्मी संगीत जादू की तरह जनता के सिर पर सवार हो गया। पांच दस आने पैसे में किसी कोकिल बयनी के कंठ स्वर का अमृत कानों में पड़ा और किसी अनिन्द्य सुन्दरी से नयन मिले। अभावों से भरी पूरी जनता को चाहिये क्या था। फिल्मी संगीत सब जगह सुनाई दे रहा था। शास्त्रीय संगीत दुर्लभ और दुःसाध्य दिखलाई देने लगा। स्थान-स्थान पर संगीत विद्यालयों के खुल जाने से कम धन व्यय करने पर भी अधिक वैज्ञानिक ढंग से संगीत की शिक्षा प्राप्त हो सकती थी, तब कौन उस्तादों की चिलम भरे, उनकी जूतियां सीधी करे, उनका शागिर्द बनकर उनकी नाज बरदारी करे और सैकड़ों रुपये उनकी नजर करे। जीविकोपार्जन का यह साधन ही टूट गया।

अब उस्ताद खुरशेद अली खां को अपने पैर तले की जमीन खिसकती हुई

मालूम होने लगी । बाहुल्य और ऐशो इशरत के वह दिन चले जाते और रोटी कपड़े का कष्ट न होता तो उस्ताद विचलित होने वाले न थे, पर जब बात यहां तक पहुँची तो वह घबड़ाये । रिकार्डिंग कम्पनी गये जहां से उनके बहुत से रिकार्ड निकले थे और मैनेजर साहब से प्रार्थना की कि कुछ नये राग तैयार किये हैं अगर वह रिकार्ड करना चाहें तो अच्छा रहे, उस्ताद को भी कुछ मिल जाये । मैनेजर साहब ने बहुत नम्रता पूर्वक कहा—'वह दिन हवा हुए उस्ताद जब कलासिकल म्यूज़िक के रिकार्ड बिका करते थे, अब तो लोगों को फिल्मी गाने चाहिये । आप लोगों के नाम तो लोग भूल गये । जो आता है, फिल्मी गाने मांगता है । पिछले साल जो हमने आप के ललित पन्चम अहिर भैरव, नायकी कान्हड़ा, और मारु बिहाग के रिकार्ड बनाये थे वह जैसे के तैसे रक्खे हैं । हमें उस सौदे में घाटा हुआ उस्ताद । इस वक्त तो हम आप की कोई खिदमत न कर सकेंगे ।"

उस्ताद घर लौट आये । वक्त वह आ गया कि रोटियों के लाले पड़ने लगी । महमूद, जो चांदपुर का दरबारी गवैया हो गया था पैसों की कमी की वजह से हटा दिया गया था । वह भी घर पर खाली बैठा हुआ था । रेडियो वाले बाप बेटे को कभी-कभी बुला लिया करते थे, पर इससे पेट तो न भरता था । यह नहीं कि क्लासिकल म्यूज़िक कार्य-क्रम होते ही न थे । कुछ लोग शौकिया इसे बढ़ावा देना चाहते थे । वे लोग कोइ आयोजन करते तो जाते वक्त तांगे का किराया देते, चाय पिला देते, बिस्कुट या दालमोट खिला देते । और क्या वह उस्ताद को मोहरों से तौल देते । वह तो संगीत की सेवा के लिये इतना कष्ट उठा रहे थे । आखिर उस्ताद का भी कुछ फर्ज था कि नहीं । अक्सर लौटते समय रात ज्यादा हो जाती उस्ताद को तानपूरा लादे हुए घर तक लेफ्ट राइट करना पड़ता था । इतनी रात को तांगा नहीं मिलता था तो संयोजक का क्या दोष था । साल दो साल में किसी म्यूज़िक कान्फ्रेंस से बुलावा आता और वहां से दो चार सौ रुपये मिल जाते तो उनसे कितने दिन गुजर हो सकता था । कौन ऐसे आयोजन रोज होते रहते हैं !

उस दिन उस्ताद ने किसी से सुना कि उनके शागिर्द भगवानदास के शागिर्द बन्ने खां, एक फिल्म कम्पनी के म्यूज़िक डायरेक्टर हो गये हैं, तो उन्हें

बड़ी प्रसन्नता हुई। आशा की एक किरण उन्हें दीखलाई दी। सम्भव है बन्ने-खां कुछ काम दीलवा सके तो कम से कम रोटियों की फिक्र से तो छुट्टी मिले। उस्ताद ने अपनी एकलौती अचकन को झाड़ा पोछा, पैजामे को भी साबुन लगा-कर शरीफों में जाने लायक किया और बन्ने खां से मिलने पहुँचे। डायरेक्टर बन्ने-खां बड़े तपाक से मिले, पर जब उस्ताद ने अपने आने का मकसद बतलाया तो उनका मुँह उतर गया। मैं आपको क्या काम दे सकता हूँ उस्ताद?—उन्होंने आजिजी से कहा। कम्पनी में तो ऐसे लोगों की जरूरत रहती है जो कुछ हिन्दु-स्तानी, कुछ बंगाली, कुछ अंग्रेजी संगीत मिला के ऐसी चलती हुई धुनें बना सकें जो लोगों के दिलों पर सीधा असर डाल सके। प्ले बैक के लिये हमें दर्दीले गले वालों की जरूरत पड़ती है। पब्लिक तो ऐसे ही कलाकारों पर जान देती है। तब आपकी कला का कायल होते हुए भी मैं आपकी क्या खिदमत कर सकता हूँ उस्ताद!

उस्ताद जैसे आसमान के नीचे गिरे। आज उन्हें अपनी कला का मूल्य मालुम हो गया। अपनी अनवरत साधना के बदले में उन्होंने बंगले और मोटर की तो कभी ख्वाहिश न की थी पर जीवित रहने का अधिकार तो सभी चाहते हैं। उन्हे मालूम हुआ अपनी जीवन योजना बनाने में उन्होंने कहीं बहुत बड़ी भूल की। घर आकर अभी वह कपड़े उतार रहे थे कि छः वर्ष का अमजद अली आकर बोले अब्बा सुनिये मैंने खानदानी पीलू की बन्दिश कैसी तैयार की है। वह शुरू होने ही वाला था कि उस्ताद ने उसके मुँह पर हाथ रख कर कहा—नहीं बेटा तुझे गवैया नहीं बनाऊँगा! तुझे स्कूल में पढ़ाकर दफ्तर में कलर्क बनाऊँगा, जिससे दोनों वक्त चैन से रोटी तो खा सको। यह कहते हुए उन्होंने अपनी आंखों में आते हुए आंसुओं को बच्चे की नजर बचा कर पोंछ डाला।

श्री भैरवप्रसाद गुप्त

जन्मकाल	रचनाकाल
१९१८ ई०	१९३४ ई०

डाकुओं का सरदार

किरन बराबर बैलगाड़ी बेलथरा टीसन पर पहुँच गयी। कवलापति गाड़ीवान के पीछे बैठा मुरली तुरन्त झपट कर कूदा और सामने टीसन की चढ़ायी पर जाते एक आदमी के पास लपक कर उसने पूछा—क्यों भाई, पूरब की गाड़ी अभी नहीं आयी न?

उस आदमी ने मुरली की ओर एक नज़र ऐसे देखा, जैसे वह कोई बांगड़ू हो। मुरली की पलकें एक निरीहता से उसकी नजर की चोट खाकर झपक गयीं। वह फिर अपना सवाल दुहराना ही चाहता था कि वह आदमी एक सर्वज्ञ की लापरवाही से आगे बढ़ता बोल पड़ा—अभी दो घंटे की देर है।

'दो घन्टे की?' मुरली के मुँह से यह अनावश्यक प्रश्न निकला, तो उस सफ़ेद पोश आदमी ने मुड़कर उसकी ओर ऐसे घूरकर देखा कि मुरली झट पलट पड़ा।

मुरली का ख्याल था कि गाड़ी जरूर छूट गयी होगी। इसी ख्याल के कारण वह रास्ते भर कवलापति को बार-बार खोदता आया था कि बैलों को वह तेज हाँके। कवलापति के बार-बार यह कहने पर भी कि वह बीस साल से गाड़ी हाँक रहा है और कभी भी उससे कोई गाड़ी नहीं छूटी, मुरली न माना था और अपने उतावलेपन में बैलों की पीठ फोड़वाकर ही दम लिया था। कवलापति किस पानी का आदमी है, यह मुरली ही क्या सारा गाँव जानता था। कितनी मिन्नत करने पर उसने गाड़ी जोती थी। नहीं तो आजकल अशर्फी मिलने पर भी वह गाड़ी नहीं जोतता। वह तो पड़ोस के लेहाज की बात थी कि मान

गया। फिर भी मुरली ने रास्ते भर उसे इतना तंग किया। अब कवलापति जब सुनेगा कि गाड़ी में अभी दो घंटे की देर है, तो? मुरली सहम गया। सिर झुकाये ही वह गाड़ी के पास खड़ा होकर धोती की गाँठ से पैसे खोलने लगा।

एक-एक मुट्ठा पुआल बैलों के सामने फेंककर कवलापति ने मुरली की ओर मुँह किया, तो मुरली ने उसके हाथ में एक-एक के तेरह नोट पकड़ा दिये। कवलापति ने उन्हें गिनकर, एक नोट मुरली की ओर बढ़ाते हुये कहा—एक ज्यादा दे दिया है।

मुरली आँखें झपका कर मुस्कराया और लटपटाती आवाज में सहमा-सहमा बोला—'एक मैंने इनाम दिया है। बैलों ने बहुत मेहनत की है। उन्हें इसकी खली-भूसी खिला देना।' मुरली क्या, सारा गाँव जानता था कि कवलपति की सबसे बड़ी कमजोरी ये बैल हैं। कवलापति को खुश करने के लिए मुरली का यह ख्याल था कि यह लुकमा जरूर कारगर होगा।

लेकिन कवलापति ने अपने अन्दर उमड़ते गुस्से और नफरत से ऐंठकर वह नोट मुरली के मुँह पर दे मारा। और मुँह की बिगड़ी रेखाओं को और भी बिगाड़ कर कहा—'कुछ मेरी कमाई से बैलों का पेट भरा, तो अब कुछ तेरे इनाम से भरेगा! चले जा, बच्चा, बहू को लेकर जा रहा है, नहीं तो आज तेरा गला टीपे बिना न छोड़ता। तुझे क्या मालूम कि जितने बैलों की पीठ पर पड़े हैं, उससे सौगुने मेरी पीठ पर पड़े हैं!' और लगा कि बूढ़ा कवलापति अब रो देगा। गुस्से को उसने दबाया, तो उसकी आँखें भर आयीं। सिर झुकाये ही वह बैलों की पीठ पर एक-एक हाथ रख कर कुछ बुदबुदा ने लगा।

बैल चारे पर मुँह न मार रहे थे। उन्होंने कवलापति के हाथ के पास अपने रोओं को फड़काया और अपना मुँह कवलापति की गोद की ओर बढ़ा दिया। कवलापति के हाथ उनके माथे पर सहलाने लगे और उसकी भरी आँखें झपकीं, तो टप-टप बूँदे चू पड़ीं।

सहमा-सहमा मुरली पीछे-पीछे अपनी बहू को लिये टीसन की ओर जाने लगा, तो सहसा कवलापति का गुस्सा उतर गया। उस वक्त उसे ऐसा ही लगा, जैसे अपने बच्चे पर गुस्सा उतर जाने के बाद माँ-बाप को लगता है और

उसके मुँह से एक ठंडी साँस के साथ निकल गया—दो आदमी और गाँव छोड़ गये !

कितनी तेजी से लोग गाँव छोड़कर भागे जा रहे हैं ! जहाँ जिसका सींग समाता है, भागा जा रहा है। मालूम होता है कि पूरा गाँव ही खाली हो जायगा। क्या करे आदमी ? जब खाने को दो मुट्ठी अन्न भी न मिले, तो कैसे रहे ? लेकिन वे क्या करें, जिनका कुल सहारा गाँव ही है ?...सब मर जायेंगे ! सब मर जायेंगे ! और कवलापति के मुँह से एक आह निकल गयी। उसने झुक कर दोनों हाथों से मुट्ठी-मुट्ठी भर पुआल उठा बैलों के मुँह के पास किया। बैलों ने जोर-जोर से सूंघा और मुँह हटा लिया। तब कवलापति ने खुद दोनों मुट्ठियाँ नाक के पास लाकर सूँघा। महक से उसकी नाक ही फट गयी। उसके जी में आया कि वह पुआल कहीं दूर फेंक दे, लेकिन तभी उसे खयाल आया कि इसके सिवा है भी क्या ? उसकी मुट्ठियाँ बेजान हाथों की तरह खुल गयीं। पुआल जमीन पर बिखर गया।

बैल उसकी ओर रोती आँखों से देख रहे थे। शाम के धुँधलके में भी उनके सफेद चेहरों पर काली-काली आँखों के कोनों से नथिये की बगल-बगल दो काली मोटी लकीरें नथुनों तक साफ दिखायी दे रही थीं। कवलापति ने उन लकीरों पर हाथ रखे, तो वे तर हो गये। कितना खून जलकर एक बूँद आँसू बनता है, कवलापति जानता था। अँगौछे के कोने से उन लकीरों को साफ करते स्वयं उसकी आँखों में भी आँसू भर आये। आदमी के आँसू सह लेना उतना मुश्किल नहीं, जितना बेजबान जानवर के। और वह भी कवलापति के लिये अपने बैलों के आँसू !

कवलापति एक जोड़े बढ़िया बैलों का अरमान लेकर ही जवान हुआ था। उसका बाप गाड़ी से कमाना जानता था। उसे अच्छे बैल रखने का कभी शौक न हुआ था। वह चाहता था कि कवलापति भी इस गुर को समझ ले कि अच्छी कमाई मामूली बैलों से ही होती है। बढ़िया बैलों के तो सिंगार में ही सब कुछ स्वाहा हो जाता है। लेकिन जवान कवलापति ने बाप की इस बात पर कभी कान न दिये थे। उसे जिद हो गयी थी कि गाड़ी वह तभी हाँकेगा, जब मन माफिक

जवार (गांव के आसपास) के सभी गाड़ीवानों के बैलों से निकल कर उसके पास बैल होंगे। टिक-टिक टुटही गाड़ी हाँकना उसे पसन्द नहीं। और वह गाड़ी से मुँह मोड़ कर खेती की ओर झुक गया था।

लेकिन वहाँ भी उसे उन्हीं बैलों से हल जोतना पड़ता। उसके जवान हाथों का पैना उन बैलों को देख कर शरमा जाता। दिल में एक हूक उठती। वह अपनी जवानी के सारे अरमान मुंह में लाकर कहता—काका, इन मरियल बैलों को तो हाथ लगाने का जी नहीं चाहता। तुम्हारी कसम काका, ला दो एक बढ़िया जोड़ी। फिर तुम से दुगुनी कमाई करके न दिखा दूँ, तो बात क्या?

लेकिन काका मुँह फेर कर कहता—अबे तू क्या जाने? कमाने वाले बैल तो यही हैं। द्वार की शोभा मुझे नहीं बनानी। मुझे तो काम चाहिये, काम!

क्या करता बेचारा कवलापति! मन मार कर निरुत्साहित-सा ऐंड़ियाँ रगड़ने लगा। मन के अरमान मौके के इन्तजार में बैठे रहे।

काफी उम्र पाकर जब काका मरा, तो कवलापति को जवानी उखड़ गयी थी। लेकिन जवानी का वह अरमान जैसे अब भी जवान ही था। अपनी मलिकाई में उसने पहला काम यही किया। पुरानी गाड़ी-बैल औने-पौने पर बेंच दिये। काका अच्छी रकम जोड़ भी गया था सो पूरी कमर मजबूत कर वह ददरी के मेले में गया और चार दिन तक सारा मेला हीड़कर इस जोड़ी को चुना।

उसके दरवाजे पर उस दिन मेला लगा रहा। बैल क्या थे, पूरे शेर थे। और जोड़ी क्या थी, जैसे एक ही सांचे में ढली दो मूरतें। लोग देखते और निहाल हो-होकर तारीफ करते। कवलापति की घनी मूंछों में उस दिन एक नया बांकपन आ गया था। जवानी जैसे फिर लौट आयी थी। उस दिन रात भर वह जागता रहा। और क्या-कुछ न उन बैलों को खिला-पिला दे, ऐसा उसे हुआ रहा। और वह उन्हें सहलाता रहा, अंगौछे से झाड़ता-पोंछता रहा। और उनकी गरम-गरम, स्वस्थ, गेहुँअन की तरह फुँफकारती साँसों से अपने फेफड़ों को भरता रहा। उस दिन उसकी छाती कितनी फूल उठी थी।

लोगों ने देखा कि कवलापति खिलाना-पिलाना ही नहीं, काम लेना भी जानता है। खेत हो या सड़क, लोग कवलापति को अपने बैलों को हिरनों की

तरह उड़ाये चले जाते देखते और देखते ही रह जाते। घंटों का काम वह मिनटों में पूरा करता। कौड़ियों की जगह वह रुपये पैदा कर लेता। छाती फाड़कर वह काम लेता और हाथ खोल कर वह खिलाता। कमाने वाले की खुराक में कटौती करना उसने न जाना था। कमाने वाले खायेंगे नहीं, तो कमायेंगे क्या? और यही कारण था कि कभी किसी ने उन बैलों का एक रोआँ गिरा न देखा। मजाल है कि कोई मक्खी उन पर बैठ जाय। आइने की तरह चमचम शरीर उनका ऐसा कि नजर छलक जाय।

और कवलापति और उसके बैल दूर-दूर तक मशहूर हो गये। जैसे पानीदार वे बैल वैसा ही पानीदार कवलापति। बैलों ने कभी न जाना कि छिकुन (छड़ी) क्या होती है और कवलापति ने न जाना कि एक बात क्या होती है। किसी महाजन को कभी कहने का मौका न मिला कि कवलापति वक्त पर नहीं पहुँचा या उसकी गाड़ी से एक दाना उठ गया। राह-घाट पर लोग मिलते, तो जुहार करते कहते—राम-राम चौधरी, जरा रुक कर पानी-वानी तो पी-पिला लो। और कवलापति कहता—राम-राम भाई, क्या बताऊँ, घर के खाये-पीये ये टीसन पर ही मुँह खोलते हैं। बीच का दाना-पानी इन्हें भाता नहीं। रोकने की कोशिश भी करूँ तो क्या ये रुकेंगे? और लोग पूछते—समझ में नहीं आता चौधरी, कि कौन-सा दाना तुम खिलाते हो इन शेरों को? मालूम होता है, जैसे रोज रोआँ झाड़ते हों। कवलापति मुस्कराता और बैलों के पुट्ठों को सहलाता कहता—हलाल का यह दाना है, भाई। इससे बढ़कर भी कोई दाना होता है, मैं क्या जानूँ।

वक्त बीतता गया। शोहरत में चाँद-सितारे टंकते गये। न बैलों में कोई फर्क नजर आता, न कवलापति में। जैसे उनकी जवानी की घुट्टी में कौये की जीभ पड़ गयी हो। ऐसे हरे-हरे दिखते वे, जैसे सदा बहार। लोग देखते और रश्क करते।

लेकिन आखिर एक दिन वह भी आया, जब सदाबहार मुरझा गया। कड़ी से कड़ी पत्थर-तोड़ मेहनत की छाती पर जो हमेशा मुस्कराते हुए दनदना कर निकल जाते उन्हें इस आग-लगे जमाने ने ऐसा धर पटका, कि बस चित होकर

रह गये।

दूसरी लड़ाई के बाद का जमाना। महँगायी, कोटे और कन्ट्रोल ने रोजी रोजगार को चौपट कर के रख दिया। कवलापति की गाड़ी बेकार रहने लगी। टीसन से माल आना-जाना बन्द हो गया। बैठकी पड़ने लगी। खुले हाथ में था क्या कि कवलापति मुट्ठी बाँधता? कमायी न रही, तो खुराक कहां से जुटे? जो नाँद भूसे और दाने के जोर से रात दिन उबलते रहते थे, उनमें कवलापति को अब झाँक कर देखना पड़ता। मुँह गर्दन तक डुबाकर भड़र-भड़र की रागिनी से महल्ले को गुँजा देने वाले बैल अब मिचरा-मिचरा कर जीभ से सानी उठाने लगे। कवलापति देखता और उसका कलेजा ऐंठ कर रह जाता। जो कुछ था, झोंकने लगा। लेकिन गाड़ी की ऐसी जोड़ी का गुजर कहीं मामूली खेती-बाड़ी से हुआ है? जब कुछ न रहा, तो अपना और बाल-बच्चों के पेट काटने लगा। लेकिन सिकम भर सबका पेट भरने वाले उन शेर-बैलों के पेट क्या उन पेट-कटे दोनों के संभार के थे?

और कवलापति का दिल टूट गया! उसका ख्याल था कि बहुत दिनों तक जमाना वैसा ही न रहेगा। लेकिन जमाना दिन-दिन जब और बिगड़ता गया, तो वह क्या करता? अपना माँस-खून खिला-पिला कर वह अचानक ही बूढ़ा हो गया। दुख और चिन्ता ने उसकी मूँछों को सफेद कर झुका दिया। वह रोज-रोज हरकते जाते हुए बैलों को देखता और मन ही मन पछाड़ खाकर आँखें मूँद लेता। और एक दिन जब उसने बैलों की उदास आँखों के नीचे काली-मोटी लकीरें देखीं, तो एक बच्चे की तरह वह रो पड़ा। लोगों की आंखें बचाकर अंगौछे से वह उन लकीरों को पोंछने लगा। जब साफ न हुई, तो अंगौछा पानी में भिगो कर पोंछा। फिर भी साफ न हुई, तो पहली बार उसकी आँखों के अपने आँसुओं ने ही बताया कि कितना खून जलकर एक बूँद आँसू बनता है। खून का दाग धोया-पोंछा जा सकता है, लेकिन कहीं आँसू के दाग भी मिटाये जा सके हैं? आँसुओं को पोंछ देने से कहीं आँसू रुकता है? और कवलापति अब पोंछने के सिवा कर ही क्या सकता था?

इक्का-दुक्का जो काम मिलता, अब कवलापति उससे भी मन हटाने लगा।

उन बैलों के काँधे पर जुआठ रखते उसका कलेजा फटता। उसे अपने पहले दिन याद आते और वह एक भावुक की तरह रो-रो पड़ता।

यह मार जैसे कम थी कि अगले साल एक और मार आ पड़ी। सावन-भादो ऐसा बरसा, मानो आसमान में दरारें पड़ गयी हों। बोई भदयी सड़-गल कर रह गयी। मजदूर-किसानों और उनके चौपायों का गुजर भदई से होता है और बड़े आदमियों और उनके चौपायों का गुजर रब्बी से। भदई का जाना गरीबों और उनके चौपायों की मौत है।

चारों ओर मौत मँडराने लगी। गरीबों की आँखें सूख कर वीरान हो गयीं। अकाल गीधों की तरह सिर पर मँडराने लगा। जानवरों को कौन पूछे, गरीब पटापट मरने लगे। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। लोग गाँव छोड़कर शहर की ओर भागने लगे। जिसका जहाँ सींग समाता, भागता नजर आता। एक मुट्ठी जहाँ अन्न भी न मिले, वहाँ कोई कैसे रहे? सुना जाता कि सरकार मोटा गल्ला भेज रही है, लेकिन जाने कहाँ वह गल्ला रास्ते में ही उड़ जाता। कवलापति ने सोचा था कि भदई अच्छी हो गयी, तो तीन महीने तो अच्छी तरह कट जायेंगे, आगे का भगवान मालिक है। लेकिन अब ऐसी आ पड़ी। पहली बार जब हीरा-मोती चुगनेवाले अपने बैलों के सामने उसने पिछले साल का बचा-खुचा पुआल फेंका, तो वह वहाँ यह देखने के लिये खड़ा न रह सका कि बैल उन पर मुँह मारते हैं कि नहीं।

और तभी एक रात कलकत्ता से मुरली आया। उसकी अकेली बहू ने उसे यहाँ का हाल-चाल लिखवा कर लिवा जाने के लिए बुलाया था। मुरली ने कवलापति के सामने सिर पटक कर मिन्नत की थी—चौधरी चाचा, टीसन तक पहुँचा दो, नहीं तो मेरी बेकत तो यहां मर ही जायगी। वहां कुछ नहीं तो आधा पेट राशन तो मिल जाता है।

और कवलापति ने सिर झुकाये ही कहा था—कितनी गाड़ियाँ पड़ी हैं। चला जा किसी को लेके। मैंने तो जमाने से गाड़ी हांकना छोड़ दिया है।'

'नहीं चौधरी चाचा, दूसरे पर विश्वास नहीं होता। जमाना बहुत खराब आ गया है। चारों ओर लूट-पाट मच रही है। कुछ ले-देकर चलना खतरा बन गया

है। उसकी देह पर कुछ गहने हैं। कहीं कुछ हो गया तो मैं तो मर जाऊँगा। नहीं चौधरी चाचा, ना न करो। तुम्हारी भी तो वह बेटी ही है। पहुँचा दो चाचा, समझेंगे तुमने हमें नयी जिन्दगी दे दी। तुम्हारे पैर पकड़ता हूँ, चाचा।' कवलापति क्या करता? बेमुरौवती का नाम उसने जाना ही कब था?

बैठकी और कमजोरी के कारण बैलों के पाँव न उठते। कभी की आदत न होने से कवलापति कैसे हांकता या छिकुन उठाता? धीरे-धीरे दोपहर तक जब छः ही मील चल पाये, तो मुरली परेशान हो उठा और लगा कवलापति को खोदने। कवलापति पहले चुप रहा। फिर समझाया कि गाड़ी छूटेगी नहीं, आज तक कभी नहीं छूटी। फिर भी बैलों की वही मरियल चाल देखकर मुरली को कैसे धीरज रहता? वह और भी खोदने लगा! और फिर तो कवलापति को जाने क्या हो गया, कि उसने कई छिकुनें तोड़ दीं।

बैलों की पीठ पर गोहिये (मार के निशान) देखकर, कवलापति समझ न पा रहा था कि सचमुच उसे आज क्या हो गया था, जिन बैलों को उसने कभी ठोकारी न मारी, उनपर उसने आज छिकुनें कैसे तोड़ दीं। कवलापति का दिल रो रहा था। और बैलों को भी जैसे आर आ गई थी, उनकी आंखों के नीचे की लकीरें और भी गाढ़ी, और भी मोटी होती जा रही थीं। वे उन्हीं आंखों से एक टक कवलापति को जैसे देखे जा रहे थे, जैसे पहचानने की कोशिश कर रहे हों कि क्या यह वही कवलापति है? और कवलापति उनसे आंखें न मिला पा रहा था। वह मन-ही-मन कटा जा रहा था, जैसे उसका सारा प्यार-दुलार आज खत्म हो गया था, जैसे सचमुच आज वह अपनी निगाहों में भी बदल गया हो।

शाम झुक आई। पच्छिम में वीरान आकाश के माथे पर चांद का टुकड़ा ऐसा दिखाई दे रहा था, जैसे नई विधवा के माथे पर पुँछे हुए लाल सिन्दूर के टीके का निशान हो। हवा बन्द थी। बस्ती शान्त। कहीं कोई शोर न था। जैसे सब वातावरण ही सहमा-सहमा हो। कवलापति बहुत दिनों के बाद टीसन पर आया था। उसे आश्चर्य हुआ कि शाम को उस बस्ती की सड़क पर जगमग-जगमग करनेवाली वे बत्तियां कहां गईं, वे दुकानें और मुसाफिरों का वह शोर

कहां गया, जगह-जगह सड़क-किनारे लिट्टी सेंकने के तैयार होते अहरों से चिमनी की तरह उठते हुए धुओं के भभके कहां गये ? यह ऐसी विरानी क्यों, जैसे सरेशाम ही सोता पड़ गया हो।

फिर भी कवलापति को मालूम था कि उसकी मोदियाइन की दुकान कहां है। उस अँधेरे में भी वहां पहुँचने में उसे कोई दिक्कत न हुई। मोदियाइन के भी घर का दरवाजा बन्द था। कवलापति को शक हुआ कि कहीं मोदियाइन ने भी तो दुकान नहीं उठा दी। उसने आवाज दी।

कवलापति की आवाज कौन न पहचानता ? मोदियाइन हाथ में हुक्की लिए दरवाजा खोलकर बोली—बड़े दिन पर लौटे, चौधरी ?

'हां, क्या करूँ ? कुछ काम ही न रहा,' कवलापति ने कहा।

'गाड़ी लेकर आये हो ?' मोदियाइन ने हुक्की में एक बार गुड़-सा करके कहा।

'हां, कुछ सत्तू-भूसी के लिये चला आया,' कवलापति बोला ?

'सत्तू-भूसी का तो नाम न लो, चौधरी। अनाज कहां मिलता है कि कूटूँ-पीसूँ ? वह तो महीनों हो गये...'

'ऐसा न कहो, मोदियाइन, मेरा काम तो किसी तरह चला ही दो। बैल बहुत भूखे हैं। पास में एक तिनका भूसा भी नहीं', कवलापति गिड़गिड़ाया।

'क्या बताऊँ तुमसे चौधरी, पास होता, तो चाहे दुनिया को इनकार कर देती, तुमसे ना कहते कैसे बनता ? अपने खाने के लिए सेर-आध सेर है। चाहो तो ले लो,' कहकर मोदियाइन ने चिलम पर एक फूँक मारी। राख के कण कवलापति के मुँह पर उड़ आये।

वह बोला—'सेर-आध सेर से मेरे बैलों का क्या होगा, मोदियाइन ! पैसा चाहे जितना ले लो...'

"हाथी पालने का यह जमाना नहीं, चौधरी। रहता, तो क्या तुम्हीं से मोल-मोलाई करती ?' कहकर मोदियाइन मुस्कराई। फिर बोली—थोड़ी भूसी भी होगी। मिला-जुलाकर किसी तरह काम चला लो। क्या करोगे ? जब आदमियों को ही दाना नहीं जुड़ता, तो जानवरों को कहाँ से मिलेगा !...यह बैल

तो वही है न? क्यों नहीं इन्हें बेचकर कोई छोटा-मोटा ले लेते? इनके पेट का इस जमाने में कहाँ से जुटाओगे?"

'दुर्दिन में अपनों से गला नहीं छुड़ाया जाता, मोदियाइन! मेरा खूँटा छोड़कर ये एक पल भी जिन्दा न रहेंगे। लाओ, जो हो, दे दो। इन्हें पिला-खिला दूँ। नाँद तो तुम्हारी साफ है न?'

'हाँ, यह बाल्टी-डोर पड़ी है। तुम पानी भरो।'

नांद साफकर कवलापति ने पानी भरा। दो सेर सत्तू का पतला घोल एक मिनट में बैल सुड़क गये। फिर पानी में पाँच सेर भूसी चलाई। पाँच मिनट में बैल मुँह ताकने लगे।

कवलापति की समझ में न आ रहा था कि वह इन बैलों को कैसे समझाये? वह दुखी ही पाँच रुपये मोदियाइन का हिसाब चुकाकर वापस लौटा। आज उसने सोचा था कि टीसन पर भर पेट बैलों को खिलाएगा, चाहे सब रुपये क्यों न खर्च हो जायँ। लेकिन यह जमाने की खूबी ही तो थी, कि खर्च करके भी कवलापति अपने बैलों का पेट न भर सका।

लौटा, तो टीसन पर एक शोर सुनाई पड़ा। गाड़ी आ गई थी। उस सन्नाटे में वह शोर ऐसा लगा, जैसे मसान पर कोई मुर्दा जलने को आ गया हो।

कवलापति बैलों की जोती जुआठ में बाँध ही रहा था कि सुना—अरे, चौधरी भाई हैं?

कवलापति ने आवाज की ओर सिर उठाकर कहा—कौन?

'मैं लछिमी लाल। पहचाना नहीं? बड़े मौके से भेंट हो गई। सवारी लेकर आये थे?'

'हाँ।'

'लौटना है न?'

'हाँ।'

'एक काम हमारा भी है। करते चलो। लौटती भी कुछ मिल जायगा।'

'क्या है?'

'अरे दस बोरियाँ हैं।'

'मैंने आजकल लादना छोड़ दिया है, लाला ।'

'अरे भाई, सो तो मालूम है। लेकिन जब आ ही गये हो, तो लेते चलो ।'

'बहुत गाड़ियां मिलेंगी। तुम्हारी अपनी भी तो गाड़ी है।'

'अपनी गाड़ी मँगा न सका। चार दिन का आया हूँ। आज सौदा बना। दूसरे की गाड़ी ले नहीं सकता। माल जरा जोखिम का है चौधरी भाई, तुमसे क्या छिपाना। तुमपर जितना विश्वास है, उतना अपनी गाड़ी पर भी नहीं। तुमको माल देकर हमें कोई चिन्ता नहीं रह जाती। संजोग से तुमसे भेंट हो गई, नहीं तो मैं तो बहुत परेशान था, कि कैसे क्या होगा। ले लो, चौधरी तुम्हें खुशकर दूंगा।'

'चौधरी को लोभ दिला रहे हो? कभी…'

'अरे चौधरी, यह तो बात की बात थी। नहीं तो क्या तुम्हें हम नहीं जानते? कहो, तो दाढ़ी पकड़ लूँ। अब सौदा कर लिया है, तो निबार लो, चौधरी भाई।'

'ज्यादे नहीं लादूँगा। बैल…'

'नहीं, नहीं चौधरी भाई, ज्यादे कहाँ मिलता है। बस दस बोरियाँ हैं। खा-पीकर खोल दोगे, तो रातों-रात…तुम्हारे रहते चौधरी भाई, हमें कोई डर नहीं रहता। यह पर्दा इसी तरह रहने देना। कहीं कोई बात आ पड़े, तो कह देना सवारी है। तुम्हारी बात पर कोई अविश्वास नहीं करता, चौधरी भाई। क्या बताऊँ, तुमने गाड़ी चलाना क्या छोड़ दिया…'

रात गाढ़ी हुई और गाड़ी चल पड़ी। खड़र-पड़र, खचर-पचर। रह-रहकर रात का सन्नाटा चिहुँक-चिहुँक उठता। पर्दे में लाला को हौल हो रहा था। वह होंठों में ही बुदबुदा रहा था, 'राम, राम…' उसका अनुभव था कि यह कैसा मंत्र है, जो बड़ी-बड़ी विपत्तियों को भी पार करा देता है। कहने को चाहे जो हो, आज चौधरी पर भी उसे विश्वास न था। जमाना ही ऐसा नहीं कि किसी पर विश्वास किया जाय।

इस लाला ने लड़ाई में तो अपनी कौड़ी सीधी की ही थी साथ ही सन्

बयालीस में एक ऐसी घटना घट गयी थी कि इसकी सभी कौड़ियाँ सीधी हो गयी थीं। इसकी दूकान के पास एक कांग्रेसी की दूकान थी। गोरी फौज ने कांग्रेसी की दुकान में आग लगायी, तो पड़ोस की लाला की भी दूकान जल उठी। लाला हाय-तोबा कर उठा ऊपर से, लेकिन मन-ही-मन खुश हुआ। उसके पास अवार-जवार के गरीबों के हजारों रुपये के चाँदी के गहने गिरवीं रखे हुए थे। उसके जवान बेटे ने शोर मचा दिया कि वे गहने दूकान में ही थे। फौज लूट ले गयी। धांधली का जमाना था। कोई क्या कहता? गरीब रो-पीट कर रह गये। लाला दूसरे का खून उँगली में लगाकर शहीद बन गया। जमाना पलटा, तो उसका लड़का कांग्रेसी बन गया। सरकार ने जली दूकान का मुआवजा दिया बीस हजार। लाला ने तो एक लाख की अर्जी दी थी। उसका कहना था कि सरकार ने बड़ा अन्याय किया, लेकिन किया किया जाय? कांग्रेसी लड़के ने कोशिश कर सिमेंट, नमक, कपड़े-वपड़े सबका ओटा-कोटा, परमिट-सरमिट बटोर लिया। और देखते-ही-देखते लाला कस्बे का बड़ा आदमी हो गया। फिर भी उसके खादी के कपड़ों में सब मसालों की मिली-जुली गन्ध और रंग चौबीसों घंटे बसे रहते। कोई देखकर, मजाल है कि समझ ले कि लाला मालधनी है। सब काम वह और उसका लड़का ही सँभाल लेते। नौकरों का क्या ठिकाना?

दस बोरियों में गेहूँ भरा था। कस्बे में पहुँचा नहीं, कि गेहूँ सोना बना। जिस भाव चाहें, बेंच लेंगे। एक छँटाक भी कहीं देखने को आज-कल कहाँ मिल रहा है? लेकिन लाला के दिल में दहशत समायी थी कि राह में कुछ हो न जाय। उसे पुलिस का भय न था। पुलिस को तो वह बराबर चटाता रहता था—आज-कल कोई भी रोजगार पुलिस को खुश किये बिना कैसे चल सकता है? और फिर लाला ठहरा परमिट-कोटेवाला, जिसके हर दरवाजे पर हाथ फैले रहते हैं। दो, तो लो। लाला इस पेशे में माहिर हो गया था। उसे डर था राह-घाट के लोगों का। यों भी रास्ते में पकड़-धकड़ कर कमबख्त जेबें टटोलने लगते हैं। कुछ ठिकाना है समाज का? फिर इस शहर में तो लोग काफी सरकश हो गये हैं। दिन-दहाड़े लूट लेते हैं। ऊपर से कहते हैं कि 'हम गैर कानूनी काम

करते हैं, तो तुम किस कानून के मातहत गल्ला चुराये लिये जा रहे हो?' यह सब कम्यूनिस्टों की कारस्तानी है। कम्बख्त इधर बढ़ गये मालूम होते हैं। और लाला पुकार लगाता—चौधरी भाई, जरा फरहरे बढ़ाये चलो। सो तो नहीं रहे?

कवलापति को नींद नहीं आ रही थी। पहले रात को वह सो जाया करता था और बैल अपनी राह पर चलते रहते थे। लेकिन आज उसे नींद नहीं आ रही थी। आज उसके मन में जाने कैसी-कैसी बातें उठ रही थीं।

गीले खेतों में टह-टह चांदनी फैली थी। उस चांदनी से कवलापति की आंखें जल रही थीं। उसे लग रहा था, कि यह चांदनी नहीं है, दलदल पर सफेद-सफेद नाग लहरा रहे हैं और किसानों को डस लेना चाहते हैं। कुआर बीतने पर आया। खेत अब तक सूखे नहीं, कि हल चले और रब्बी की तैयारी हो। भदई तो मारी ही गयी, रब्बी की भी कोई उम्मीद नहीं। यह मार पर मार कैसे बरदाश्त होगी? अकाल पड़ गया है। एक मुट्ठी दाना कहीं नजर नहीं आता। कस्बे का जो बाजार गल्ले से भरा रहता था, आज उजड़ गया है। पता नहीं, सब गल्ला कहाँ उड़ गया। और सहसा कवलापति का ख्याल लाला की गेहुँओं की बोरियों की ओर चला गया। और उसने सोचा कि शायद इसी तरह सब गल्ला लालाओं के हाथ चोर बाजार में पहुँच गया है। लाला कस्बे में चोरी-लुके यह गेहूँ बेचेगा। जिस भाव चाहेगा, बेचेगा। जिसके पास पैसा होगा, खरीदेगा और जिसके पास पैसा नहीं, वह?

'खबरदार! गाड़ी रोक दो!'

कवलापति के हाथ खिंच गये। उसने आँखें भपका कर देखा, सामने कई लट्ठ बन्द काले-काले देव से खड़े थे। लाला की साँस उलटी चलने लगी।

एक लट्ठ बन्द ने आगे बढ़कर पूछा—'सवारी है क्या?' कवलापति चुप। जैसे बकार ही न निकल रही हो। लाला ने काँपते हाथ को बाहर निकाल कर कवलापति की पीठ में चुटकी काटी। मतलब था कि कह दो, सवारी है। लेकिन कवलापति चुप। आज यह कवलापति को क्या हो गया है? दस्तूर के खिलाफ आज उसने आगे लादले बैलों को छिकुनें मारी थीं। दस्तूर के खिलाफ आज महाजन का माल लादे वह चुप है और डाकू सामने खड़े हैं। कवलापति को आज

हो क्या गया है ?

एक दूसरा लट्ठ बन्द सामने बढ़ा और मूरत की तरह चुप बैठे कवलापति को गौर से देखकर उसने कहा—'अरे भाई, यह तो चौधरी हैं।' चौधरी! और सब लट्ठ बन्दों के होंठ हिल गये। चौधरी! 'अरे, चौधरी दादा, बोलते क्यों नहीं? हमें क्या मालूम था कि यह तुम्हारी गाड़ी है। जाओ, जाओ, बढ़ाओ गाड़ी।' वही लट्ठ बन्द बोला।

लाला ने खुश होकर फिर कवलापति की पीठ में चिकोटी काटी! मतलब था, बढ़ाओ, जल्दी गाड़ी बढ़ाओ!

लेकिन गाड़ी खड़ी है। यह क्या बात है? लट्ठ बन्दों में फुस-फुसाहट हुई। क्या बात है? और कवलापति बुत, जैसे साँस भी नहीं ले रहा हो।

'जरा देख तो चढ़ कर। दाल में कुछ काला मालूम होता है। नहीं तो चौधरी क्या इस तरह चुप रहते! है कोई बात?' उसी लट्ठ बन्द ने कहा।

एक लपक कर गाड़ी पर चढ़ गया। लाला के प्राण गले में आ छटपटाने लगे और वह आदमी चीखा—अरे, यह तो अनाज की बोरियाँ हैं!

लाला कवलापति के पैर पर गिर पड़ा। बचा लो चौधरी भाई, बचा लो। तुम बोल दो, तो ये हट जायेंगे। चौधरी भाई...'

कवलापति मूरत का मूरत। बोरियाँ नीचे आने लगीं। लट्ठ बन्दों ने पुकार-पुकार कर पास की अपनी बस्ती के सब गरीबों को जमाकर लिया। लाला चीखता रहा और उसकी वहशी आँखों के सामने ही उसका सोना मुट्ठी-मुट्ठी उड़ गया और कवलापति बुत का बुत।

× × × ×

मुँह-अँधेरे ही गाँव में हंगामा मच गया। पुलिस कवलापति को पकड़ ले गयी।

पता लगाने से मालूम हुआ कि कस्बे के लाला लछिमीलाल ने थाने में रपट लिखायी है कि रात टीसन से वह दस हजार रुपया लेकर कवलापति की बैल गाड़ी पर आ रहा था। जब गाड़ी हल्दी के पुल पर पहुँची, तो कवलापति ने

अपने डाकू साथियों को बुलाकर उसे लुटवा लिया। कवलापति डाकुओं का सरदार मालूम होता है।

लोगों ने सुना तो हैरान हो होकर समझने की कोशिश करने लगे—यह कैसा डाकुओं का सरदार है, जिसने मुँह दिखा कर रात में डाका मारा और सुबह में पकड़ जाने के लिये अपने घर में आ सो गया ? उनकी इस हैरानी का जवाब कौन देता ? कवलापति हवालात में था और खूँटे पर बँधे हुये बैल मूक थे।

—:o:—

पं० शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र'

जन्मकाल	रचनाकाल
१९१२ ई०	१९३४ ई०

नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी

तलवारिया दाताराम नागर को जब तीस बर्ष कालेपानी-निवास की सजा सुनायी गयी तब वारण्ट के नागपाश से मुक्त [illegible] रो पड़े। उन बहादुरों का पत्थर जैसा कलेजा भी हिल गया और हिचकियां बँध गयीं। हथकड़ी और डण्डा-बेड़ी से कसा हुआ नागर का छरहरा बदन लौह-बन्धन की परवाह न कर लाठी की तरह सीधा तन गया। उसकी आंखों के डोरों की ललाई और भी गहरी हो गयी। उसके पतले ओठों पर घृणा भरी मुस्कान फैल गयी और उसने न्यायाधीश की ओर तरेर कर देखा। जज से चार आंखें हुईं और नागर की आंखों की ज्वाला सह न सकने के कारण उसने आंखें नीची कर लीं। वह ओठों में ही बुदबुदाया—बहादुर आदमी है। पर नागर ने उसकी बात न सुनी। उसकी निगाह अपने मित्रों और चेलों की ओर घूम गयी थी। उसने उन पर क्रोध पूर्ण दृष्टि डाली और गरज कर कहा—नामर्दों की तरह रोते क्या हो? बीस बरस ब्रह्मा के दिन नहीं हैं, चुटकियों में उड़ जायंगे। जाओ, बाबा जी से कह देना कि अब हमारे घर-द्वार का भार उन्हीं पर है। और मिर्जापुर वाले बाबा जी से कहना कि सुन्दर की खोज खबर लेते रहेंगे। जाओ!

उस्ताद का आदेश पाकर भारी मन और भींगा नयन लिये नागर के चेले अदालत के कमरे के बाहर निकले। नागर एक बार पैर के पंजों पर खड़ा हो गया; सारी नसें कड़कड़ा कर बोल उठीं। उसने अपना शरीर जरा दाहिने बायें हिलाया और उसके भुजदण्डों पर मछलियां तैर गयीं। बेड़ी झनझनायी और वह बँधे हुए शेर की तरह झूमता बरकन्दाजों के आगे-आगे चल पड़ा।

(२)

सन् १७७२ की काशी अपने गुण्डों के लिए प्रसिद्ध थी। वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा काशी राज्य की लूट के बाद जब विदेशी शासन ने वीरों को अपनी तलवारें कोष में ही रखने के लिए विवश किया तब उनके लिए सिंह-वृत्ति ग्रहण करने के अतिरिक्त और मार्ग न रहा। राजा चेतसिंह की दुर्दशा देखकर जिस समय काशी अचेत होने लगी तब उसके नालायक बेटे जो गुण्डे कहलाते थे, सचेत हुए और उन्होंने विदेशी 'मलिच्छ' के प्रति घृणा का व्रत लिया। ऐसे लोगों में दाताराम नागर और भंगड़ भिक्षुक प्रमुख थे। अलईपुर में जहां आज छुतहा अस्पताल है, उसी के समीप 'ऐतरनी-बैतरनी' तीर्थ के बगीचे में भंगड़ भिक्षुक का कुँआ था। बाग तो नहीं रह गया है पर कुँआ अब भी मौजूद है। वहीं नागर का अखाड़ा भी था। वहाँ उन्हीं जैसे लोग एकत्र होते और फिरंगियों तथा उनके सहायकों को क्षति पहुँचाने की योजनाएं बनायी जातीं। बनारस में शम्भूराम पण्डित, बेनीराम पण्डित, मौलवी अलीउद्दीन कुबरा और मुंशी फैयाज अली तथा मिर्जापुर में अँग्रेजों की ओर से ठीकेदार बनकट मिसिर अंग्रेजों के प्रमुख सहायक थे। कुबरा तो राजा चेतसिंह के पलायन के समय ही बाबू ननकू सिंह नजीब द्वारा मारा जा चुका था। बेनीराम और शम्भूराम गुण्डों के भयवश घर के बाहर बहुत कम निकलते। परन्तु मुंशी फैयाज अली बनारस के नायब और बनकट मिसिर मिर्जापुर में रहने के कारण अपने को खतरे से बाहर समझते थे। नागर ने मित्रों की राय हुई कि पहले मिसिर से ही निबट लिया जाय। नागरने अपने भाई श्यामू और बिट्ठल को मिसिर के पास भेजकर कहलाया कि अगली पूर्णिमा को ओझला के नाले पर आप को भांग छानने का न्योता है। मिसर ने निमंत्रण स्वीकार कर कहला भेजा कि भोजन पानी का प्रबन्ध मेरी ओर से होगा।

(३)

जेल की काल कोठरी में पड़ा-पड़ा नागर अपने जीवन का हिसाब-किताब जोड़ रहा था। उसे विश्वास था कि झाँसी वाले हिम्मतबहादुर राजा अनूपगिरि गोसाईं के पुत्र उमरावगिरि के काशी में रहते उसके परिवार को कोई कष्ट न

होने पायेगा और मिर्जापुर में गोसाईं जयराम गिरि सुन्दर को खाने पहिरने का कष्ट न होने देंगे।

सुन्दर का स्मरण होते ही उसे ओझला के नाले वाली घटना भी याद हो आयी। मिसिर अकोढ़ी गिरोही के सौ लठैतों को लेकर आया था। नागर भी अपने भाइयों, मित्रों और शिष्यों की पलटन के साथ वहाँ पहले से ही पहुँच चुका था। एक ओर पचीसों सिल-बट्टे खटक रहे थे; दूसरी ओर कढ़ाइयों में पूड़ियाँ छन रही थीं। भांग-बूटी छानने और खाना-पानी हो जाने के बाद चांदनी रात में दोनों दलों में जम कर भिड़न्त हुई। बीच-बीच मिसिर चिल्ला उठता था—भगवती विंध्यवासिनी की जय। साथ ही नागर की ललकार उसकी ध्वनि से जा टकराती 'जय भगवान हाटकेश्वर।' दोनों ही अपनी-अपनी गिरोह से बाहर आकर एक दूसरे से भिड़ने का हौसला रखते थे।

अन्त में दोनों एक दूसरे के सामने आ भी पड़े! नागर ने खांडा चलाया; मिसिर ने अपनी लाठी पर वार झेला। खांडे के पानी में लाठी तिनके सी बह गयी। मिसिर पीछे हटा, पर नागर रपेटता गया। तब मिसिर सहसा घूमा और भाग चला। नागर ने उसका पीछा किया। चांदनी रात होने के कारण मिसिर नागर की दृष्टि से ओझल न होने पाता था। सहसा दाताराम ने सोचा—भागते शत्रु का पीछा करना अधर्म है—वह ठमक गया।

शृङ्खलाबद्ध नागर की बेड़ियाँ खनखनायीं और अपने जीवन का यह गौरव-पूर्ण अध्याय पढ़ते-पढ़ते उसकी छाती—गर्वस्फीत हो उठी। काल कोठरी के मच्छर उसका खून पीते-पीते तृप्त हो चुके थे। इसलिए उनका सामूहिक आक्रमण बन्द हो गया था। फलतः बन्दी नागर की आंखें लग गयीं। परन्तु जाग्रतावस्था के विचार निद्रा में भी स्वप्न बन कर उसके मस्तिष्क में मंडराते रहे। उसने सपने में देखा—

उसने सपने में देखा कि वह मिसिर का पीछा छोड़ लौट रहा है। आधी रात का समय है। चांदनी सोलहों कला से खिली हुई है। नाले के उस पार बबूल पर बैठा हुआ घुग्घू रह-रहकर चिल्ला उठता है। शिकार की आशा में एक ही पैर पर शरीर का भार देकर खड़े बगुले के सफेद परों पर ज्योत्स्ना बिखरी पड़

रही है। स्निग्ध आलोक में पैरों के नीचे पीली मिट्टी उष्ण निश्वास के साथ ही कठोरता छोड़ कर शीतल और कोमल हो गयी है। नागर ने अनुभव किया नीरव रात्रि की निस्तब्धता, तीव्र ज्योत्स्ना, दूर-प्रसुप्त वनस्थली और चतुर्दिक् फैली पीली मिट्टी ने सारे वातावरण को जैसे पांशुमुख रुग्ण शिशु के समान करुण बना दिया है। साथ ही उसने यह भी देखा कि सामने टीले से सटकर सफेद गठरी सी कोई वस्तु पड़ी है। उसने निगाह जमाकर देखा—मालूम हुआ कि वह कोई अवगुण्ठनावृत्त नारी-मूर्ति है।

नागर के शरीर के रोएं भरभरा उठे। शरीर कांप गया और वक्षस्थल के नीचे हृपिण्ड ने एक बार अत्यन्त द्रुतगति से चलकर स्नायुमण्डल को छिन्न-भिन्न सा कर दिया। उसकी शून्य दृष्टि घूमती हुई अपने हाथ के खांडे पर पड़ी। खांडे की चमक आंख में उतर आयी। उसे स्मरण हो आया कि लोहे के सामने प्रेत नहीं ठहरते। उसने खांडा संभाला, और आगे बढ़ा। उसे पास आते देख नारी मूर्ति उठ खड़ी हुई और उसने लज्जा, संकोच, भय और दुविधा भरी दृष्टि नागर पर डाली। नागर ने भी उसे भर आंख देखा और आँखों से ही उसका परिचय पूछा। नागर की पौरुष भरी मूर्ति देखकर वह कुछ आश्वास्त-सी हुई।

नागर की नोकदार, भीनी, काली ऊपर की ओर मरोड़ी हुई मूँछें, कमर में एक ओर बिछुआ और दूसरी ओर, खोंसी कटार, लम्बा, छरहरा, कमाया हुआ शरीर, पट्टेदार घुंघराले बाल और डोरा पड़ी रक्तनार आँखें देख उसका संकोच जाता रहा। अत्यन्त प्रगल्भा की तरह उसने हंसकर नागर का हाथ थाम लिया। नागर के शरीर में बिजली दौड़ गयी। रक्तस्रोत के आलोड़न से उसके शरीर की मांस पेशियां सनसना उठीं। उसने उसे स्नेहार्द्र प्रलुब्ध दृष्टि से देखा। उसके भी हाथ उठे और उसने ज्योत्स्ना स्नात सुरापूर्ण पात्र के समान मन्दिर उस रमणी स्त्री के कमनीय कलेवर को अपनी ओर खींचा। रमणी खिंचने का उप-क्रम कर ही रही थी कि नागर चौंका और उस का हाथ छोड़ते हुए उसने हल के झटके से अपना हाथ भी छुड़ा लिया। नारी गिरते-गिरते बची।

नागर को सहसा अपने पिता का वचन स्मरण हो आया था जो उसे वीर व्रत में दीक्षित करते समय उसके पिता ने कहे थे—वीरा! इस व्रत का धारण

करने वाला पर स्त्री को माता समझता है' और उसके पिता वह व्यक्ति थे जिन्होंने नागर ब्राह्मणों के कुल देवता भगवान हाटकेश्वर की स्थापना काशी जी में की थी। उसने तड़पकर पूछा—तू कौन है?

ऐसे ही पूछा जाता है?—नारी ने उलटे प्रश्न किया। नागर दो कदम पीछे हटा। नारी के समक्ष कभी परुष न होने वाला उसका हृदय स्वस्थ होते ही पुनः स्निग्ध हो गया था। उसने हताश से स्वर में कहा—अच्छा भाई! तुम कौन हो? नारी हँसी। उसने उत्तर दिया—पहले एक प्रतिष्ठित ठाकुर की कुंवारी कन्या थी, अब किसी की रखेल कसबिन हूँ।

'ऐसा कैसे हुआ?'—नागर ने पूछा।

'वैसे ही जैसे यहाँ आते-आते तो तुम मर्द थे पर यहाँ आते ही देवता बन गये!'

'तुम्हें कसबिन किसने बनाया?'

'सब मिसिर महाराज की किरपा है। साल भर हुआ मैं अपनी बारी में आम बीन रही थी जहाँ से मिसिर ने मुझे उठवा मँगाया और कसबिन से भी बदतर बना कर रख छोड़ा है।'

'इस बखत यहाँ कैसे आयी हो?'

'सुना था आज मिसिर से किसी की बदी है। देखने आयी थी—कि मिसिर का गला कटे और मेरी छाती ठंडी हो।'

'अब क्या?'

'क्या कहूँ! भागती बखत मिसिर ने मुझे यहाँ देख लिया है। अब बड़ी दुर्दशा से मेरी जान जायगी। तुम्हारी सरन हूँ, रक्षा करो।'

नागर ने दो मिनट सोचा; फिर बोला—तुम नार घाट चली जाओ। वहीं घाट पर मैं तुमसे मिलूँगा।

रमणी फिर हंसी। नागर मुस्करा उठा।

कठोर भूमि पर पड़े कैदी ने करवट बदली। उसके जेल यातना-पीड़ित मुख पर मधुर मुसकान दौड़ गयी। स्वप्न ने भी करवट ली। नागर ने देखा रमणी को बिदा कर वह पुनः चलने लगा। सामने रास्ता एक [illegible] में होकर जाता था;

जो इतना सँकरा था कि उसमें एक समय एक ही व्यक्ति के चलने का अवकाश था। नागर ने देखा मिसिर भी लौटा है और घाटी में आगे-आगे जा रहा है। नागर की आहट पाकर भी वह पीछे न घूमा, बढ़ता ही चला गया। नागर ने आवाज दी—

'ठहरो! मिसिर जी!'

'चले आओ नागर!' बिना घूमे ही मिसिर ने जबाब दिया। नागर ने उसके साहस पर विस्मित होकर फिर कहा—मिसिरजी, तुम खाली हाथ हो और मैं हथियार बन्द हूँ। कहीं पीछे से हमला कर दूँ तब?

मिसिर ठठाकर हँस पड़ा। फिर बोला 'मालूम है, तुम गुण्डे हो। ऐसा छोटा काम कभी कर ही नहीं सकते।' नागर सरल आनन्द से आप्यायित हो उठा, फिर पूछा—

'तब मैदान से क्यों भागे थे?'

'तुम मेरी लाठी टूटी देखकर भी जोश में आगे बढ़े आ रहे थे। तुम भूल गये थे कि निरस्त्र शत्रु पर वार न करना चाहिये।'

'लेकिन मिसिर जी, तुमने काम बहुत खराब किया है। एक तो अपना देश फिरंगियों के हाथ बेंच दिया। उस पर एक कुंवारी कन्या की इज्जत भी उतार ली है। तुम्हें हमसे लड़ना ही पड़ेगा।'

'मैं तो अब भी खाली हाथ हूँ, भाई!'

'इससे क्या, मैं भी खांडा रखे देता हूँ। मेरे पास बिछुआ और कटार भी है। इनमें से एक तुम ले लो। बस यहीं निवट जाय।'

स्वप्न में युद्ध के घात-प्रतिघात के साथ ही उसके मुख पर भी विभिन्न रेखाएँ बन और बिगड़ रही थीं। उसने वैसी ही दीर्घ सांस ली जैसी मिसिर के कलेजे में कटार उतार देने के बाद उसने घटनास्थल पर ली थी। उसकी आँख खुल गयी। स्वप्न ने उसे चिन्तित कर दिया था। समाज से बहिष्कृत सुन्दर को उसने निस्वार्थ भाव से आश्रय दिया था। नार घाट पर किराये के एक मकान में उसे टिकाकर आत्म-निर्भर बनाने के लिए वह उसे मिर्जापुर की पेशेवर गानेवालियों से गाने बजाने की शिक्षा दिलाने लगा। जब कभी वह मिर्जापुर जाता तब उसकी

सारी व्यवस्था देख सुन दिन रहते ही उसके यहाँ से चला आता। रात उसके घर कभी न ठहरता। उसे वह सुन्दर पुकारता था। वह उसे सुंदर लगती थी।

(४)

श्रावण कृष्ण सप्तमी का चन्द्रमा आकाश में उदय हो गया था। बन्दी ने ठंडी सांस खींची। बेड़ी के चुभने से उसे कहीं पीड़ा हुई। उसने अपनी स्थिति अनुभव की और फिर वह स्थिति लाने वाली परिस्थिति पर विचार करने लगा—

'मिर्जापुर में ही उसे खबर मिली कि बनारस के नवाब फैयाजअली इस बार फिर मुहर्रमी जलूस के दुलदुल घोड़े को ठठेरी बाजार की ओर से निकलवाने की कोशिश कर रहे हैं। कम्पनी का राज होने के बाद गत दो वर्षों से फैयाजअली मुहर्रम के जलूस लिए नया रास्ता निकाल रहे थे। दो बार तो नागर ने उधर से जुलूस न जाने दिया था। इस बार उसने सुना कि फैयाजअली जुलूस के साथ पलटन भी भेजेंगे। नागर का रक्त उबल पड़ा। वह मिर्जापुर से सीधे बनारस आया और सुंड़िया होते ठठेरी बाजार में उस समय पहुँचा जब दुलदुल घोड़ा उसके ठीक सामने से ही जा रहा था। उसने तड़पकर खांडे से वार किया। पलटन भी नागर पर टूट पड़ी। गोरों की संगीनों और तिलंगों की तलवारों से नागर के खांडे की लड़ाई थी। संगीनें झुक गयीं, तलवारें मुड़ गयीं और खांडा रास्ता चीरता हुआ बढ़ता चला गया।

नागर ने ब्रह्मनाल जाकर उमरावगिरि की बावली के एक नाले में अपने को छिपाया। पर वहां अपने को सुरक्षित न समझ वह एक रात राजघाट की खोह में जा घुसा। एक दिन कटेसर निबटने जाते समय मुखबिरों से खबर पाकर गोरों और तिलंगों की सेनाने उसे फिर जा घेरा। खाली हाथ केवल लोटे से दो चार सैनिकों की खोपड़ी तोड़ने के बाद नागर गिरफ्तार हो गया। नागर को जीवन भरका हिसाब किताब जोड़ने के बाद अनुभव हुआ कि मेरा जीवन सार्थक है। उसने सन्तोष की सांस ली।

(५)

नागर को सजा सुनायी जाने के दो दिन बाद जिस रात श्रावण कृष्ण

नवमी का चन्द्रमा उदित हुआ उस समय आकाश मेघाच्छन्न था। अस्पष्ट फीके आलोक में व्यक्ति और वस्तु की सीमा रेखा तो समझ में आ जाती थी पर वे स्पष्ट दिखायी न देती थी। हलके फुलके मेघों के दल इधर-उधर उड़ते फिर रहे थे। आकाश के एक कोने में एक चमकदार तारा झिलमिला रहा था। इसी समय गोसाईं जयरामगिरि, भंगड़ भिक्षुक और नागर का एक चेला बिरखू चीलह गाँव में इक्के पर से उतर नारघाट जाने के लिए नाव में सवार हुए। उन्हें यह खबर न थी कि सुन्दर को नागर के कालेपानी जाने की खबर मिल चुकी है। उन्हें यह भी न मालूम था कि सुन्दर इस समय भी उस पार नारघाट की सीढ़ियों पर बैठ बढ़ी गंगा के पानी में पैर झुलाये आकाश की ओर एक-टक देख रही है। वह सोच रही है कि सिर पर यह जो नीला आकाश है, आखिर वह है क्या ? उसके पार भी क्या इसी प्रकार सुख-दुख और हास्य-रुदन से भरा हुआ पृथ्वी के ही समान कोई स्थान है जो इसी प्रकार फल-फूलों और लताओं से रंगीन हो रहा है। वहां भी क्या ऐसे ही नर-नारी हैं। वहाँ पर भी क्या ऐसे ही तृप्तिहीन, आश्रयहीन गृह हैं। ऐसी ही लांछना है, ऐसा ही अविचार है। नागर से उसका कितना अल्प परिचय था फिर भी उसने ऐसा व्यवहार किया जैसे वह उसका जन्म जन्मांतर का परिचित हो। वही नागर कालेपानी गया। सुन्दर सोचने लगी—कालापानी कहाँ है ? दूर, बहुत दूर कोई टापू है जहाँ से लौटकर कोई नहीं आता। सुन्दर का हृदय भर आया, उसके ओंठ हिले। वह गुनगुनाने लगी—

'अरे रामा, नागर नैया जाला काले पानियां रे हरी। सब कर नैया जाला कासी हो बिसेसर रामा,

नागर नैया जाला कालेपनियां रे हरी।'

उसका स्वर क्रमशः ऊँचा हुआ। निस्तब्धता की छाती चीर उसकी करुण ध्वनि आकाश में गूंजी। सूने पाषाण तट, चञ्चल तरंगें और नौका पर सवार नागर के साथी सुनने लगे—

घरवा में रोवैं नागर, माई और बहिनियां रामा;
सेजिया पै रोवै बारी धनियां रे हरी।

खु टिया पै रोवै नागर ढाल तरवरिया रामा,
कोनवां में रोवै कड़ाबिनियां रे हरी।

नाव और समीप आ चली थी। तीनों नौकारोहियों ने यह सुना—

'रहिया में रोवैं तोर संगी अउर साथी रामा,
नार घाट पर रोवैं कसविनियाँ रे रही।'

और वे फूट-फूट कर रो उठे। मल्लाह ने और तेजी से डांड़ चलाया। नाव ठीक सुन्दर के सामने आ पड़ी। पर सुन्दर अपने ही विचारों में मग्न गाती रही—

'जो मैं जनत्यू नागर जइबा काले पनियां रामा,
तोरे पसवां चलि अवत्यू बिनुरे गवनवां रे हरी।'

ऊपर वायु सिसक रही थी, नीचे गंगा की लहरें कराह रहीं थी और नौका पर बैठे मल्लाह सहित तीनों यात्रियों की आखें बरसाती नदी से होड़ लगा रही थीं।

इसके बाद भी, बहुत दिनों तक मिर्जापुर निवासी नारघाट की पगली को पैसा देकर उससे यह कजली गवाते और करुणा खरीदते रहे। सुनने वालों की आखें भर आतीं जब वह कलेजे का सारा दर्द घोल कर गाती—

अरे रामा, नागर नैया जाला काले पनियां रे हरी।

—:o:—

पं० कमल जोशी

जन्मकाल रचनाकाल

१९१० ई० १९३५ ई०

लच्छो

जब सिर्फ तीन दिन के बुखार में ही बिहारी की दूसरी पत्नी माला भी चल बसी, तब वह पचास-इकयावन का था।

अपने छोटे-छोटे बच्चों को उसने गोद में उठा लिया। लेकिन वह हैरान था कि अब इनकी देख-भाल कैसे होगी, कौन करेगा?

बड़ा लड़का पन्द्रह साल का था। उसके लिये कोई फिक्र नहीं। अपनी देख-भाल करने लायक वह खुद है। उसके बाद लड़की है, नौ-दस साल की। उसकी भी इतनी चिन्ता नहीं है।

लेकिन और जो छोटे-छोटे बच्चे हैं—उनका पालन-पोषण कैसे होगा। सबसे छोटे ने तो अभी घुटनों के बल चलना ही सीखा है।

शायद इसी प्रकार भगवान किसी का सत्यानाश करते हैं

अगर सबसे बड़ी सन्तान लड़की होती, तो फिर इतनी मुसीबतें नजर न आतीं। पन्द्रह साल की लड़की गृहस्थी का सारा बोझ आसानी से अपने कन्धों पर उठा लेती।

पर इसी उम्र का एक लड़का बिलकुल बेकार है। घर-गृहस्थी का बोझ सम्भालने की न तो उसमें शक्ति ही है और न समय ही।

एक मात्र आसरा है, वृद्धा बुआ का। काफी लम्बे अरसे से बीमार हैं। अब चलीं-तब चलीं—यह उनका हाल है। मौत इन्हें लेजा कर अगर माला को बख्श देती, तो कैसा अच्छा होता।

एक लम्बी सांस छोड़ कर बिहारी उन्हीं बुआ के कमरे की ओर बढ़ा।

पिछले दो चार दिन वह जरा चली-फिरी भी थीं। लेकिन माला की मृत्यु के बाद से तो उन्होंने ऐसी खाट पकड़ी थी कि उठने का नाम ही नहीं।

उनके बिछौने पर बैठ कर बिहारी ने शास्त्र की गूढ़ कथाएँ सुनायीं—यह जीवन क्षण-भंगुर है, यह संसार असार है, यहाँ चन्द रोज के लिये आदमी आता है और अपना काम खत्म होते ही चला जाता है इसी प्रकार और भी अनेक गूढ़ तत्वों का विश्लेषण उसने किया।

इन शास्त्रीय और दार्शनिक बातों ने बुआ की अश्रु धारा तो जरूर कुछ कम कर दी, लेकिन उठने-बैठने लायक नहीं बन सकीं।

शास्त्र की ये पेटेन्ट बातें मन को तसल्ली दे सकती हैं, लेकिन शरीर में शक्ति-संचार नहीं कर सकतीं।

बिहारी समझ गया, इस मुसीबत में बुआ से सिर्फ कुछ गैलन आँसुओं के अलावा और कुछ की मिलने की आशा नहीं है। घर-गृहस्थी की इस नाव को चलाने की शक्ति उनमें कतई नहीं है।

पहली पत्नी से दो लड़कियाँ हैं। लेकिन वे खुद बाल-बच्चे वाली हैं। दोनों का ही सम्पन्न घराने में ब्याह हुआ है। उनके यहाँ सब-कुछ है। ज्यादा से ज्यादा वे पन्द्रह-बीस दिन के लिये आ सकती हैं। इससे ज्यादा ठहराना सम्भव नहीं।

पत्नी-शोक के बजाय ये सब चिन्ताएँ ही बिहारी के मन में प्रबल हो उठीं। रसोई कौन बनायेगा? बच्चों को नहलाना-धुलाना कौन करेगा?

बिहारी की गृहस्थी भी छोटी नहीं है और काम भी कम नहीं। माला दिन-रात कुछ-न-कुछ काम करती ही रहती थी और बिहारी कहता था—'तुम्हारा काम कभी खत्म भी होगा या नहीं?' इस बात पर ही पति-पत्नी में कई बार झगड़ा भी हुआ था।

आज बिहारी ने समझा, जिसे हर रोज ही इतना बड़ा बोझ उठाना पड़ता है, जिसे शनि या रविवार की कोई छुट्टी नहीं—उसके लिये हर वक्त अपने दिमाग को ठीक रखना वाकई बहुत मुश्किल है।

दूर के रिश्ते में बिहारी की एक विधवा बहिन है। दूर का रिश्ता है तो

क्या हुआ, आना-जाना और मेल-मिलाप की वजह से सम्बन्ध काफी घनिष्ठ हो गया है। वह विधवा है, कोई सन्तान नहीं है। जेठ देवर के यहाँ सुबह सुर्योदय से लेकर रात तक परिश्रम के विनिमय में दोनों वक्त जली-कटी बातें तथा डांट-डपट और एक वक्त खाने के लिये दो रोटियाँ मिल जाती हैं।

उन कष्टों से घबड़ा कर ही कुछ दिनों के लिये वह एक बार माला के जीवित-काल में ही यहाँ आयी थी। इच्छा थी, विधवा जीवन के बाकी दिन भाई के आश्रय में ही काट देगी। लेकिन मुखी माला की वजह से उसका यहाँ ज्यादा दिनों तक रहना भी न हो सका।

उस विस्मृतप्राय इतिहास की याद कर बिहारी चुप रह गया।

चोरी करने के अपराध में जब लच्छो यहाँ से निकल गयी थी, तब बिहारी चुप-चाप खड़ा सब तमाशा देख रहा था। लच्छो की रक्षा नहीं कर सका। सांत्वना के दो शब्द भी नहीं कह सका। कलंक चाहे जितना बड़ा हो, बिहारी तो कम से कम अपराध को इतना बड़ा नहीं मान सकता।

देवर के बच्चों को पतंग खरीदवाने के लिये अगर लच्छो ने सेर-दो सेर गेहूँ, चुरा कर बेच ही दीये तो वह ऐसा कौन-सा बड़ा अपराध हो गया कि मुहल्ले भर को इकट्ठा कर उनके सामने फजीहत की जाय।

अगर बिहारी चाहता तो उसे बचा सकता था।

लेकिन उसे न जाने यह कैसा लगा कि, जो विधवा पति-गृह में निर्यातिता है, वही मातृ-गृह में आकर भी देवर के बच्चों की ममता को नहीं भुला सकी, देवर-जेठ की लांछनाओं के बावजूद भी उसके अवलम्बहीन जीवन की मूल सांकल उस दुःख पूर्ण पति-गृह में ही गाड़ी हुई है, इसमें कोई शक नहीं। इसलिए उसका वहीं लौट जाना उचित है।

उस दिन से आज तक जिस बहिन की खबर लेना भी आवश्यक नहीं समझा था, आज उसी के आगे जाकर वह कैसे खड़ा हो सकता है—यह ख्याल आते ही वह सोच में पड़ा।

लेकिन बिहारी की मुश्किल बहुत ही जल्दी आसान हो गयी।

एक दिन सुबह रोने की आवाज से नींद खुली तो क्या देखता है कि उसके

ही आँगन में बैठी हुई लच्छो अति करुण भाव से मृत भौजाई का शोक मना रही है।

बिहारी को तो जैसे आकाश का चाँद मिल गया। धोती से अपने आँसू पोंछते हुए बोला—लच्छो आ गयीं ?

रोना बन्द कर लच्छो बोली—बिना आये कैसे रह सकती थी भैया ? मैं तो इतने पास रहती हूँ, उस वक्त खबर भेज कर मुझे बुला क्यों नहीं लिया ?

बगलें झाँकते हुए बिहारी ने जवाब दिया—उस समय बुलाने का वक्त ही नहीं मिला, बहिन। अब तुम्हें बुलाने की ही सोच रहा था। बहुत अच्छा हुआ कि तुम खुद ही आ गयीं। यह देख ही रही हो कि घर की क्या हालत है। और वह देखो बच्चों की सूरत। बुआ उठ-बैठ नहीं सकतीं। अब इन सब की देख-भाल का भार ले लो और मुझे इस आफत से छुटकारा दो। अब मुझसे यह सब नहीं होता।

अन्तिम वाक्य कहते हुए उसका गला भर आया।

रोने की आवाज सुन कर इस बीच लड़के-लड़कियाँ भी उनके पास आकर खड़े हो गये थे। लच्छो ने दोनों हाथ फैला कर उन्हें अपनी छाती से लगा लिया।

बिहारी ने एक बार देखा और फिर जल्दी से बाहर चला गया। पत्नी-वियोग के इतने दिनों बाद उसकी आँखों से आँसू निकल आ पड़े। अब अपने को रोकना जैसे उसके लिए असम्भव हो गया।

इसके बाद बुआ उठीं। पास-पड़ोस की औरतें आयीं। दो-चार नंगे शिशु भी आ गये।

सबने यही कहा—अच्छा किया जो तुम आ गयीं। तुम ही नहीं आओगी तो फिर और कौन आयेगा ? बुआ को देखो। अब उनमें क्या शक्ति है। जब तक नयी बहू न आ जाय तब तक सब देख-भाल करो और बच्चों को प्यार से देखो।

बिहारी जब बाहर से लौटा तो उसने देखा कि आँगन साफ-सुथरा है, बरामदा चमक रहा है। बहुत दिनों बाद मकान की श्री फिर लौटी आयी है। पत्नी-

वियोग की वेदना भूलकर बिहारी के होठों पर सन्तोष का आभास मिला।

बारह वर्ष की उम्र में लच्छो का ब्याह हुआ था। पन्द्रह साल की उम्र में वह विधवा हो गयी। कोई बच्चा नहीं हुआ। पति को जानने-पहचानने का सुयोग ही नहीं मिला। घर-गृहस्थी बनाने की आशा मन में उठते न उठते ही मिट गयी।

पति की मृत्यु के बाद उसकी दशा नौकरानियों जैसी हो गयी। घर के सब कामों का भार उस पर लाद दिया गया। जी-तोड़ परिश्रम और दूसरों का हुक्म तामील करना ही उसकी दिनचर्या थी।

लेन-देन, सजने-सजाने का काम उसकी जेठानी और देवरानियों का था। उन्हीं का यह घर था, उन्हीं की गृहस्थी थी। वह तो सिर्फ एक वक्त दो रोटियों के विनमय में खटती थी।

इस बार बिहारी की गृहस्थी में आकर उसे गृहिणीत्व का स्वाद पहली बार मिला।

वृद्धा बुआ बिछौने पर से उठ नहीं पाती थीं। बिहारी का बाहर घूमने का ही काम था। सुबह उठने के साथ-साथ घर में झाड़ू-बुहारी देने से लेकर रात को सोने से पहले बिहारी के छोटे लड़के को दूध पिलाने तक का सब काम अकेले उसके जिम्मे था।

उस पर हुक्म चलाने वाला कोई नहीं था। जिस काम को करने की उसकी इच्छा नहीं होगी, वह नहीं होगा। ऐसी ही एक गृहस्थी बनाने की इच्छा शायद उसके अवचेतन मन में थी। उसकी खुशी का अब कोई ठिकाना नहीं रहा।

प्रत्येक कमरे को उसने फिर नये ढंग से अपनी इच्छा-नुसार सजाया। यहाँ की खाट वहाँ चली गयी। तस्वीरों को झाड़-पोंछ कर उसने नये तरीके से लगाया।

बिहारी के सोने के कमरे में दो पलंग थे। माला की मृत्यु के बाद अब दूसरे पलंग की कोई जरूरत नहीं रह गयी थी। छोटे बच्चे दूसरे कमरे में उसके पास ही सोते थे। एक पलंग ले जाकर उसने बुआ के कमरे में डाल दिया। पलंग

देख कर बुआ बहुत खुश हो गयीं। अब तक वे एक टूटी-सी खाट पर ही पड़ी रहती थीं। खुश हो कर उन्होंने लच्छो के सिर हाथ फेरा और खूब आशिर्वाद दिये।

यह ठीक है कि बिहारी को अब दो पलंग की जरूरत नहीं थी। फिर भी उसके कमरे से इतनी जल्दी पलंग हटा देना उसे अच्छा नहीं लगा। बहुत दिनों से उसके कमरे में दो पलंग बिछे हुए थे। दोपहर को अब वह अपने पलंग पर लेटा तो उसे बहुत सूना-सूना-सा लगा।

पूछा—लच्छो, वह दूसरा पलंग कहाँ गया ?

लच्छो ने जवाब दिया—बुआ के कमरे में। टूटी खाट पर सोने की वजह से उन्हें बहुत तकलीफ होती थी। बूढ़ी हैं न।

बिहारी को अब और कुछ कहने का साहस नहीं हुआ।

इस बार भिखारी की तरह लच्छो नहीं आयी है। आज बिहारी की गृहस्थी में उसका नितान्त प्रयोजन है। बिहारी चुप हो गया, लेकिन दोपहर को उसे नींद नहीं आयी।

उसे न जाने क्यों ऐसा लगा कि, सिर्फ बुआ की खातिर ही वह पलंग यहाँ से नहीं हटाया गया है। इसका और भी कुछ कारण है। माला द्वारा लच्छो के प्रति किये गये व्यवहार का भी प्रतिशोध जैसे इसमें प्रच्छन्न है। माला की स्मृति अनन्तकाल तक बनाये रहेगा, ऐसा कोई प्रण बिहारी ने अवश्य नहीं किया था। लेकिन फिर भी उसके हाथ के समस्त स्पर्शों को इतनी जल्दी पोंछ देने का प्रयास भी तो उसे अच्छा नहीं लगा।

लेकिन बिहारी के मनोभावों का पता लच्छो को लगा या नहीं, यह मालूम नहीं हुआ।

उसने पहले की तरह एकछत्र मालिकानापन कायम रखा। यह मालिकानापन शान्त या कम नहीं हो सकता। बरसात के पानी से भरी हुई नदी की तरह उसमें बाढ़ आ सकती है पर उसका तिरस्कार नहीं किया जा सकता। कमरों को साफ-सुथरा रखने में और बच्चों की देख-भाल में उसका परिचय सुस्पष्ट है।

इतना ही नहीं, बल्कि कई महीनों में बिहारी भी पहले से ज्यादा स्वस्थ नजर आता है। इस बात को लेकर ही उसको अपनी मित्र-मंडली का व्यंग भी

सहन करना पड़ता है।

बिहारी हँसता है।

लच्छो जैसा अच्छा खाना बनाती है, वैसा स्वादिष्ट माला नहीं बना सकती थी। और बिहारी को खाना खिलाना भी उसके लिए बहुत ही साधारण-सी घरेलू बात थी। उसमें आन्तरिकता भले ही हो, लेकिन ऐसा यत्न नहीं था। और अब तो मानो लच्छो के यहाँ उसका प्रतिदिन निमंत्रण है।

लेकिन इतना सब कुछ करने पर भी लच्छो के मन का डर नहीं जाता।

कौन जाने यह मालिकानापन कितने दिनों है?

शायद एक दिन एकाएक सुनेगी कि बिहारी की शादी का दिन निश्चित हो गया है। एक तो बुढ़ापे में बिहारी की शादी, दूसरे आज-कल के जमाने की लड़की, कोई बहुत छोटी लड़की तो आयेगी ही नहीं। शादी के बाद इस गृहस्थी का सारा भार संभालते उसे कितनी देर लगेगी।

तब?

फिर जैसे का तैसा। हमेशा डाँट-फटकार सुनने पर भी ये बच्चे उसे ही माँ कह कर पुकारेंगे। उसी के पीछे-पीछे फिरेंगे। सुबह से रात तक लच्छो को काम करना होगा, फरमाइश के मुताबिक रसोई बनानी होगी। लेकिन सामने बैठ कर किसी को थाली नहीं परोस सकेगी, खिला नहीं सकेगी। वही दशा होगी जैसी माला के जमाने में थी।

इतने सुख में भी लच्छो को सुख और शान्ति नहीं है। उसे केवल यही अंदेशा रहता है कि उसकी किस्मत में इतना सुखी रहना बदा नहीं है।

यह भय धीरे-धीरे एक मानसिक रोग जैसा हो गया।

बाहर की बैठक में बिहारी और उसके मित्रों के परिहास की आवाज सुनते ही वह सब काम-काज छोड़ आड़ में छिप कर उन लोगों की बातें सुनती—यह जानने के लिए कि क्या बातें हो रही हैं?

किसी अपरिचित व्यक्ति को आते देख कर उसका दिल जोर से धड़कने लगता। कौन किस मतलब से आता है, क्या मालूम?

बिहारी के मन में धीरे-धीरे क्या इच्छाएँ उठ रही हैं, यह भी कौन

जानता है ?

आखिर एक दिन लच्छो ने बहुत चतुराई से खुद बात छेड़ दी।

उस दिन लच्छो ने बड़े मन से एक नयी सब्जी बनाई थी। वह सब्जी बिहारी को बहुत पसंद आयी। खुश होकर बोला—लच्छो, तू बड़ा अच्छा खाना बनाती है। सब दोस्त कहते हैं कि तेरा बनाया हुआ खाना खा कर मेरी सेहत अच्छी हो गयी है।

'अच्छा, रहने भी दो!'—कह कर लज्जा से लच्छो ने फौरन ही दूसरी तरफ मुँह फेर लिया।

उसको लजाते देख बिहारी हँस पड़ा। बोला—सच तो है। लोगों की बात जाने दो मुझे खुद भी ऐसा लगता है।

'खाक लगता है।' यह कह कर और थोड़ी-सी सब्जी रसोई से ला कर बिहारी की थाली में रख दी। कुछ देर बाद धीरे-धीरे बोली—मेरे ममिया ससुर की एक लड़की है, काफी बड़ी है, सुन्दर भी है। हँसते क्यों हो विश्वास नहीं होता!

हँसी रोक कर बिहारी ने कहा—विश्वास क्यों नहीं होगा। बहुत से ममिया ससुरों की बड़ी लड़कियाँ होती हैं और जरूर होंगी। हाँ, तो फिर?

'कहना यही है कि कहीं तुम इन्कार मत कर देना। मैं शादी की बात-चीत चलाती हूँ। अगर तुम देखना चाहो तो—'

'कोई जरूरत नहीं। लेकिन लच्छो, तेरा दिमाग तो खराब नहीं हुआ है? मुझे क्या जरूरत पड़ी जो इस उम्र में शादी करूँगा?'

'इस उम्र में क्या कोई शादी नहीं करता?'

'जो करते हैं वे करें। मेरी किस्मत में अगर यही लिखा होता तो एक के बाद एक करके दोनों पत्नियाँ ही क्यों मरतीं?'

तो, इसी वजह से—

सामने रक्खी हुई थाली को और भी निकट खींच कर बिहारी बोला—नहीं, नहीं लच्छो। यह सब पागलपन मत करना। अब और जितने दिन जिन्दा हूँ,

तब तक ऐसा ही अच्छा खाना बना कर खिलाये जा और बच्चों की देख-भाल करती रह। बस!

बिहारी की बातें सुन कर लच्छो खुश हुई, लेकिन सम्पूर्णतः निर्भय नहीं हुई।

पुरुषों का मन बदलते कितनी देर लगती है! उन्हें जो कुछ भी प्रेम होता है वह गृहस्थी से, अपने बच्चों से। वे क्या चाहते हैं, यह वे खुद नहीं जानते।

पुरुषों को वह वयस्क शिशु के अलावा और कुछ नहीं समझती। शिशु की तरह उनके विचारों में सामंजस्य नहीं होता, बुद्धि में स्थिरता भी नहीं।

देखते-देखते बिहारी पर चारों ओर से आक्रमण शुरू हो गया।

मित्र-मण्डली तो पहले से थी ही। उस दिन माथुर साहब की बीबी भी आकर बहुत अनुरोध कर गयीं—मर्द होकर शादी नहीं करोगे, ऐसा क्या कभी हो सकता है लालाजी? क्यों लच्छो ठीक है न?

शान्त स्वर में लच्छो ने कहा—भाभी, तुम लोग ही कहो। मैं तो कहते-कहते थक गयी।

बिहारी हँस पड़ा। बोला—तुम कहते-कहते थक गयीं। शायद इसीलिये ही अब भाभी को बुला लायीं।

इस प्रसंग के उठने के साथ-साथ लच्छो का मुँह सफेद पड़ गया था। उस ओर बिना ध्यान दिये ही श्रीमती माथुर ने कहा—मुझे किसी ने नहीं बुलाया है भाई, मैं तो खुद ही आयी हूँ। और चार आदमियों से तुम पूछ लो कि मैं ठीक कह रही हूँ या नहीं।

हाथ जोड़कर बिहारी बोला—भाभी, सब लोगों से पूछने की क्या जरूरत पड़ी। पर आप ही जरा ख्याल कीजिये कि मेरी उम्र कितनी है?

'और सुनो। कितनी है?'

'पचास पार कर चुका हूँ!'

तालू में जीभ लगाकर माथुर साहब की बीवी ने एक अस्फुट आवाज की और लच्छो की ओर देख कर बोलीं—सुनती हो? पचास पार कर चुका है। मर्द के लिए पचास साल की उम्र क्या है?

माथुर साहब की बीवी का शायद कोई स्वार्थ था। पर उनकी दाल नहीं गली। बुआ के अश्रु भी व्यर्थ हुए। यहाँ तक कि लड़कियों के पिता निराश ही होकर लौट गये। हार कर मित्र-मण्डली ने भी रोज-रोज कहना छोड़ दिया।

इस तरह बिहारी सब तरह के हमलों पर विजयी हो गया। वे भी हार मानकर पीछे हट गये। पर इसके साथ-साथ वे लोग बिहारी के मन को कितनी हानि पहुँचा गये, उस वक्त इसका कुछ पता नहीं चला। लेकिन कुछ दिनों बाद मालूम हुआ।

बिहारी उस वक्त बीमार था।

साधारण ज्वर, कोई खास बात नहीं। लेकिन साढ़े निन्यानबे डिग्री से ज्यादा बुखार होते ही बिहारी को होश नहीं रहता। गाना-रोना, हँसना, चीख और चिल्लाहट से वह घर भर के लोगों को परेशान कर देता था।

लच्छो अकेली थी, क्या करे? फिर भी, घर के काम-काज के बावजूद वह नियमानुसार दवा पिला जाती। साबूदाना का कटोरा मुँह से लगा देती, फल काट कर खिला देती। अगर कभी वक्त मिलता तो सिरहाने बैठकर पंखा भी झल देती।

असल में बच्चे बहुत शैतान थे। स्वस्थ अवस्था में तो भी बाप के पास आ-कर बैठते थे, लेकिन जब से बिहारी बीमार पड़ा तब से वहाँ कोई झाँकने को भी न जाता था। इस बात पर लच्छो उन्हें डांटती-फटकारती भी थी हालांकि उससे यह छिपा भी न था कि रोगी के पास शिशु का मन नहीं लगता।

ऐसे ही समय कुछ तबियत सुधरने पर एक दिन उसने लच्छो को बुलाकर कहा—तुम कह रही थीं न लच्छो कि तुम्हारे ममिया ससुर की एक लड़की है। न हो तो वहीं बातचीत करो। वैसे तो मेरी कतई इच्छा न थी, लेकिन इस बीमारी के वक्त औरत न होने से......

लच्छो के चेहरे का सारा खून जैसे क्षण भर में ही कहीं उड़ गया।

बिहारी कहता गया—यह मैं ही जानता हूँ कि रात कैसे कटती है। प्यासा मरने पर भी कोई एक बूँद पानी देने वाला नहीं होता। लड़के ऐसे नालायक हैं कि कोई भी एक बार आकर झांकता तक नहीं।

मैं तुमसे सच कहता हूँ, न तो अब मेरी शादी की उम्र ही है और न इच्छा ही। लेकिन बावजूद इसके, यूं प्यासा और बिना सेवा-सुश्रुषा के तो नहीं मर सकता। रात को एकदम अकेला पड़ा रहता हूँ, यदि मर भी गया तो सुबह से पहले किसी को खबर भी न होगी।'

लच्छो का सारा शरीर थर-थर काँप रहा था। अपने को सँभालने के लिये दरवाजे के एक किवाड़ को कस कर पकड़े हुए वह चुपचाप खड़ी रही।

बिहारी अपने आप ही कहता गया—अब मुझे भी ख्याल आता है कि तुम सब की राय मान कर मैंने अच्छा नहीं किया खैर, जो होना था वह तो हो चुका। अब तुम्हारी जो इच्छा हो करो, मैं कोई बाधा नहीं दूँगा।

लच्छो जबर्दस्ती हँसी और बोली—ये सब तो बाद की बातें हैं भैया। अभी फौरन ही तो तुम्हारी शादी नहीं हो सकती। और बहू आते ही झट से सेवा करने थोड़े ही बैठ जायगी?

अपनी व्यग्रता और अधीरता से खुद ही लज्जित होकर बिहारी बोला—हां हां! मैं भी बाद की ही बात कर रहा हूँ।

लच्छो चुपचाप रसोई में लौट आयी।

उसे अब सब्जी बनाने का कोई उत्साह न रहा।

पर इधर कई महीनों में स्वाधीन और स्वतन्त्र मालिकानापन के इस आनन्द का स्वाद उसे मिला है? उसे किस तरह बचाकर रखा जा सकता है?

अब सरोवर के जल में उतर कर क्या वह फिर उस पुरातन और सड़े हुए नरक-कुंड में लौट जाय?

लच्छो का मुँह गंभीर और कठोर हो गया।

बिहारी ने शादी करने का पक्का इरादा कर लिया है। यह उसे अच्छी तरह जानती है। इसका मतलब है, सिर्फ एकदम अच्छे होने की देर है। फिर, जो सब से निकट का दिन है, उस दिन ही फेरे पड़ जायेंगे।

नव-वधू आयेगी। शायद वह भी लच्छो के साथ माता की भांति व्यवहार करेगी। और क्या मालूम शुरू-शुरू में न भी करे। पर इस अनुग्रह या निग्रह का क्या मतलब है? दोनों ही क्षेत्रों में उसकी अवस्था परिचारिका या आश्रिता।

रिश्तेदार से ज्यादा तो नहीं होगी।

हाय भगवान् यदि लच्छो को बिहारी का रिश्तेदार बनाकर भेजा था, तो और भी निकटतर सम्बन्धी बना कर क्यों नहीं भेजा। तब इस बीमारी में बिहारी की और भी ज्यादा सेवा-शुश्रुषा करना सम्भव होता। रात को उसकी निर्जन रोग शय्या पर एकाकी उपस्थित रहना भी असम्भव न होता!

लेकिन यह क्या!

बिहारी की बड़ी बुआ की जिठानी की लड़की लच्छो है। सगी जिठानी की भी नहीं। बल्कि पति के चचेरे भाई की पत्नी। पति की मृत्यु के बाद वह जिठानी बिहारी की बड़ी बुआ के आश्रय में ही चली आयीं और कुछ दिनों बाद उन्हीं के हाथों आठ वर्ष की लच्छो को सौंप कर स्वर्गवासिनी हुईं। तब से लच्छो का पालन-पोषण उसकी चाची ने ही किया। इस तरह बिहारी से रिश्तेदारी है। वह चाची आज नहीं हैं। सिर्फ लच्छो और बिहारी हैं और है उस टूटे हुए तार को नया कर के जोड़ी हुई रिश्तेदारी। इस पर ही निर्भर कर के बिहारी की रोग-शैय्या पर रात काटी जा सकती है या नहीं—यह संशय का विषय है।

सारे दिन लच्छो न जाने क्या-क्या सोचती रही, जिसका न कोई सिर न पैर।

बच्चों ने भर पेट खाया है या नहीं, यह देखने का भी उसे वक्त नहीं मिला। खाने के वक्त बुआ अचार के लिये चिल्लाते-चिल्लाते थक गयीं। लेकिन उन्हें अचार नहीं मिला। बिहारी को दो बार में ही तीन खुराक दवा पिला दी। और उसने खुद रोटी भी नहीं खाई, ढंक कर चूल्हे में रख दीं।

फिर शाम के वक्त बहुत दिनों बाद उसने अपनी चोटी की। सब की नजर बचाकर चुपचाप साबुन से मुँह भी धोया। रात को बच्चों को खिला-पिला और सुला कर बिहारी के कमरे में आयी।

उसके पैरों की आहट सुनकर आँखें मलते हुए बिहारी ने कहा—लच्छो?

लच्छो जमीन पर अपने लिये शतरञ्जी बिछा रही थी। संक्षेप में बोली—हूँ।

'यहाँ ही सोओगी क्या?'

'हूँ ।'

एक आराम की सांस छोड़कर बिहारी ने कहा—

मैं खुद तुमसे यह नहीं कह पा रहा था लच्छो । लेकिन बुखार की हालत में अकेले सोते हुए मुझे डर लगता है। सपनों में खाली तुम्हारी भाभी ही दिखाई देती है । उसे देख कर डर लगता है । अच्छा किया कि तुम आ गयीं ।

लच्छो ने उसके सर का तकिया ठीक कर दिया और ललाट पर हाथ फेरते हुए बोली—इस वक्त तो बुखार नहीं है । सो जाओ ।

कोमल हाथों के स्पर्श से उसकी आँखें बन्द हो गयीं ।

लच्छो का ठंडा हाथ अपनी आँखों पर रख कर उसने पूछा—क्या बजा है, लच्छो ?

'मालूम नहीं । शायद ग्यारह बज चुके हैं ।'

बिहारी ने और कुछ नहीं कहा । ललाट, मुँह और छाती पर परम आनन्द से उस शीतल हाथ के स्पर्श का सिर्फ उपभोग करने लगा ।

पत्थर की तरह शख्त बनकर लच्छो वहाँ बैठी रही ।

सुबह बच्चों ने उठकर देखा कि बरामदे में एक खम्भे का सहारा लगाये लच्छो नीचा मुँह किये बैठी है । मरे हुए आदमी की तरह उसका मुँह एकदम सफेद है, आँखों की पलकें नहीं गिरतीं और दोनों कोरों में आँसू की दो-चार बूँद जमी हुई हैं ।

सबसे छोटे बच्चे ने कंधा पकड़ कर हिलाते हुए कहा—बुआ, मुझे दूध नहीं दोगी ?

यह पुकार सुनकर लच्छो एकदम चौंक उठी ।

फिर उसे छाती से चिपकाती हुई बोली—चलो ।

—०—

स्व० श्रीमती होमवती

रचनाकाल
२००५ वि०

जन्मकाल — मृत्यु
१६५६ वि० — १६३५ ई०

गोटे की टोपी

‘चाची, लो तुम्हारा पत्र आया है।’ नवल ने एक मैला सा लिफाफा चौके में बैठी चाची की ओर बढ़ा दिया।

‘मेरा पत्र? मेरे पास किसका खत आयेगा भैया? ऐसा फूटा भाग लेकर संसार में आई हूँ कि सभी को निगल गई। मैके में कोई न रहा, अपने सिर-येट को उजाड़ ही चुकी। वहाँ एक भतीजी बची है, यहाँ तुम सब हो, भगवान तुम्हें सुखी रक्खे, मुझसे तो मौत भी दूर भागती है।’ पार्वती को यह सब कहते कहते पति की याद हो ही आई; परन्तु उस चार दिन के शिशु का ध्यान भी आ गया, जो संसार में थोड़े समय के लिये आकर पार्वती की कोख को सूनी कर गया। नवल को इस समय चाची की लम्बी चौड़ी वक्तता तनिक भी न भाई। उसने पत्र को रसोई की परिधि के प्रमाण स्वरूप खींची गई रेखा में रख दिया।

बोला—यह तो तुम्हीं जानोगी जब पढ़ोगी, कि पत्र किसका है? मोहर तो इस पर ‘मणिकगञ्ज’ की पड़ी हुई है, और पता किसी स्त्री के हाथ का लिखा जान पड़ता है, इतना तो मैं बता सकता हूँ।

‘माणिकगञ्ज? वहाँ तो भैया वह गज्जरी ब्याही है, पर उसका तो कभी पहिले ही कोई खत-पत्तर आया हो तो आया हो, इधर दस-बारह बरस से तो मुझे उसका कोई भी समाचार मिला ही नहीं।’ पार्वती की वाणी से उत्कंठा तथा नेत्रों से आश्चर्य प्रकट हो रहा था। नवल चला गया। पृथ्वी पर पड़ा

हुआ वह कागज का टुकड़ा अपने अस्तित्व पर अभी पश्चाताप कर ही रहा था, कि नवल की माँ ने वहाँ आकर उस पर पैर रखते हुए कहा—यह क्या छोटी बहू ? किसका खत आया है ?

'क्या मालूम ? शायद मञ्जरो का आया हो, चौके में से निकलूँ तो देखूंगी और माणिकगञ्ज से किसका आता ?' पार्वती की वाणी में किसी प्रकार का कौतूहल न था।

'तुम्हें कोई चैन से बैठकर दो रोटी न खाने देगा छोटी बहू। और क्या अब तो भूले बिसरे सभी याद कर लेंगे, तब किसी ने भी न पूछी। अच्छा अब जल्दी से चूल्हे पर तवा टेक दो, नवल नहाने गया है, उसके बाबूजी कभी के पूजा भी कर चुके। रोज कहते हैं कचहरी जाने को देर हो जाती है। कहते थे, न हो अच्छी सी कोई मिसरानी ही ढूंढ लो, पर कोई ठीक मिले तभी तो ? नवल को भी कालिज जाने को रोज देर हो जाती है। क्या करूं, मेरी तो काया निगोड़ी भी अपने बूते की न रही ! काया के साथ ही सारे काम हैं......।' इत्यादि कहती हुई गृह-स्वामिनी मालिश का तेल और खाने की दवा की पुड़िया लेकर छत पर धूप में जा बैठी। बेचारी पार्वती को दो बातों का उत्तर दे देने का भी अवसर न मिला, न उसमें वैसा कुछ साहस ही था।

वह मन ही मन सोचती रह गई—यह सब क्या कह गईं ? किसने कब मेरी सुध नहीं ली ? था ही कौन जो बात पूछता ? क्या भतीजी के घर जाकर रहती ? वह मेरी बात पूछती ? राम ! राम......संसार में बहुत सी विधवाएं हैं, तो क्या वह सब लड़के या भतीजा के आश्रय मे रहती होंगी ? पीहर या सुसराल, दो ही जगह रहने की होती हैं। फिर जब वहाँ कोई भी न रहा, तो कहाँ चली जाऊं ?' उसकी आँखों में आँसू भर आये।

नवल ने आकर कहा—रोटी हो गयी न चाची ? किन्तु कोई उत्तर न पाकर उसने देखा, उसकी चाची रो रही है। सामने पड़े हुए पत्र को उठाकर बोला—यह क्या ? तुम रो क्यों रही हो ? खत तो अभी खोला भी नहीं, फिर......फिर।

'कुछ नहीं, रो कहां रही हूँ भैया ? लाओ इस चिट्ठी को चूल्हे में झोंक

दूँ, क्या करूं! चौका छू जायगा, नहीं तो अभी उठकर फाड़ फेंकती। आओ तुम रोटी खा लो, नहीं तो देर हो जायगी। चिट्ठी आले में रख दो और अपने बाबूजी को भी बुला लो।' फिर महरी से कहा—दो आसन बिछाकर थाली व पानी रख दे,' जल्दी और तेजी से फुलके बनाने लगी। आँखों में उमड़ते हुए आँसू आँखों से ही पी डाले। हृदय की ज्वाला शान्त करने के लिये, कदाचित् यही एक साधन है।

(२)

वह दालान में बैठी लौकी संवार रही थी। नवल ने कालिज से आकर कहा—भूख बड़े जोर की लगी है अम्माँ कुछ खाने को है?

'खाने को क्या धरा है? आज छोटी बहू की भतीजी का ख़त आया है, इसी झमेले में कुछ नाश्ता बन ही नहीं पाया। क्या किया जाय? बेचारी इतनी छोटी उमर में ही बिगड़ गई। ६ मास का दुधमुंहा बच्चा छोड़ गया है, उसे कौन देखे सुनेगा? लड़की की उमर तो कोई बहुत होगी तो सोलह साल की होगी बस! क्यों न छोटी बहू?'

'हां और क्या जीजी! बस यही होगी।'

'अच्छा तो अब सोच करने से होगा ही क्या? जैसी राम की इच्छा। न हो नवल के लिये जल्दी से चार चंदिया बना दो दिन भर का भूखा होगा। और हां देखना जगदीश के लिये साबूदाना भी बनाना ही है। दोपहर से उसने कुछ खाया भी नहीं। क्या करें, भगवान् जैसी कुछ डालता है, सब सहनी ही पड़ती है। अब हमारी ही काया नहीं चलती तो क्या डूब मरें? न हो चैत में देवी वर्तों में एक दिन को जाकर बेचारी को देख आना, उन दिनों कोई ऐसा काम भी नहीं रहता, मैं तो उपासी ही रहूँगी, जगदीश के इम्तहान हो जायेंगे तो वह चला ही जाएगा, वह गांव जाने को कह रहे हैं, फिर अगले दिन तुम लौट भी आओगी। साथ में न होगा नवल ही चला जाएगा।'

जिठानी की बातों पर पार्वती ने तो कुछ विशेष ध्यान दिया नहीं, क्योंकि उन्हें तो प्रति दिन सुनते २ ऐसी बातें सुनने का अभ्यास हो चला था। आज चार वर्ष से इन्हीं जिठानी के आश्रय में रहकर तो वैधव्य यातनाएं झेल रही

है। परन्तु नवल कुछ देर तक मां की ओर देखता ही रह गया। फिर कहा 'चाची, तुम कोई मशीन तो हो नहीं, यह भी कर और वह भी कर। जगदीश के लिये (नवल का ममेरा भाई) तो सागूदाना बनाना ज़रूरी है ही, मेरी चिन्ता न करना, मैं भिक्का से चाय बनवाकर पिये लेता हूँ। चंदिया-वंदिया बनाने की ज़रूरत नहीं है बस रात को खाना ही खाऊंगा।'

इसी प्रकार एक सप्ताह और बीत गया, तभी 'माणिकगंज' से एक पत्र और आया उसमें लिखा था:—

माणिकगञ्ज
८. २. ३२

बुआ !

भाग्य तो फूट गया ही, पर तुम भी शायद रूठ गईं ? अब क्या करूं ? अकेली कैसे रहूँ ? न यहां कोई है, न वहां। घर फाड़खाने को आता है। चार दिन से मुन्नू बुखार में पड़ा है, कोई सुध लेने वाला नहीं। यह (बच्चा) न होता तो क्या प्राणों से वैसा कुछ मोह था, पर अब तो मरा भी नहीं जाता। बताओ; कहां जाऊं ? जवाब जल्दी देना, जी घबड़ा रहा है।

अभागी
मञ्जरी

पार्वती ने पत्र पढ़ा, उन्हें चक्कर सा आ गया। न जाने क्या सोच कर, कौन कौन से दिनों की याद करके उनके हृदय से एक गहरी श्वांस निकल पड़ी, वह दीवाल का सहारा लेकर माथा पकड़ कर बैठ गईं।

नवल ने पूछा 'क्या लिखा है चाची ?' बिना कुछ उत्तर दिये पार्वती ने पत्र उसके सामने डाल दिया। चिट्ठी पढ़कर युवक के चेहरे पर अनेक भावों की झलक आई, और चली गयी। क्षण भर बाद बोला—क्या थोड़े दिन के लिये वह यहां नहीं आ सकती ? जब चाचा जी थे तब तो वह छुटपन में कितनी ही बार तुम्हारे पास आई है ?

'हां भैया ! तब की बात और थी। अब तो मुझे ही अपने दिन काटने भारी हो रहे हैं, मैं उसे आज ही लिख दूँगी, न हो 'अकबरपुर' चली जाय। न हो, दो किरायेदार बसा लेगी—उसके खाने भर को आ ही जाएगा, और अकेली भी न रहेगी। पर गांवों में शहरों की नाईं भाड़े पर कौन रहता है भैया ? बड़ी ही तबाही है—क्या करूं ?'

'करती क्या ?' मैं तो तुम्हारी ओर से अभी पत्र लिखे देता हूँ कि न हो किसी को साथ लेकर थोड़े दिन के लिये यहीं आ जाओ।'

'ना नवल, ऐसा न करना भैया ! जान बूझकर अनजान न बन जाओ, बहुत कुछ सुनते-सुनते कलेजा पक गया है—अब और न सहा जायगा। उसका बच्चे का साथ है······ठहरो नवल, सुने तो जाओ······।'

'सो कुछ नहीं चाची।' कहता हुआ युवक तेजी से बाहर निकल गया। पार्वती सोचने लगी—यह अपनी माँ के ऊपर क्यों नहीं हुआ ? कितनी दया माया है इसके मन में ?

परिस्थितियाँ हमें कितना विवश कर देती हैं ?

(२)

मञ्जरी आ गई। बुआ ने उसे छाती से लगाकर आँसू पोंछ डाले। और··· और बुआ की जिठानी ने अपनी धुली हुई धोती को बचाते हुए, दूर से ही उसे बैठ जाने का आदेश किया। मन में सोचा—ऐसा रूप कहाँ समायेगा ?

नवल ने अभागी विधवा के फूल से शिशु को गोद में लेकर ऊपर तक उछाल कर हृदय से चिपटा लिया। फिर उसको प्यार से दुलारते हुए पूछा—भला इसका नाम क्या है······चाची !

'नाम ! नाम अभागे का क्या होता भैया ?'

'ऐसा न कहो मैंने आज से ही इसका नाम प्रवाल रख दिया है। फिर मन ही मन सोचा—कितना सुन्दर शिशु है यह ? बिलकुल ही माँ जैसा ! बालक उसकी गोद में खिलखिला रहा था, और वह एक टक उसे देख रहा था। कुछ देर यही क्रम चलता रहा। गृहिणी ने अचानक मौनता को भङ्ग करते हुए कहा—जा नवल, देख तो तेरे बाबूजी आगये क्या ? घर में बैठा······

बैठा······और हाँ, छोटी बहू, जाओ लड़की के कपड़े वगैरा उतरवाओ खाने पीने का समय हो गया।' गृहस्वामिनी की बात सुनकर सब ऐसे चौंक पड़े मानों भूचाल ही आ गया।

पार्वती, मञ्जरी को घर में ले गई। वहाँ जाकर कहा—'देख बीबी! जीजी का स्वभाव जरा ऐसा ही है, महीना-दो-महीना जब तक भी यहाँ रहो सदा उन्हें प्रसन्न रखने का यत्न करती रहना, ऐसा न हो, मञ्जरी, जो तेरे कारण मुझे नीचा देखना पड़े।' पार्वती की वाणी काँप रही थी।

जब 'नवल' 'प्रवाल' को लेकर बाहर जाने लगा, तब उसकी माँ, 'हरप्यारी' ने चीख कर कहा—हैं—हैं—अरे इसे लेकर न जा······। पराये बच्चे को छूने से डरता भी तो नहीं बाग! जरा में हाथ पैर उतर जाये तो बस।

'पराया? पराया किसका अम्माँ! अब तो यह हमारे घर आ गया सो हमारा ही है।' पुत्र की बात सुनकर माता का मुँह खुला का खुला ही रह गया। नेत्र थोड़े और भी फैल गये। 'नवल' 'प्रवाल' को उछालता हुआ बाहर चला गया। धीरे २ इस घर में आये 'मञ्जरी' को दो मास बीत गये। इतने थोड़े ही समय में इस घर के लिये वह ऐसी हो गई मानो सदा से ही यहाँ से उसका कोई घनिष्ट नाता है। चूल्हे-चौके के काम से लेकर घर की सफाई तक की देखभाल अब उसे ही करनी पड़ती है। यहां तक की दो चार बार मना करने के उपरान्त, बड़ी बुआ अब मञ्जरी से ही तेल की मालिश कराना अधिक पसन्द करती हैं।

बदन तो आज तक उनका वैसा किसी ने दबाया तक नहीं, जैसा 'मञ्जरी' को दबाना आता है और शायद इसी सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन एक फेरी वाले बजाज से उन्होंने 'मञ्जरी' के बच्चे के लिये बहुत विरोध करने पर भी दो कुर्तों की जापानी छींट खरीद ही डाली। इतना ही नहीं, धोबी की धुलाई तथा ग्वाले के दूध का हिसाब भी उसे ही जोड़ना पड़ता है। शाम को बिस्तरे तक बिछवाना उसी के जिम्मे आ पड़ा है। यद्यपि मञ्जरी को वैसा तो कोई अधिकार किसी ने दे नहीं रक्खा है, फिर भी महरी से लेकर घर की महतरानी तक का हुक्म उसे सुनना पड़ ही जाता है।

नवल के पिता को न तो और किसी का बनाया अब खाना ही पसन्द आता

है, और न भिखारी की पीसी हुई ठंडाई में ही अब मजा आता है। नवल के मन की वही जाने, वह किसी पर कोई बात कभी प्रकट करता ही नहीं। हाँ पहले से कुछ अधिक चुस्त, फुर्तीला और कर्तव्य-निष्ठ अवश्य दीख पड़ता है। पहले घर में किसी वस्तु की आवश्यकता होती तो वह दो-दो दिन तक यूं ही टाल देता; परन्तु अब ऐसा नहीं होता। पहले तो थोड़े बहुत प्रबन्ध की चिन्ता पिता को भी अपने माथे लेनी पड़ती ही थी किन्तु अब नवल ने उन्हें छुट्टी सी दे दी है। पहले वह कितनी ही बातों को पढ़ने के बहाने या अवकाश न मिलने के कारण यूँ ही टाल देता था; परन्तु अब ऐसा नहीं करता।

कालिज से आकर नवल ने भिक्खा से कहा—यदि इसी प्रकार आप रोज ही बिना कहे मेरे कमरे की सफाई कर दिया करें, तो मुझे बेकार बकझक करने से छुट्टी मिल जाये।

भिखारी मालिक के मुँह की ओर देखकर चुपचाप सर खुजाने लगा। नवल ने फिर कहा—बोलो, स्वीकार है न मेरी प्रार्थना?

अब की मालिक के शब्दों में कुछ तीव्रता सी थी। वह घबड़ा कर बोला 'भैया! बाबू हम तो नाहिन······कुछ नहीं कीन्ह रहांय? ई सब उहै···कीन्ह रहांय······उहै।'

'उहै-उहै क्या बकता है? साफ-साफ क्यों नहीं कहता?' नवल ने हँसी रोक कर कहा।

'उहै सरकार जौन बीवी जो आइन रहांय कि नाहीं?'

'अच्छा जाओ, चाय तैयार करो, तुम बड़े आराम-पसन्द हुए जा रहे हो।'

नवल सोचने लगा 'मञ्जरी···उसी ने किया है यह सब? इतनी सुघराई और सफाई से? वह इतनी निकट क्यों होती जाती है? और मुन्नू कितना प्यारा लगता है? चलूँ देखूँ 'प्रवाल' सो रहा है या जाग रहा है?' घर में आकर देखा, आंगन में पड़ी हुई चारपाई के ऊपर साकार शैशव हाथ-पांव फेंक रहा है। नवल ने उसे गोदी में उठाते हुए कहा—अम्मां देखो, हमारा प्रवाल कैसा भाग्यवान है? आज मालूम हुआ कि बाबू जी की तनख्वाह में पूरे ५०) रु० बढ़ गये, अब मिलेंगे पूरे चार सौ।

माँ ने तो इस बात पर कोई उत्तर दिया नहीं, किन्तु चाची कह उठीं—अरे भैया ! भाग्यवान होता तो क्या होते ही···।

'छिः छिः । ऐसी बात न कहो चाची ?' अब की गृहिणी भी बोल उठीं—ठीक तो कहती हो छोटी बहू ! होते ही तो बाप को डस गया ।' नवल ने तीव्र दृष्टि माँ पर डाल कर मन में कहा—यह कितनी निष्ठुर हैं सब ।' और फिर माँ की ओर देखता हुआ बाहर चला गया । देख गया 'मञ्जरी' चाय का पानी छान रही है । बिल्कुल तल्लीन होकर, मानों यह बात उसने सुनी ही नहीं··· । हृदय के दुखते हुए छाले वाक्य बाणों से बिंध कर कसक ही उठते हैं ।

(४)

आज एकादशी का दिन था । छोटी बहू पार्वती तो निर्जल व्रत रखती ही थीं; बड़ी बहू हरप्यारी आज के दिन कच्ची रसोई नहीं जीमती थीं । यद्यपि सुहागिन होने के कारण वह व्रत नहीं रखती थीं ।

मञ्जरी ने बड़े आग्रह से पार्वती से कहा—बुआ, आज मैं ही रसोई बनाए लेती हूँ, आप लोग तो आज रसोई जीमेंगी ही नहीं ?

पार्वती कुछ सम्मति दें, इससे पहिले ही गृहिणी ने विरोध करते हुए कहा—मैं और तुम्हारी बुआ नहीं खाएंगी तो क्या हुआ मञ्जरी । तनिक सोच समझकर तो बात कहा करो । वह क्या (नवल के पिता) तुम्हारी बनाई रोटी खा सकेंगे ? तुम्हारा बच्चे का साथ है । इस घर के मर्द क्या क्या छुई—भिड़ी धोती से बनाई गई रोटी खाना पसन्द थोड़े ही करते हैं ।

'लेकिन बड़ी बुआ, मैं तो इसी से कहती थी कि बुआ आज उपासी हैं, मैं ही रसोई बना लेती । वैसे लल्ला को अभी तक तो मैंने छुआ नहीं है ।'

'सो क्या हुआ ? आखिर धोती कैसे अछूती रह सकती है जब तक इस पर पूरा ध्यान न दिया जाय ।'

नवल ने अपने कमरे के दरवाजे पर खड़े होकर कहा—क्यों अम्मा ! धोती में छूत कहाँ से घुस गई ? मैं तुम से पचास बार छू जाऊँ ! तुम मुझे तो कभी रोकती नहीं ।

'मर्दों का क्या विचार गिना थोड़े ही जाता है बेटा ! तू इन बातों को क्या समझे ।'

मां की बात का उत्तर देने के बदले नवल ने अपनी धुली धोती लाकर आंगन में पड़ी हुई चौकी के ऊपर डालते हुए कहा—लो, यह धोती !

मञ्जरी ने आज पहली बार ही नवल को सिर से पांव तक एक छिपी हुई दृष्टि से देखा और फिर वह न जाने क्या सोच कर कमरे में भाग गई ।

हरप्यारी मानो आकाश से गिर पड़ी, वाणी को थोड़ा तीव्र करके बोलीं—राम राम भैया ! घोर कलियुग आ गया, लाज शर्म का तो नाम ही नहीं रहा । मर्द की धोती पहनने में क्या लज्जा न आयेगी ?

गृहस्वामिनी की बात सुनकर अभागी विधवा खड़ी की खड़ी ही रह गई, उसने क्या कभी नवल की धोती पहनने का मन में विचार तक भी किया है ? कमरे में से ही केवल इतना कहा—बुआ, केवल लाकर डाल देने से ही तो धोती नहीं पहन ली गई । मेरी धोती सूखी नहीं तो क्या गीली ही पहन कर रोटी बनाने भर से मर थोड़े हो जाऊँगी ।

'चुप रह मञ्जरी, अधिक जबान न चला, रोटी मैं ही बनाऊंगी ।' कहकर पार्वती चौके में आ बैठी । नवल सब कुछ सुनता हुआ आज बिना खाये ही कालिज चला गया ! मां ने थोड़ा क्रोध दिखलाया, चाची ने सोचा—भूखा तो रह चुका, किसी मित्र के यहां खा लेगा, पर मंजरी···उसके मन की वही जाने । आज उसने भी भय के कारण केवल नाम मात्र को ही खाया, बार-बार उसके मन में एक ही बात उठने लगी—वह यहाँ क्यों आई ?

जब रात को नवल घर में आया तो उसका मन बहुत ही अशान्त और दुखी सा था । मित्रों के विशेष आग्रह करने पर आज वह सिनेमा देखने चला ही गया, खेल था देवदास । पार्वती का प्रेम, उसकी मूक भाषा तथा चुभते हुए भाव और पत्नों के विवश जीवन का प्रभाव नवल के हृदय में रेखाएं सी खींच गया । देवदास की दुर्दशा देखकर तो उसकी आँखें रोते-रोते लाल हो गई थीं । मित्रों ने न जाने कितना मजाक उड़ाया, फिर भी वह अपने को रोक न सका ।

गिरता-पड़ता घर आकर वह अपने कमरे में पड़ी हुई आराम कुर्सी पर लेट-

कर न जाने क्या-क्या सोचता रहा। अचानक कैंची के गिरने की-सी आवाज से वह चौंक उठा। देखा, मञ्जरी बहुत से कपड़ों का ढेर लगाए, ठीक उसके कपड़ों की आलमारी के सामने बैठी कुछ सी रही है। नवल एकदम कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया, कौतूहल का कुछ पारावार न था। 'इतनी रात को···मेरे कपड़े ठीक कर रही है! अकेली मेरे कमरे में! अम्मां क्या कहती होंगी? चाची ही क्या कहेंगी? मंजरी को मेरी इतनी चिन्ता क्यों है? वास्तव में मेरी वह कौन है?' इत्यादि बातों ने नवल के मस्तिष्क में हलचल सी मचा दी। जो कुछ वह अभी देखकर आ रहा था, हृदय को उद्वेलित करने के लिये वह सब कुछ क्या कम था?

वह धीरे-धीरे बाहर चला आया। बरामदे में आकर, बड़े साहस से मां को आवाज दी, चाची को पुकारा—'मुझे दूध दे जाओ।' आज उसकी हिम्मत मंजरी से दूध मांगने की न हुई।

मां ने कहा—आज मेरे पैरों में बड़ा दर्द है।

चाची ने उत्तर दिया—आई भैया! देख तो मंजरी इसी आखरे में वहीं कहीं बैठी होगी। मन्नू को अकेला कैसे छोड़ आऊँ?

नवल की आवाज सुनकर मंजरी का ध्यान टूट गया। जल्दी-जल्दी कपड़े को यथा स्थान यूं ही सरका कर वह बाहर निकल आई। नवल ठगा हुआ सा यह सब देख रहा था। पर मंजरी के हृदय में न कोई भाव ही दीख पड़ता था और न नेत्रों में कोई कौतूहल ही नाच रहा था। जल्दी से चौके में गई और दूध का गिलास भर लाई। बुआ ने उसके हाथ से दूध का गिलास लेकर कहा—जा लल्ला अकेला है, मैं दूध दे आऊँ।

रात को नवल बहुत देर तक जागता रहा, नींद आती ही न थी। एक के बाद एक-एक करके उसके मस्तिष्क में विचार आने जाने लगे। नवल को उस दिन की बात भी याद हो आई, जब वह दालान में खड़ा अपनी कमीज में बटन टांक रहा था। मंजरी देखती हुई उसके सामने से निकल गई, परन्तु यह नहीं कहा कि 'तुम्हें क्या बटन टांकना आयेगा, या कालेज को देर हो जायेगी, लाओ मैं ही लगा दूं' नवल ने उस दिन मन ही मन कहा था—किरानी अभिमा-

निनी लड़की है ? पर आज उसके हृदय से वह भाव कितनी जल्दी लुप्त होकर केवल थोड़ा सा पश्चाताप छोड़ गया। यह स्वयं नवल भी ठीक-ठीक न समझ सका। धीरे-धीरे कई मास बीत गये। अब मंजरी की प्रत्येक गति विधी का ध्यान बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से किया जाने लगा।

वैसे तो वह घर का प्रत्येक कार्य बड़े उत्साह और सुचारुता से करती ही थी, किन्तु जो कुछ और जितने भी कार्य, वह नवल से सम्बन्ध रखने वाले करती, उन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। और कोई तो पीछे ही रहा, सबसे पहिले तो उसकी बुआ ही बहुत सतर्क रहने लगीं। पर जब उन्होंने देखा कि स्वयं नवल ही अब बड़ी झिझक और संकोच के साथ घर में आता है, और मंजरी तो कभी उसकी ओर आँख उठाकर देखती भी नहीं, तब उन्हें सन्तोष-सा हो गया। कारण न मिलने से संशय का क्रम आप ही मंद पड़ता गया। अब नवल ने प्रवाल को भी अधिक खिलाना कम कर दिया था। सब ने सोचा—उसकी पढाई के दिन हैं। मन ही मन में ये बातें उठीं, और. पनपने से पहिले ही मन में दब गईं।

मंजरी ने यह भूल जाना चाहा था कि यह दूसरे का घर है, कुछ सफल भी हुई, परन्तु अब न जाने क्यों उसे अपने घर की याद आने लगी। उन टूटे-फूटे खण्डहरों में एक प्रकार की स्वच्छन्दता, एक प्रकार का सन्तोष निहित था। किन्तु इस इतने बड़े पक्के मकान में एक प्रकार की जलन, एक प्रकार का अपमान और कटुता का आभास अब मंजरी के अनुभव में आने लगा। एक दिन बुआ से उसने कहा—बरसात ऊपर से आ रही है, दोनों ही जगह के मकानों की कच्ची छतें हैं, उन्हें तो देखना ही चाहिये न ? दूसरे घर की और भी बहुत सी चीजें बर्बाद हो रही होंगी।

पार्वती उसके इस विचार से सहमत होकर बोली—हां! आखिर घर से तो सदा काम रहेगा, घर उजाड़ देने से कैसे बनेगा बेटी ? न हो थोड़े दिन के लिये चली ही जाओ, यहाँ ऐसे कब तक बीतेगी ?

'लेकिन मैं अकेली ही उस घर में क्यों कर पैर रक्खूंगी बुआ ? क्या तुम तो चार दिन के लिये भी नहीं चल सकतीं ?'

कर न जाने क्या-क्या सोचता रहा। अचानक कैंची के गिरने की-सी आवाज से वह चौंक उठा। देखा, मञ्जरी बहुत से कपड़ों का ढेर लगाए, ठीक उसके कपड़ों की आलमारी के सामने बैठी कुछ सी रही है। नवल एकदम कुर्सी से उठकर खड़ा हो गया, कौतूहल का कुछ पारावार न था। 'इतनी रात को···मेरे कपड़े ठीक कर रही है? अकेली मेरे कमरे में! अम्मां क्या कहती होंगी? चाची ही क्या कहेंगी? मंजरी को मेरी इतनी चिन्ता क्यों है? वास्तव में मेरी वह कौन है?' इत्यादि बातों ने नवल के मस्तिष्क में हलचल सी मचा दी। जो कुछ वह अभी देखकर आ रहा था, हृदय को उद्वेलित करने के लिये वह सब कुछ क्या कम था?

वह धीरे-धीरे बाहर चला आया। बरामदे में आकर, बड़े साहस से मां को आवाज दी, चाची को पुकारा—'मुझे दूध दे जाओ।' आज उसकी हिम्मत मंजरी से दूध मांगने की न हुई।

मां ने कहा—आज मेरे पैरों में बड़ा दर्द है।

चाची ने उत्तर दिया—आई भैया! देख तो मंजरी इसी आसरे में कहीं कहीं बैठी होगी। मन्नू को अकेला कैसे छोड़ आऊँ?

नवल की आवाज सुनकर मंजरी का ध्यान टूट गया। जल्दी-जल्दी कपड़े को यथा स्थान यूं ही सरका कर वह बाहर निकल आई। नवल ठगा हुआ सा यह सब देख रहा था। पर मंजरी के हृदय में न कोई भाव ही दीख पड़ता था और न नेत्रों में कोई कौतूहल ही नाच रहा था। जल्दी से चौके में गई और दूध का गिलास भर लाई। बुआ ने उसके हाथ से दूध का गिलास लेकर कहा—जा लल्ला अकेला है, मैं दूध दे आऊँ।

रात को नवल बहुत देर तक जागता रहा, नींद आती ही न थी। एक के बाद एक-एक करके उसके मस्तिष्क में विचार आने जाने लगे। नवल को उस दिन की बात भी याद हो आई, जब वह दालान में खड़ा अपनी कमीज में बटन टांक रहा था। मंजरी देखती हुई उसके सामने से निकल गई, परन्तु यह नहीं कहा कि 'तुम्हें क्या बटन टांकना आयेगा, या कालेज को देर हो जायेगी, लाओ मैं ही लगा दूं' नवल ने उस दिन मन ही मन कहा था—कितनी अभिमा-

निनी लड़की है ? पर आज उसके हृदय से वह भाव कितनी जल्दी लुप्त होकर केवल थोड़ा सा पश्चाताप छोड़ गया। यह स्वयं नवल भी ठीक-ठीक न समझ सका। धीरे-धीरे कई मास बीत गये। अब मंजरी की प्रत्येक गति विधी का ध्यान बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से किया जाने लगा।

वैसे तो वह घर का प्रत्येक कार्य बड़े उत्साह और सुचारुता से करती ही थी, किन्तु जो कुछ और जितने भी कार्य, वह नवल से सम्बन्ध रखने वाले करती, उन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। और कोई तो पीछे ही रहा, सबसे पहिले तो उसकी बुआ ही बहुत सतर्क रहने लगीं। पर जब उन्होंने देखा कि स्वयं नवल ही अब बड़ी झिझक और संकोच के साथ घर में आता है, और मंजरी तो कभी उसकी ओर आँख उठाकर देखती भी नहीं, तब उन्हें सन्तोष-सा हो गया। कारण न मिलने से संशय का क्रम आप ही मंद पड़ता गया। अब नवल ने प्रवाल को भी अधिक खिलाना कम कर दिया था। सब ने सोचा—उसकी पढ़ाई के दिन हैं। मन ही मन में ये बातें उठीं, और पनपने से पहिले ही मन में दब गईं।

मंजरी ने यह भूल जाना चाहा था कि यह दूसरे का घर है, कुछ सफल भी हुई, परन्तु अब न जाने क्यों उसे अपने घर की याद आने लगी। उन टूटे-फूटे खण्डहरों में एक प्रकार की स्वच्छन्दता, एक प्रकार का सन्तोष निहित था। किन्तु इस इतने बड़े पक्के मकान में एक प्रकार की जलन, एक प्रकार का अपमान और कटुता का आभास अब मंजरी के अनुभव में आने लगा। एक दिन बुआ से उसने कहा—बरसात ऊपर से आ रही है, दोनों ही जगह के मकानों की कच्ची छतें हैं, उन्हें तो देखना ही चाहिये न ? दूसरे घर की और भी बहुत सी चीजें बर्बाद हो रही होंगी।

पार्वती उसके इस विचार से सहमत होकर बोली—हां ! आखिर घर से तो सदा काम रहेगा, घर उजाड़ देने से कैसे बनेगा बेटी ? न हो थोड़े दिन के लिये चली ही जाओ, यहाँ ऐसे कब तक बीतेगी ?

'लेकिन मैं अकेली ही उस घर में क्यों कर पैर रक्खूंगी बुआ ? क्या तुम तो चार दिन के लिये भी नहीं चल सकतीं ?'

'तू देखती नहीं मंजरी, मैं कितनी विवश और पराधीन हूँ। बड़ी जी से तो कुछ होता ही नहीं, और जब से तू आई है, तब से तो वह अपने शरीर का भी कुछ नहीं कर पातीं। देख अकबरपुर में मेरी मौसी की लड़की है, न हो तू उसे थोड़े दिन के लिये साथ रख लेना, मैं खत लिख दूँगी, वह तेरा सारा काम करवा देगी, फिर कोई बूढ़ी-ठेरी औरत मिल जाने पर अपने पास डाल लीजियो, जिन्दगी के दिन तो किसी प्रकार काटने ही पड़ेंगे लाड़ो! देख आ सकी तो दो चार दिन के लिये मैं भी आ जाऊँगी। कहते-कहते पार्वती की आंखों में आंसू भर आये, मंजरी भी रो पड़ी।

शाम को नवल कालेज से आया तो उसके सामने यह प्रस्ताव रक्खा गया कि वह जगदीश के साथ मंजरी को भेजने का प्रबन्ध कर दे। किन्तु नवल ने क्षण भर सोचने के बाद कहा—उसके साथ तो मैं हरगिज भी किसी का आना जाना पसन्द न करूँगा चाची, वह बड़ी खराब आदत का लड़का है। दूसरे जाने की ऐसी जल्दी भी क्या है? वहाँ अकेले रहना क्या ठीक होगा? प्रवाल को ही तब कौन देखे सुनेगा?

भतीजे की बात सुनकर चाची अचम्भे में आ गईं, और तो कुछ नहीं कहा, बस इतना ही कहा—नवल, जान पड़ता है कि अपनी स्त्री से भी अधिक तू बच्चों की विशेष चिन्ता किया करेगा। प्रवाल को कौन देखे सुनेगा भैया! उसे देखने सुनने वाला ही न रहा।

युवक कुछ झेंप कर बाहर चला गया। दो दिन बाद पार्वती ने जगदीश के साथ मञ्जरी को भेजने का आयोजन कर ही दिया। नवल स्टेशन पर मञ्जरी को पहुँचाने गया तो उसने केवल उससे यही कहा कि—प्रवाल को अच्छी तरह से रखना, आगे वह कुछ न कह सका। जगदीश टिकट लेकर लौटा तो नवल ने उसे मर्दानी गाड़ी में समान रखा कर बैठ जाने का आदेश करके, गाड़ी आने पर मञ्जरी को जनाने दर्जे में चढ़ा देने का विचार किया, किन्तु जगदीश को यह रुचा नहीं, मन में आया कि कह दूँ—तुम कौन? यह अधिकार तो मुझे ही मिलना चाहिये, मैं जी चाहे जैसे और जहां बैठा हूँ...मैं पहुँचाने जा रहा हूँ और तुम स्टेशन पर भी केवल अपनी ही इच्छा से चले आये।' परन्तु यह सब

केवल सोचने भर की बातें थीं, ट्रेन आने पर वही हुआ जो कुछ नवल ने चाहा था। उसकी बात टुलखने की हिम्मत जगदीश में तो क्या, बहुतों में न थी। नवल ने गार्ड से कुछ कहा—जिसके उत्तर में वह बोला—'आप चिन्ता न करें बाबू''''आपके घर के लोग अच्छी तरह उतार दिये जायेंगे।' और फिर वह मुस्करा के हल्के छींटे डालता हुआ चला गया। नवल के चेहरे पर हल्की लाली दौड़ गई, और मञ्जरी ने अपना सर घुटनों में डाल लिया। इञ्जिन ने सीटी दी तो नवल प्रवाल का मुख चूम कर तेजी से स्टेशन के बाहर चला गया। मञ्जरी ने केवल एक ही बार दृष्टि उठा कर देखा था कि उस सहृदय युवक की पलकें गीली हो गई थीं।

जगदीश जब कुलियों को पैसे दे चुका, तो खिड़की से मुंह निकाल मञ्जरी की ओर देख कर बोला—'जिस चीज की जरूरत हो बता देना, मैं बराबर में ही बैठा हूँ!' और फिर मन ही मन सोचने लगा—नवल कितनी दृढ़ता से मुझे आज ही शाम को लौट आने की आज्ञा दे गया?

गाड़ी धक् धक् करती हुई हवा से बाजी लेने लगी। मञ्जरी ने आंचल के छोर से अपने नेत्र मल डाले। पास ही बैठी हुई दूसरी महिला ने पूछा—'क्या यह तुम्हारे''''''। पर बात पूरी न सुनने के विचार से मञ्जरी ने अपना मुंह दूसरी ओर फेर लिया—मानों वह कुछ सुनना ही नहीं चाहती। प्रवाल अब भी हाथ-पैर पटक रहा था।

(५)

क्रमशः डेढ़ वर्ष बीत गया। जो दुःख से घबरा उठे थे; उन्होंने अपने हृदय को सब सहने योग्य बना लिया था, और जो सुखी थे उनकी कल्पना में दुखियों के दुःख पर विचार करने की गुञ्जाइश ही न थी। नवल साल भर वकालत कर लेने के पश्चात् अब मुंसिफी की परिक्षा में बैठने की तैयारी कर रहा था। पार्वती गृह कार्यों से छुट्टी पाकर अपना अधिकांश समय पूजा-पाठ की ओर अधिक लगाने लगी, और हरप्यारी बेटे के विवाह की चिन्ता में रत रहने लगी। किन्तु न तो नवल को कोई कन्या ही पसन्द आती थी, और न वह अभी नौकरी मिलने से पहिले विवाह ही करना चाहता था। [illegible] बन कर ही शादी

करेगा, यही उसका निश्चय था।

नवरात्री के दिन आ गये। गांव से जगदीश के पिता अथवा नवल के मामा, मामी सपरिवार रामलीला देखने के लिये बहिन के घर सीतापुर ही आये हुए हैं। नवल की मां ने शाहाबाद से अपनी भानजी और भतीजी उमा को भी बुला रक्खा है, अपने दो छोटे बच्चों के साथ वह भी बुआ के घर आई हुई है। मञ्जरी को शायद इस घर के सभी लोग भूल से गये, क्यों कि जब से गई है, उस का कभी कोई ज़िक्र ही नहीं आया।

खाना खाते समय नवल ने चाची से कहा—न हो थोड़े दिन के लिये चाची प्रवाल को भी बुला लो। दो चार दिन रह कर मेला ही देख जायेगा, बहुत दिन हो गये, उसे देखने को मन कर रहा है। अब तो न जाने कैसा लगता होगा? शायद कुछ-कुछ चलने भी लगा हो। क्यों चाची? अब तो वह उमा जीजी की छोटी मुन्नी के बराबर हो गया होगा?

'हां भैया! मञ्जरी का खत आया तो था, लिखा था कि थोड़ा-थोड़ा बोलने भी लगा है, खूब तमाशा करता है, अब तो वह चलने लगा है। पर बुलाऊं कैसे नवल? तुम तो सब जानते हो, जीजा ने जब वह चली गई थी तब कहा था—मेरे घर में किसी की रांड़ विधवा सयानी लड़की का कब तक गुजर होता, छोटी बहू? यह तुम ने अच्छा ही किया जो उसे भेज दिया।

'लेकिन चाची अब तो मैं भी नौकर हो जाऊंगा, तब क्या मैं अकेला ही परदेश में रहूँगा? तुम मेरे साथ न चलोगी? अम्मां के बस का तो कुछ है नहीं चाची, तुम्हीं को चलना होगा, तब तुम किसी को भी बुला कर रख सकोगी।'

'खैर तब जैसा कुछ होगा देखा जायगा। तुम्हारे पास तब दुलहिन रहेगी नवल! मेरा रहास कहां हो सकता है भैया? और न मुझे कोई यहां से कभी निकलने ही देगा। यहीं के धन्धों से फुर्सत नहीं मिलती, जीजी के बस का तो अब पानी भी लेकर पी लेना नहीं रहा।'

'और जो मैं बिवाह ही न करूंगा तब?'

'हुश······तू अपनी मां का इकलौता बेटा है चंदा! फिर मेरे ही कौन

बैठा है ? दो घर का दिया तेरे ही वंश से तो जलता रहेगा मुन्ना !'

'यह सब कुछ नहीं चाची, जिसे अपना मान लिया वही अपना है। संसार में आकर कुछ दूसरों के दुःख को बटाना भी मनुष्य का कर्तव्य है! मुझे वैसा कुछ शादी-वादी का ढोंग नहीं सुहाता, अपने सुख में ही डूबे रहना क्या कोई जीवन है ? महात्मा जी ने एक बार कहा था कि—दीन और अनाथ तथा विधवाओं की रक्षा का भार आजकल के पढ़े-लिखे नवयुवकों को अपने ऊपर लेना ही चाहिये, तभी जाति और समाज का उद्धार होगा।

'यह आज तू कैसी बातें कर रहा है नवल ?' पार्वती ने उसकी बात काट कर कहा। इसी समय उमा अपने बच्चे को गोद में लिये आई, बोली—दूध दे दो बुवा ! लल्ला कब का भूखा रो रहा है ?

'देती हूँ।' कह कर वह दूध ठंडा करने चली गई। नवल ने कहा—क्या तुम्हारे हाथ नहीं रहे उमा जीजी ? चाची रात दिन काम करते मरी जा रही हैं !' फिर कुल्ला करके मां के पास जा बैठा। धीरे-धीरे उनके पांव दबाते-दबाते बोला—अम्मा ! आज कल काम बहुत बढ़ रहा है; मिसरानी वगैरा तुम्हें कोई जंचती नहीं, न हो थोड़े दिन के लिये मञ्जरी को बुला लो। जब यह सब लोग चले जायेंगे तब उसे भी भेज देना। बहुत दिन से उसका कोई समाचार भी नहीं मिला। इधर तुम्हारी सेवा भी वैसी कुछ ठीक नहीं हो पाती।

हरप्यारी आंखें फैलाये पुत्र की ओर देखती रही। नवल ने कहा—हां, बस यही ठीक है, मैं इसका प्रबन्ध किये देता हूँ। मुझसे तुम्हारा दुःख नहीं देखा जाता।

'सो तो ठीक है नवल ! पर तुझे उस लड़की की इतनी चिन्ता क्यों है ? उसका ब्यौरा जाने बिना क्या रोटी न पचेगी ?'

'नहीं अम्मा यह बात नहीं है, लेकिन मनुष्य की चिन्ता करना मनुष्य का कर्त्तव्य है न ? मैं उसी की बात कह रहा था।' और फिर वह उठ कर चल दिया।

हरप्यारी कहती रह गयीं—अरे सुन, ठहर तो नवल !

'मुझे जरा काम है अम्मा, आया।' कहता हुआ वह चला ही गया।

पार्वती के आने पर, हरप्यारी कहने लगी—आज लड़के को क्या पढ़ा दिया? न हो दो चार नौकर दासी और लगालो।

पार्वती की समझ में खाक न आया। वह अवाक् होकर जिठानी का मुंह ताकती ही रह गयीं। अचानक हुए वज्रपात के विषय में कोई क्या अनुमान लगावे?

(६)

दशहरे का दिन आ गया। घर के सभी बालक रामलीला जाने की खुशी में फूले न समाते थे। 'अहा जी, आज तो रावण फुकेगा······हम तो तीर कमान लायेंगे।' एक दूसरे बच्चे ने चीख कर कहा—और मैं गुब्बारा!

इसी समय उमा की मुन्नी ने अपने सिर की टोपी की ओर इशारा करके कहा, 'देखो जी! अहा! हमारी टोपी, नई चमकनी, गोटे की।' इत्यादि कह कर वह पल भर में वहीं पहुँन्च गई, जहां दीवार के सहारे प्रवाल खड़ा-खड़ा निभाना सा सब की ओर देख-देख कर आंखें झुका लेता था।

मुन्नी अपनी टोपी दिखा कर प्रवाल के सिर में एक हल्की सी चपत लगा कर अपनी नानी के पास भाग गई। इस ओर किसी का भी ध्यान न था। बच्चों के शोर-गुल से कानों के पर्दे फटे जाते थे।

मञ्जरी जल्दी जल्दी पूरियां बेल रही थी, और पार्वती उतारती जाती थीं। नवल ने रसोई की चौखट पर खड़े होकर कहा—क्या प्रवाल मेला देखने नहीं जायगा चाची? उसे तो अभी कपड़े भी नहीं पहनाये गये। क्या ऐन जाने के वक्त ही इसे तैयार किया जायगा? उठो सुनती हो या नहीं?

पर दोनों में से एक भी उसकी बात का उत्तर नहीं दिया। नवल जानता था कि इधर कुछ दिनों से चाची मुझ से नाराज-सी रहती हैं। मञ्जरी में इतना साहस ही कहां था?

अब की उसने कुछ लापरवाही से कहा—ठीक है, अच्छा लो हम भी नहीं जाते।

यह सुन कर पार्वती झल्ला उठीं—क्या और कोई नया काण्ड रचने की मर्जी है नवल! मुझे इस घर में अब रहना भी भारी हो उठा है, तुम क्यों न जाओगे? प्रवाल को मैं नहीं भेजूंगी, उस पर मेरा अधिकार है।

बुआ की पिछली बात सुन कर चाहे नवल इतना विस्मित न हुआ हो जितनी

मञ्जरी। वह स्तम्भित होकर उनका मुंह देखने लगी। इच्छा हुई कि एक बार आंगन की ओर मुंह फेर कर देख ले कि वह गये या हैं? पर साहस न हुआ।

इसी समय दालान की ओर से बड़ा शोर-गुल सुन पड़ा, मानों एक साथ कई कंठों से निकली हुए तीव्र ध्वनि किसी आने वाली विपत्ति की सूचना दे रही है। अरे ले बस कमबख्त मुन्नी के बाल खींच कर, टोपी छीन कर भाग गया न, बड़ा शौकीन बना है। होते ही तो बाप को खा गया,......अब कौन लाकर उढ़ावे, पहनावे। मां भी खूब है भई, अपने बच्चे को जरा भी डांट डपट कर नहीं रखती। चार दिन शहर में रहकर निगोड़े को दिन ही लग गए।' इत्यादि कर्णकटु शब्दों की बौछार से मञ्जरी का हृदय फटने लगा।

पार्वती ने उधर कान लगाए, मंजरी बेलन फेंक कर भागी, और नवल आग्नेय दृष्टि से उमा को निगलता हुआ पल भर में प्रवाल के पास जा पहुँचा। टोपी छीन कर दूर नाली पर फेंक दी और प्रवाल को उठाकर गोद में ले लिया। मंजरी वहीं खड़ी रह गई। आंखों में आंसू थे और होठों पर थी एक मन्द मुस्कान। क्षण में यह सब हो गया। उमा का भारी चेहरा फूल कर कुप्पा बन गया। हरप्यारी की भवें तन गईं तथा नवल की मामी के बत्तीसों दांत किटकिटाने लगे।

पल भर पश्चात् नवल की मां ने गर्ज कर कहा—तुम मेरे घर का सत्यानाश करने पर क्यों तुल गई छोटी बहू? कहो तो काला मुंह करके मैं कहीं निकल जाऊं?

'नहीं अम्मां! तुम्हें तो कहीं भी जाना न होगा, मैं ही अपना काला मुंह करके निकल जाने की बात सोच रहा हूँ। फिर सब झगड़ा ही मिट जायेगा...... मेरे ही कारण तो यह सब हो रहा है न?'

'यह कुछ नहीं करना होगा भैया नवल! और जीजी!! तुम सब शान्त हो जाओ। मैं कल दिन निकलने से पहिले ही इन दोनों अभागों को यहाँ से निकाल दूँगी। यह कलमुंहा क्या जाने कि जिसके बाप होता है वह गोटे की टोपी ओढ़ सकता है।' फिर मञ्जरी की ओर घूम कर पार्वती ने कहा—जा डायन! अपना सामान ठीक करले, फिर मुझे कभी अपना मुंह न दिखाना।

मञ्जरी को उस समय कुछ न सूझ रहा था। वह मूर्छित सी होकर, धम्म से नवल के कमरे की चौखट पर जा गिरी। कनपटी से फूटकर रक्त की धारा बह चली। युवक ने प्रवाल को लिये ही लिये, युवती को खींच कर अन्दर करके कमरे के किवाड़ बन्द कर दिये किन्तु उसे कुछ भी पता न था। ज्ञान शक्ति हमारी वेदना को और भी तड़पा देती है, और शायद बेहोशी उसके दर्द को कम करने का यत्न करने लगती है।

(७)

शरद् पूर्णिमा का दिन था। प्रकृति चन्द्रमा की चांदनी में मल-मल कर स्नान कर रही थी, और तारिकाएँ उसकी मांग भरने के लिए मोतियों की लड़ियाँ गूंथ रही थीं। छत पर खड़ी हुई मञ्जरी चांद दिखा-दिखा कर प्रवाल को बहला थी। द्वार पर किसी ने धक्का मारा, सांकल झनझना उठी। नीचे आंगन में पड़ी हुई खाट पर मञ्जरी के एकाकी जीवन की एक मात्र सहारा बुढ़िया ग्वालिन चीख उठी—कौन है रे···?' ऊपर से मुंडेल पर बैठते हुए मञ्जरी ने भी वंशी में फूंक मार दी—कौन है दादी ?

उत्तर आया—मैं ही हूँ, किवाड़ खोल दो।

मञ्जरी की उरतंत्री आप से आप बज उठी—वही,···क्या वही आये हैं? इतने दिन बाद, इतनी रात को ? उसने सिर का आंचल ठीक कर लिया। फिर अपनी धोती की ओर देख कर मन ही मन कहा—ठीक है, वैसी मैली तो नहीं दीख रही।' और फिर जल्दी से चौबारे में सूखता हुआ प्रवाल का धुला कुर्ता ले आई। बुढ़िया से कहा—किवाड़ खोल दो दादी, और दूध में थोड़े चौले भिगो कर चांदनी में रख दो।

मञ्जरी ने देखा सूट बूट से सुसज्जित नवल कितने आकर्षक रूप में, पल में आकर मञ्जरी के सामने खड़ा हो गया। पर पहिले से कुछ लम्बा और दुबला भी दीख रहा था। न जाने कब की पड़ी हुई एक टूटी सी कुर्सी लाकर मञ्जरी ने छत पर डाल दी। पर वह उस पर बैठा नहीं। जिस चारपाई पर प्रवाल पड़ा था, वह उसी के पैताने बैठ गया।

मञ्जरी सोच रही थी—यह क्यों आये ? अब तो मैं इनकी चौखट पर कभी

भी पैर न रक्खूंगी। चाहे भूखी ही क्यों न मर जाऊँ और चाहे प्रवाल ही क्यों न म······।' आगे उससे सोचा ही न गया, उसका हृदय कांप उठा। मञ्जरी को किसी उलझन में पड़ी देख नवल ने ही बात शुरू की—अच्छी तो हो मञ्जरी? प्रवाल तो अच्छा रहा? कुछ दुबली अधिक हो गई हो!

'नहीं तो, अच्छी हूँ।' फिर चुप

अब की उसने प्रवाल का सहारा ले कर कहा—देखा प्रवाल तुमने? तुम्हारी अम्मां अकारण ही मुझ से रूंठ गई। घर आये अथिति का सत्कार क्या ऐसे ही किया जाता है? भूख तो बड़े जोर की लगी है। मैं तो आया था भर पेट मावे के गूंझे खाने, पर जान पड़ता है कि भूखे ही रहना पड़ेगा।

युवती का तन मन सिहर उठा, वह आगे कुछ सुनने के पहले ही जल्दी से नीचे जाकर, कटोरा भर चौले और थोड़ी सी बेसन की पपड़ी ले आई। नवल ने हंसते हुए वह सब उसके हाथ से लेते हुए कहा—यह सब तो शायद कम हो जायगा मञ्जरी! बताओ और भी कुछ है या नहीं? मैं फिर उसी अन्दाज से खाना शुरू करूं।

'हां बहुत है।' वह भी इतना कह कर हँस पड़ी।

नवल ने खाते-खाते कहा—तुम सोच रही होंगी कि यह दाना अचानक कहाँ से आ पड़ा? पर मैं खाली तुम्हें यही बताने आया था मञ्जरी! कि अब प्रवाल को गोटे की टोपी की कमी न रहेगी, अब मैं नौकर हो गया हूँ, पूरे अढ़ाई सौ एक महिने में मिला करेंगे। अच्छा जाओ तो···नीचे मेरे सामान में एक कागज़ का गोल डब्बा रक्खा होगा, उसे उठा लाओ। बहुत भारी नहीं है, आसानी से उठा सकोगी। न होगा जीने पर से मैं थाम लूँगा।

युवती चुपचाप आज्ञा पालन कर आई। डिब्बा खोलकर देखा, एक न दो पूरी चार टोपियाँ सलमें और ज़री के काम से पुती हुई भरी हैं। देख कर बोली—यह क्या? यह सब इतनी सारी क्यों ले आए? बेकार पैसे फेंकने से क्या लाभ? बहुत पैसा बच रहा हो तो थोड़ा गरीबों को ही दे डालो।

'हां, यही सब पैसे-पैसे का हिसाब रखने के लिए ही तो मैं तुम्हें लेने आया हूँ। मैं अपना बाहर का काम देखूँ या घर-गृहस्थी सहेजता रहूँ। तुम तो यहाँ हो

वहां कोई अभी जाना नहीं चाहते, फिर घर कौन देखे ?'

युवती का बदन कांपने सा लगा, वह आज कैसी बातें सुन रही है ? हिन्दू घर की अभागी विधवा को यह सब कैसे रुचता ? बड़ा साहस करके बोली—ऐसी बातें न कहो, मुझे इन बातों से खुशी नहीं होती ।

'यही तो मैं भी कहता हूँ मञ्जरी ! बातें करना मुझसे वैसा आता ही कब है ? वही सब तो तुम से सीख लेने की जरूरत मालूम हुई । तभी तो चला आया और जहां तक खुशी का सवाल है, वहां तक मैं तुम्हें खुश करने तो आया नहीं, मैं तो अपनी खुशी को लेकर ही यहां तक चला आया हूँ । अच्छा बोलो, कब तक चलने का विचार है ? छुट्टी तो सिर्फ दो ही दिन की मिल सकी, ज्यादा मिली ही नहीं ।

'चलने का विचार ? कहाँ चलने का ?' युवती को आश्चर्य से पूछा ।

'यह कैसे बताऊँ ? मेरे या अपने किसी के भी घर चलने का विचार पूछ रहा था । वह है तो आखिर घर ही, सीमेंट और चूने का बना है ।'

'मेरा घर तो कच्चा-पक्का जैसा भी है मेरे लिए बहुत है । पर मैं वहाँ तो भूल कर भी अब पैर न रक्खूँगी, किस मुँह से जाऊँ ?' क्यों मुँह में क्या हो गया ? भई, तुम्हारे घर तो मैं तुम्हें अकेली छोड़ नहीं सकता, मेरे घर अथवा अम्मा की चौखट पर तुम चढ़ने की नहीं, तो फिर प्रवाल के घर सही, वहीं तुम्हें ले जाना चाहता हूँ, समझीं—मेरी बदली वहीं की हो गई है, मञ्जरी, गाँव का नाम है बांदा ।

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझी, साफ साफ कहो । क्या तुम मुझे बिलकुल ही धूल में मिला देना चाहते हो ?'

'हां, ऐसा ही समझ लो ? धूल में से ही हीरे का जन्म होता है मञ्जरी ! और धूल में मिलकर ही तो बीज पौधे का रूप धारण करके, सुन्दर फूलों की सृष्टि कर के संसार को मुग्ध कर आश्चर्य में डाल देता है ।' नवल ने शान्ति से कहा ।

'तो मैं तो कलंक का टीका अपने माथे पर नहीं लगवाना चाहती ?'

'देखो मञ्जरी ! चन्द्रमा में भी कलंक है, और शायद सभी अच्छी वस्तुओं में किसी न किसी रूप में थोड़ा-बहुत कलंक छिपा रहता है—मैं तुम्हें छोड़ कर जीते जी तो जाऊँगा नहीं । हां, यह बात दूसरी है कि तुम इसी घर में मुझे

फूँक फांक कर खत्म कर दो, फिर जाने-आने का कोई सवाल ही नहीं उठेगा।"

युवक की बातों से युवती का सिर चकराने लगा, पर इस समय वह अपने घर थी, स्वाधीन थी, टूटे फूटे खंडहरों में रहते हुए भी उसके शरीर में शक्ति थी और आत्मा में बल था, दृढ़ता से बोली 'यह सब कुछ न हो सकेगा नवल बाबू ! वह स्त्रियां और ही होती होंगी, जो इस प्रकार पुरुषों की बातों में आकर अपना सर्वस्व गवां बैठती हैं। मैं तो रूखी-सूखी रोटी का टुकड़ा अपनी मेहनत मजदूरी कर के ही पैदा कर लूँगी और उसी से ही अपना पेट भर लूँगी।

'सो तो ठीक है मंजरी ! मुझे भी एक ऐसी ही स्त्री की जरूरत थी...लेकिन यह तो मैं भी खूब जानता हूँ कि तुम्हें कुछ नहीं चाहिये......न तुम्हें किसी चीज़ का लोभ है, और न जरूरत ही है......परन्तु, परन्तु मञ्जरी, प्रवाल को तो एक अभिभावक की जरूरत महसूस होती ही है न ? मैं यह सब उसी की बात को लेकर कह रहा था।'

युवक की बात सुनकर युवती के सारे शरीर में बिजली सी दौड़ गई। बालक ने न जाने क्या सोचकर, नवल के गले में अपने छोटे-छोटे और मृदुल कर डाल दिये और वह उसकी पीठ पर झूल गया। वह हार गई, परास्त होकर उसकी उठी हुई पलकें आप से आप ही नीचे को झुक कर उमड़ते आसुओं को छिपाने का यत्न करने लगीं।

नवल ने कहा—देखा तुमने ? मेरा प्रवाल कैसा राजा बेटा है ? तुम से तो यह अच्छा है......कम से कम यह अपने घर आये अतिथि का अनादर तो न करेगा।' और फिर वह प्रवाल का मुँह चूम कर खिलखिला कर हँस पड़ा।

नवल ने देखा, युवती मौन है। अपने बचे हुए चौलों में से उसने एक चम्मच भर चौले प्रवाल के मुँह में भर दिये, फिर दूसरा चम्मच भर कर, मञ्जरी की ओर बढ़ाकर कहा—तुम भी खाओ चौले ? खिला दूँ ! प्रवाल ने अपने नन्हें से हाथ का सहारा देकर नवल का हाथ मां की ओर बढ़ा दिया। नवल ने जबरन दूसरा चम्मच मञ्जरी के मुँह में ठूँस दिया। ज्योत्स्ना झिलमिला कर हंस पड़ी। बालक किलकारी मार कर हंसा और कहीं दूर पर पपीहा पुकार उठा—'पी...पी'।

—:o:—

श्री अमृतराय

जन्मकाल रचनाकाल

१९२१ ई० १९३९ ई०

कठघरे

तख्ते ताऊस तख्ते सुलेमान........

हमारी तकदीर की तरह सपाट और हमारी जिन्दगी की तरह खुश्क और घिसे हुये ये लम्बे-लम्बे नजिस तख्ते...हमारे तख्ते-सुलेमान तख्ते-ताउस......

तीन सौ बहत्तर बार सुनी हुई किसी लम्बी और बेहद गैर-दिलचस्प कहानी को एक बार और, फिर एक बार और हलक के नीचे उतारने की तरह हम सभी वकील और कुछ अगले वक्तों के मुख्तार ६-४० से लेकर १०-२० के अन्दर-अन्दर इन तख्तों पर आकर बैठ जाते हैं कोई कीटगंज से आता है कोई मोहतशिमगंज से, कोई नये कटरे से कोई पुराने कटरे से, कोई चक से कोई चौक से, कोई खुल्दाबाद से और कोई दरियाबाद से—शहर के हर कोने से इन्साफ के मुजाहिद यहाँ आकर जुटते हैं, काले रङ्ग की घिसी हुई अचकन या कोट पहने हुए जो कि उनकी वर्दी है।

इन मुजाहिदों में सभी जात, सभी कौम, सभी रङ्ग, सभी मजहब के लोग हैं मगर सब इन्साफ के यकसां मुजाहिद हैं, और कोई किसी से घटकर नहीं है, सब में वही जोश-ओ-खरोश है—यहाँ तक कि अगर एक मुजाहिद पाँच रुपये की पेशी पर इन्साफ के लिए जिहाद छेड़ने को तैयार है तो दूसरा सिर्फ दो रुपये पर और तीसरा एक ही रुपये पर और चौथा, जो सबसे दिलेर है, आठ ही आने पर। सबके सीनों में इन्साफ की वह आग धधकती रहती है कि रुपये-पैसे के तमाम ओछे खयालात जलकर खाक हो जाते हैं। जो बेकस है, मजलूम है, उसकी हिमायत में जान तक कुर्बान की जा सकती है, यह नाचीज़ पैसा क्या है।

मगर बेकस वह है, मज़लूम वह है जिसकी मिसिल हमारे पास है।

बड़ा दानी बड़ा धर्मात्मा था वह जिसने हम ग़रीबों के लिए धर्मशाला बनवायी। वर्ना आप ही कहिए दिन के दिन हम कहाँ बैठते। धूप से पानी से आड़ तो हर जानवर चाहता है।

हम प्रणाम करते हैं उसको जिसने यह धर्मशाला बनवायी और हमारी ख़ातिर ये तख्ते यहाँ डलवाये, ये तख्ते ताऊस जिन पर हम तीस बरस चालीस बरस यानि कि ता-हयात बैठते हैं और फिर हमारे बाद हमारे जांनशीनं बैठते हैं, अगर वह लायक बाप के लायक बेटे निकले। मौत के दिन की तरह सबके तख्तेमुअय्यन हैं। यह नहीं कि कोई किसी के तख्त पर बैठ जाये। मैं अपने पर बैठूंगा आप अपने पर बैठेंगे। सबने अपने तख्तों के ऊपर अपने-अपने नाम की तख्ती टांग रक्खी है, ताकि मुवक्किल को धोखा न हो और सनद रहे और वक्त जरूरत पर काम आये।

कचहरी वह जगह है जहाँ स्वत्वों की लड़ाई लड़ी जाती है, क्या अजब कि यह लड़ाई खुद वकीलों से और उनके तख्ते ताऊस से शुरू होती है।

जो साहब देर से आये, जगह घिरने के बाद आये उनको मजबूरन अपने लिए छवाना पड़ा। लिहाजा धर्मशाले के सहन में घास-फूस के कई छप्पर लगे हुए हैं। मगर तख्ता वहाँ भी है।

और हमारी आधी ज़िन्दगी इन्हीं तख्तों पर गुजरती है। हम वकील साहब हैं। हमसे पचीस मिनट पहले हमारा मुहर्रिर पहुँच जाता है और किसी मैल खोरे रंग की, काली या गहरी कत्थई या हरी या ऐसे ही किसी रंग की एक निहायत घिसी हुई दरी बिछा देता है और अपना काले रङ्ग का या दूसरे किसी उड़े हुए रङ्ग का, टीन या लकड़ी का बक्स रख देता है। और तब तक मैं पहुँच जाता हूँ। दूकान सज गयी। दूकानदार कैंची सिगरेट सुलगाकर, पान चबाते हुए आकर गद्दी पर बैठ गया। अब बस गाहक का इन्तजार है। कौड़ी मोल हम अपनी अक्ल बेच रहे हैं, जिसे खरीदना हो, आये। जिसे मुकदमा जीतना हो हमारी दूकान पर आये। हमारी दूकान, सबसे पुरानी दूकान, सबसे मोतबर दूकान, सबसे आला दूकान, आइए-आइए, धोखा न खाइए,

इधर आइए।

मगर उफ लकड़ी के यह मुर्दा, बेहिस पटरे···

दिन यों ही गुजर जाता है। किसी-किसी रोज तो सिगरेट तक के पैसे नहीं खड़े होते। दूकानदारी ऐसी ही चीज है, कभी हनी-हना कभी मूठी चना कभी वह भी मना।······हनी-हना? मगर कब? जिन्दगी बीत गयी, यहाँ तो मूठी चने पर ही बसर है।

वह देखिए, कलक्टरी की इमारत है, न्याय का मन्दिर जहाँ इन्साफ बिकता है, इन्साफ···बुड्ढी हरजाई···बहुत महंगी बहुत सस्ती···हम तो रोज देखते हैं, कदम-कदम पर देखते हैं, हर लमहा देखते हैं···

तो गरज कि यह कलक्टरी की इमारत है और यह एक तरफ जरा हटकर इक्कों का स्टैण्ड है। इन इक्कों पर चढ़कर मुवक्किलों की बारात आसपास के मौजों से आती है। मुवक्किल हमारे भगवान हैं। हम उनको पूजते हैं, वैसे ही जैसे गोबर के गनेश को। मगर आज का मुवक्किल भी तो एक ही घाघ होता है। वह जल्दी किसी को पुट्ठे पर हाथ थोड़े ही रखने देता है। जी नहीं, वह दिन लद गये जब यार लोग उसे पकड़ कर बकरी की तरह दुह लिया करते थे। अब तो मुवक्किल वकीलों के भी कान काटते हैं। ऐसी उड़नझाइयां सुनाते हैं कि अक्ल चकरा जाती है। मगर खैर जैसे भी हैं, वह हमारे हैं, और हम उनके हैं। हमारा-उनका जन्म-जन्म का सम्बन्ध है। इसीलिए तो···

धूल से सना हुआ इक्का आकर रुका नहीं कि गुमाश्तों की एक फौज उन पर टूट पड़ती है और चोथाई शुरू हो जाती है—जैसे एक छीछड़े पर पचास चीलें, गुड़ की एक भेली पर सौ चीटीं। एक आदमी एक हाथ पकड़े है तो दूसरा आदमी दूसरा हाथ पकड़े है और तीसरा मजबूरन कुर्ते का दामन पकड़ कर खींच रहा है क्योंकि मुवक्किल के भी दो ही हाथ होते हैं और चौथे ने उसके हाथ के अंगोछे को थाम रक्खा है···और रस्साकशी हो रही है।

'अरे ओ कक्कई, ई तो जइसे संगम के पण्डा अहिन···'

मुवक्किल का सर चकरा रहा है और उसके कानों में तमाम आवाजें गूँज

रही है। बड़ी मुशकिल से वह चाय पीने का बहाना करके, पीछा छुड़ा पाया है और इस वक्त चाय का कुल्हड़ हाथ में लिये या सत्तू घोलते हुए उन शब्दों की जुगाली कर रहा है जो उस आपा-धापी में उसके कान में डाल दिये गये थे।

'हमारे वकील साहब मिस्टर दयास्वरूप का जवाब दस जिलों में नहीं है। उनकी जिरह से तो दूसरा फरीक़ ऐसे कांपता है जैसे कसाई के छुरे से बकरा। वह जिधर हो जायँ उसकी जीत रक्खी हुई है। ब्रह्मा भी उसे नहीं टाल सकते। अच्छी तरह सोच लो समझ लो···ऐसा न हो कि बाद को बस पछताना हाथ लगे। हां कैसा क्या है?···

'हमारे मुख्तार साहब मुंशी मनबोधनलाल···पुरानी कायस्थ खोपड़ी है···ये कल के लौंडे, नये-नये वकील क्या खाकर बराबरी करेंगे। हर साल खेंचियों निकलते चले आते हैं मगर पूछिए कानून इनमें से कितनों की समझ में आता है। इलिलबिलिल की डिग्री लग जाने से ही तो सब कुछ नहीं हो जाता। कानून समझना तो गोया लोहा चबाना है। हमारे मुख्तार साहब मुंशी मन-बोधनलाल खान्दानी मुख्तार हैं। सात पीढ़ियाँ हो गयीं। आप खुद सोच सकते हैं। उनके खून में कानून घुल गया है।···और खैर जहाँ तक मसविदों की बात है, सारे हिन्दुस्तान में उनके पाये का आदमी नहीं है। उनके हाथ के मसविदों में 'सर तेज' तक तो कलम लगा नहीं सकते थे। क्या कहूँ आपसे, बड़ी इज्जत करते थे 'सर तेज,' भगवान उन्हें शान्ति दे।···किसी किस्म का मसविदा बनाना हो, मेरे साथ चलिए, ऐसा मसविदा बनवा दूँ कि तबीयत बाग-बाग हो जाय—ऊपर से देखने में निहायत मासूम निहायत भोला मगर वक्त आने पर उसी में से गिरफ्त ऐसे प्वाइन्ट निकलें और निकलते चले आयें कि बस कुछ न पूछिए, देखने वाला अश अश करे···कि जैसे किसी निहायत प्यारे-प्यारे से मेमने के नर्म-नाजुक पैरों में एकाएक जहरीले नाखून निकल आयें···यही तो सिफ्त है। कोई सुर्खाब के पर थोड़े ही लगे हैं जो लोग आठ-आठ सौ मील से उनके पास मसविदे बनवाने आते हैं। मैं गलत नहीं कह रहा हूँ, वैसे आप अपने भले-बुरे के मालिक हैं। कानून की किताबें पढ़ लेना एक बात है, कानून समझना दूसरी।'

'बहुत ठीक कहा इन्होंने। कानून की किताबें घोलकर पी जाने से कोई कानूनदां नहीं हो जाता, उसके लिए कुछ दैवी प्रतिभा चाहिए और जहां तक दैवी प्रतिभा की बात है, आप कलक्टरी भर में किसी से पूछ देखिए, मैं तो कहता हूँ खुद इन्हीं से पूछिए, है कोई जो हमारे अरविन्द बाबू के सामने खड़ा हो सके? कौन अरविन्द बाबू? कमाल हो गया साहब, हमारे अरविन्द बाबू से तो तमाम ज्वंट-मजिस्ट्रेट तक खौफ खाते हैं जनाब, कोई ऐसे-वैसे आदमी नहीं हैं। कपड़े तो ऐसे पहनते हैं कि साला लाट भी क्या पहनेगा। जिस वक्त वह बहस के लिये इजलास में उतरते हैं, हर तरफ सन्नाटा छा जाता है। बस यही समझिए कि जंगल में जो शान शेर की होती है वही यहाँ पर खन्ना साहब की है, मिस्टर अरविन्द खन्ना, एल० एल० एम०—डिग्री भी सबसे बड़ी और लियाकत भी सबसे। बड़ी और साहब क्या पर्सनालिटी! देव की तरह ऊँचा-पूरा जिस्म, दमकता हुआ सुर्ख गोरा रंग, चौड़ी पेशानी—जिधर से निकल जाते हैं खन्ना साहब, लोग हक्के-बक्के होकर मुँह देखने लग जाते हैं और इजलास पर तो शेर की तरह आते हैं। जिस वक्त 'योर ऑनर' कहकर दहाड़ना शुरू करते हैं मुखालिफ वकील घबरा कर भाग जाता है।

मुवक्किल बैठकर चाय पीता रहता है और तमाम आवाजें उसके कानों में पड़ती रहती हैं। मगर वह बहुत चौकन्ना है, किसी के कहने में नहीं आयेगा, कचहरी में दलाल बहुत होते हैं, उसे खूब पता है। शुबराती इक्केवाले ने बहुत ठीक कहा था। उसने कहा था—सब एक से एक बढ़कर ठग होते हैं भैया। तुम तो किसी की सुनना ही नहीं, बस चुपके से जाकर मुंशी नौबतराय को कर लेना। बहुत तजुर्बेकार आदमी हैं और बहुत खामोश आदमी हैं। वह कोई दलाल-वलाल भी नहीं रखते। कोई उनका नाम लेता तुम्हारे पास न आयेगा मगर तुम उसकी पर्वाह मत करना। उन्हें जो जानते हैं, जानते हैं, वह मेरी पट्टीदारी का मामला इकरामुल्ला से फंसा था न, तुम्हें पता होगा, वह इन्हीं मुंशी नौबतराय ने तो किया था। बहुत ही उम्दा वकील हैं—और मुवक्किल को लूटते भी नहीं। तुम तो किसी से न कुछ कहना न सुनना, बस सीधे जाकर मुंशी नौबतराय का पता लगा लेना।

लिहाजा यह रामदीन पांडे घर से तय करके चले हैं कि किसी दलाल-फलाल के चक्कर में नहीं पड़ेंगे और एक वह कोई मुंशी नौबतराय हैं।

मगर गरीब को क्या मालूम कि इंसाफ के मुजाहिदों कि बाहें कितनी लम्बी हैं।

गरज इसी तरह दिन ढल जाता है, कभी अपने इस तख्ते ताऊस पर कभी कचहरी के अंधेरे गलियारों में और कभी इजलास पर, पेशकार और अहलमद से दो-दो कनबतियाँ, धूल-धक्कड़, इक्केवाले, खोमचेवाले, बीड़ी और कैंची सिगरेट का धुआं, मुवक्किलों से दो-दो चार-चार आने के लिए झिकझिक, मुहर्रिर का बुखार हम पर और हमारा बुखार...?

लानत है ऐसी जिन्दगी पर—लाशें नोचकर पेट भरना। चील-कौओं का पेशा। और उसमें भी इतना कम्पटीशन कि बाप रे बाप। अब कुछ रस नहीं इस पेशे में, एकदम कुत्ता घसीटी। दीवानी और माल के मुकदमे तो एक सिरे से कम हो गये। अब तो बस फौजदारी में तर माल है। किसी का झगड़ा हो, किसी का खून हो, किसी की बेटी कोई भगाये, हमें तो बस अपनी जेब गर्म करने से मतलब। मगर वाह दोस्त, खूब पेशा है।

ऊँह जो है सब ठीक है। पेट पालना ही बड़ी चीज है। सभी यही कहते हैं। यह सामने देखो कितने मोची बैठे जूते गाँठ रहे हैं। उन्हीं के पास वह ज्योतिषियों की बारात बैठी है, रमल निकालने वाले मियां जी और हस्तसामुद्रिक के पंडित जी, सभी हैं। सब अपना पेट पाल रहे हैं। मैं अकेला थोड़े ही हूँ, सभी तो किसी न किसी की जहालत का फायदा उठाते हैं।

मेरी रोटी कचहरी से चलती है। मगर दम घुटता है। पहले और भी घुटता था। अब उतना नहीं घुटता, पर तो भी थक तो जाता हूँ—बस यही दिल चाहता है किसी तरह छुटकारा मिले। मगर कहाँ मिलता है छुटकारा। कहीं छुटकारा नहीं है। शाम को जब मैं कचहरी से उठकर घर आता हूँ तो कचहरी भी उठकर मेरे साथ घर आ जाती है।

आयोडेक्स गठिये का मरहम है।

थका-मांदा मैं घर पहुँचता हूँ और अपने कमरे में जाकर सबसे पहले अपना

काला कोट उतारता हूँ और फिर दस मिनट तक एक बहुत पुरानी आराम कुर्सी पर, जो मुझको मेरे बाप से और उनको उनके बाप से मिली थी, आँख मूंदकर लेटा रहता हूँ। दिमाग दिन भर के शोर से झनझनाता रहता है। चाहता हूँ कि कोई मेरे पास न आये, कोई भी नहीं, सुशीला भी नहीं, और मैं कुछ देर खामोश पड़ा रहूँ मुर्दे की तरह।

मगर वह भी कहां होने पाता है। घर की कचहरी अपनी साढ़े ग्यारह टांगों से मेरे पास पहुँच जाती है—कृष्णा, कमला, विमल, केसरी, सन्तू और गठिये से मजबूर डेढ़ टांग की सुशीला, मेरी पत्नी, इन बच्चों की मां।

कृष्णा की धोती में हल्दी के दाग रहते हैं। सुशीला आयोडेक्स की बदबू में लिपटी रहती है।

यही मेरा घर है। दीवानखाने में एक बेंच और एक जहाज की तरह भारी तख्त और एक बाबा आदम के वक्त की कुर्सी। बेंच पर मुवक्किल बैठते हैं और मुकदमे की कहानी कहते हैं। तख्त पर मैं बैठता हूँ और मुकदमे की कहानी सुनता हूँ। रात को उसी पर सोता हूँ। आरामकुर्सी आराम करने के लिए है। इसी कुर्सी पर बैठ के पिताजी हुक्का गुड़गुड़ाते थे और मैं अब कैंची पीता हूँ। आराम उनको भी नहीं मिलता था; मुझको भी नहीं मिलता। मगर वह और बात है। आराम किसे मिलता है। आराम हराम है। हमारे प्रधान मन्त्री ने कहा है।

तो भी यही मेरा घर है। कमरे में दाखिल होते ही सामने की दीवाल पर लाल कपड़े की जमीन पर रुई का एक बड़ा-सा सफेद तोता बना है और उसके नीचे रुई के ही अक्षरों में 'स्वागतम्' लिखा हुआ है जिसे मैंने बड़ी एहतियात से फ्रेम कराके टांग रक्खा है। यह जवान सुशीला के हाथ की कारीगरी है और इक्कीस बरस पहले जब मैंने वकालत शुरू की थी तभी से यह तोता उसी तरह टंगा हुआ है। तोता अब बुड्ढा हो गया है और उसकी गर्दन लटक गयी है मगर अब किसी को उसकी सुध नहीं है और वह किसी तरह अपनी जिन्दगी के दिन पूरे कर रहा है। फ्रेम अलग करके उसकी गर्दन को फिर से चिपका देना कोई कठिन काम नहीं है और फिर सुशीला भी अब जवान नहीं है और मैं भी

जवान नहीं हूँ । इसलिए जो है सो है । मेरे दीवानखाने का बस इतना ही सिंगार है, और हाँ, बांयी दीवार पर डाबर का एक कैलेंडर, और उसके सामने दायीं दीवार पर महात्मा गांधी की तसवीर, मय अपनी बकरी के । मुझे कमरे में यह भी वह भी पांच सौ चीजें गांज देना बहुत खराब लगता है । यह सादगी बहुत अच्छी । इसीलिए मैं तो मेजपोश तक नहीं रखता । पहले रखता था जिनमें से एक पर कृष्णा ने लाल-हरे-नीले धागे से अँग्रेजी में 'वैलकम' टाँक दिया था और दूसरी पर कमला ने न जाने क्या सोचकर बड़े प्यार से 'स्वीट ड्रीम्स' लिख दिया था । मेजपोश दोनों बहुत अच्छे थे मगर तजुर्बे से मैंने देखा कि मेजपोश लगाने से मेज भले न गन्दी होती हो, मेजपोश जरूर गन्दा हो जाता है और यह रोज का दर्देसर है ।

तो जनाबमन्, यही मेरा घर है और मैं बहुत खुश हूँ, मुझे कोई शिकायत नहीं है । हां यह जरूर है कि घर में अगर जरा और सफाई रहे, चीजें इस तरह तितर-बितर न पड़ी रहा करें तो ज्यादा अच्छा मालूम हो । मगर शायद उसका अब कोई उपाय नहीं है । सुशीला से तो अब उतना हो नहीं सकता, उम्र तो कुछ वैसी नहीं हुई, यही सैंतीस-अड़तिस लेकिन सेहत ठीक नहीं रहती, ज्यादातर बीमार ही रहती है । हां कृष्णा-कमला चाहें तो जरूर कर सकती हैं मगर देखता हूँ कि उनका दीदा इस काम में नहीं लगता । और मैं उनसे क्या कहूँ और किस मुँह से कहूँ । जवान-जवान लड़कियां हुईं, मेरे हाथ में पैसे होते तो अब तक कभी विवाह कर अपने-अपने घर गई होतीं, उनसे क्या कहूँ मैं ? और सो भी आजकल की लड़कियां, सनीमा-बाइस्कोप देखनेवाली, कहानी-उपन्यास पढ़नेवाली, कहीं मुँह खोलकर कुछ कही दें तो । इसलिए मेरी हिम्मत नहीं पड़ती, देखता हूँ, चुप हो रहता हूँ । क्या किया जाय । और घर की हालत यह है कि किसी चीज का कुछ ठिकाना नहीं । सुई की जरूरत पड़ जाय तो सारा घर खोदकर फेंक दो, तभी वह बदजात सुई मिलेगी ।...हम गरीब लोग हैं । किसी के पास जरूरत से ज्यादा कपड़े नहीं हैं, मगर जिस तरह घर भर में कपड़े फैले रहते हैं उससे तो यही लगता है कि सारा बजाजा उलटकर हमारे घर आ गया है । कृष्णा का पेटीकोट बैठक में, मेरी कुर्सी के हत्थे पर । बताइये उसके लिए क्या वही माकूल जगह

थी ! बैठक में मुवक्किलों के अलावा भी चार भले आदमी मुझसे मिलने आते हैं और वहीं कृष्णा का पेटीकोट पड़ा है, क्या खूब ! सन्तू का एक मोजा बरामदे के एक कोने में और दूसरा दूसरे कोने में, नहीं तो चूहे के बिल में। जूतों-चप्पलों का तो कुछ कहना ही नहीं। सब एक दूसरे से मुँह फुलाये बैठे हुए हैं ; आप हमसे टेढ़े मुँह बात करते हैं तो हम आप से टेढ़े मुँह बात करते हैं। एक साहब अगर चारपाई पर बैठे हैं तो दूसरे साहब पानी की घिनौंची पर बैठे हुए हैं। पाजामे खाट पर टांग फैलाये लेटे हैं। जूते जमीन पर मुँह बाये पड़े हैं। अलगनी साफ और मैले कपड़ों के बोझ से टूटी पड़ रही है।...आप यह समझिए कि मेरे पास बस दो पुश्तैनी चीजें हैं, जो मुझे अपने बाप दादों से मिली हैं, एक तो मैं खुद और एक यह घर। और जैसा पुश्तैनी यह घर है वैसे ही पुश्तहापुश्त, चित्रकारों की अनेक पीढ़ियों ने अपने सधे हुए हाथों से इसकी दीवारों को सजाया है, यहाँ तक कि मेरे बच्चों तक पहुँचते-पहुँचते मेरा यह गरीब घर, जिसकी छत बैठी जा रही है, अपने इन अनोखे भित्ति चित्रों के कारण अजन्ता और बाघ की गुफाओं की ही तरह कला का एक अमिट स्मारक बन गया है। इसमें सबसे बड़ा हाथ मेरे बच्चों, कृष्णा, कमला, विमल, केसरी, सन्तू का है। जिन्होंने आधुनिकतम योरोपीय चित्रकला के नमूनों से दीवार को सजाया है। इनमें पेंसिल स्केच हैं, कोयले से खींचे गये रेखाचित्र हैं, पेस्टल ड्राइङ्ग हैं, वाटर कलर की चीजें हैं, तैल चित्र हैं, सभी कुछ है, यहाँ तक कि कुछ चित्र गीले कत्थे द्वारा भी अंकित हैं जो दुनिया में और कहीं नहीं मिलते ! यह अन्तिम मेरी पत्नी सुशीला की अत्यन्त सहज, अत्यन्त अनायास, स्वतः स्फूर्त कला है जो आते-जाते उङ्गलियों के एक हलके स्ट्रोक से दीवार पर उतर आयी है। इन चित्रों में राजा रामचन्द्र हैं, कन्हैया जी हैं, भक्तशिरोमणि हनुमान हैं, हाथी हैं, घोड़े हैं और कुछ चित्र मात्र उलझी हुई रेखाओं के जाल हैं जिनका अर्थ केवल भगवान् जान सकते हैं।

जिनके नाम की महिमा धरती को कागद और समुन्दर को दावात बनाकर घर भर में, हर कमरे के फर्श पर लिखी हुई है। पढ़े-लिखे लोगों का घर है जिसमें चिट्ठियाँ न जाने कितनी पीढ़ियों से बराबर डाक के मुन्शी, तारबाबू,

कानूनगो, मुख्तार, वकील होते आ रहे हैं, ऐसे घर में अगर सब तरफ फर्श पर रोशनाई नहीं लुढ़की तो फिर बात क्या बनी।

यही मेरा घर है, मुन्शी नौबतराय का घर, और मैं दिनभर का थका-मांदा (रिक्शेवाले से झाँय-झाँय, मुवक्किल से झिकझिक, पेशकार की ठकुरसोहाती, मजिस्ट्रेट की घुड़की) आकर अपनी उस आरामकुर्सी पर आँख मूँदकर लेट जाता हूँ, ताकि कुछ सुस्ताकर, कुछ तरोताजा होकर गृहस्थी के इस देवमन्दिर में प्रवेश करूँ। सुशीला पाँच ही बच्चों में टूट गई है। हरदम बीमार रहती है। कभी कमर में दर्द है तो कभी सिर में दर्द है तो कभी छाती में दर्द है। और गठिया तो जैसे हमेशा के लिए उसको जकड़ कर बैठ गया है। समझ ही में नहीं आता उसे हो क्या गया है। तमाम डाक्टरों और हकीमों और अपने बड़े दोस्त हैं, भला-सा नाम है, चन्द्रकिशोर होम्योपैथी करते हैं, सबको दिखलाकर हार गया, इस सब में दो-ढाई सौ रुपये भी फूंक चुका मगर कोई फायदा नहीं। बिस्तर पर पड़ी रहती है। घर का काम-काज तो दरकिनार खुद उसी की तीमारदारी के लिए एक आदमी चाहिए। मगर कौन बैठे उसके पास? मुझे काम से फुर्सत नहीं, लड़कों को अपने राग-रंग से फुर्सत नहीं। सन्तू जो सबसे छोटा है, नौ साल का, उसे अपने गुल्ली डण्डे से फुर्सत नहीं। उससे जो बड़े साहब हैं, केसरी वह अपने वक्त के सबसे बड़े खिलाड़ी हैं और मुहल्ले के तमाम आवारा छोकरों के लीडर हैं और मार-पीट में सबसे आगे? रोज ही एक न एक जगह से उलाहना आता रहता है और मैं भी हैरान रहता हूँ कि यह कहाँ का नैपोलियन मेरे घर में पैदा हो गया, बाप ने मारी मेंढकी बेटा तीरंदाज। गरज कि उनसे कुछ कहना ही बेकार है। उनसे बड़े जो विमल साहब हैं, वह निहायत गंभीर आदमी हैं और उतने ही घामड़। तंचड़े की तरह मुँह लटकाये रहते हैं और समझते हैं यही सबसे बड़ी काबलियत है। आप तीन साल इंटर में फेल हो चुके हैं और अभी और तेरह साल फेल होने का इरादा रखते हैं। मेरे बच्चों में कोई ऐसा अवलौल नहीं है। पता नहीं क्या पढ़ता है क्या लिखता है। मैंने तय कर लिया है कि अगर वह इस बार फिर फेल हुए तो मैं उन्हें घर से निकाल दूँगा, कहूँगा जाओ कमाओ खाओ। अब तुम बच्चे नहीं रहे। कब तक कोई किसी की परवरिश कर सकता

है? जिन्दगी में थोड़ी-बहुत ठोकर खाना अच्छा रहता है। और कुछ नहीं तो कहीं तीस-चालीस पर मुनीमी ही करेगा, वह भी नहीं तो किसी होटल में प्याली धोयेगा, बोझा ढोयेगा, खोमचा लगायेगा, कुछ भी करेगा···रुपये मुशकिल से आते हैं, डाल में नहीं फलते कि हिलाया और बिन लिया। बताइये कोई हद है, तीन-तीन साल इंटर में फेल हो रहे हैं।

तो जनाब, यह तो हालत है। कौन बैठे गठिये की मारी सुशीला के पास। लड़कियों को बैठना चाहिए, सो कृष्णा का तो बहुत-सा वक्त चूल्हे की नजर हो जाता है, दोनों वक्त खाना पका देती है यही क्या कम एहसान है। झींख झींख-कर घर भरे रहती है। दाल-भात के साथ उसे भी निगलना पड़ता है। रही कमला, सो उसे अपनी उन पंजाबी और सिन्धी सहेलियों से फुर्सत नहीं है।

मैं आकर अपनी आरामकुर्सी पर लेटता हूँ और सुशीला भी पाँच मिनट बाद खाँसती-कूंखती आकर तख्त पर बैठ जाती है और अपनी सेहत (यानी बीमारी) के बारे में सबसे ताजा बुलेटिन सुनाने लगती है। गठिये का फसाद दूसरे घुटने पर भी दिखायी देने लगा है। छाती में आज दिन भर बहुत दर्द रहा। सेंकने से भी आराम नहीं मिला। आज अगर बाजार की तरफ जाना हो तो इसबगोल की भूसी लाना न भूलिएगा और हाँ, देखिए, ऐस्प्रो भी लेते आइएगा। चार-छः टिकिया घर में पड़ी रहनी चाहिए। सर जब फटने लगता है या जब कमर में चिलक उठती है—

यहाँ तक तो सुशीला के बीमारी का बुलेटिन चलता है। इसके बाद घर की कचहरी शुरू होती है। केसरी ने किसी लड़के का सर फोड़ दिया, उसकी माँ उलाहना लेकर आयी थी।

'वहो बिल्ली तो थी। पूरे थान भर का पट्टा बाँधे थी लड़के के सिर पर। बोली—तीन इञ्च गहरा घाव है। तसलों खून बहा। बड़ी-बड़ी मुश्किल से बन्द हुआ।'

'बुरा तो मुझे भी लगा, क्यों भला केसरी ने उस बेचारे लड़के का सिर फोड़ दिया। मगर उसके सिर का वह पट्टा देखकर मेरी हँसी न रुकी...'

डूबते हुए सूरज की लाली की तरह, उस हँसी की एक फीकी आभा फिर

सुशीला के चेहरे पर खेल गई, जिसको देखकर मेरा उदास मन न जाने क्यों और भी उदास हो गया।

मैं बोली—जरूर बहुत चोट लगी होगी। लेकिन तुमने तो बिस्सो, बेचारे के सिर पर पग्गड़ बाँध दिया ...बिस्सो चिढ़ गयी। चमककर बोली—बड़ी हँसी मसकरी सूझ रही है बिमल की अम्मां। दूसरे के लड़के का दरद तुम्हें काहे को होने लगा, जब अपने पेट के जाये को कुछ होगा तब पुछूंगी। तुम्हारा वह कुलच्छनी केसरिया...ऐसे ही झनकती-पटकती वह चली गयी। मगर अब तो देखती हूँ यह रोज की बात हो गयी। आप केसरी को बुलाकर समझा दीजिए।

कचहरी का इजलास अभी चल रहा था कि कमला नाश्ता लेकर आ गई—नमकीन और मीठे खुरमे और दो प्याली चाय, एक सुशीला के लिए।

चाय से सबको बड़ी राहत पहुँची, सुशीला के घुटने और कमर में गरम सेंक लगी और मेरे झनझनाये हुए दिमाग को तरावट पहुँची और फिजां में एक जो झल्लाहट थी वह कदरे कम हुई। बातचीत कुछ ज्यादा समतल भूमि पर चलने लगी।

तभी कमला ने सर्कस का प्रस्ताव किया। छः हफ्ते से एक इतना बड़ा सर्कस शहर में चल रहा है और हम लोग आज तक नहीं गये। मुहल्ले का बच्चा-बच्चा देख आया पिताजी, बस हमीं रह गये। (कितनी जिल्लत की बात है।) सुनते हैं इस ग्रेट ईस्टर्न सर्कस से बड़ा सर्कस हिन्दोस्तान भर में नहीं है। न जाने कितने शेर, बबर, हाथी, घोड़े...

प्रस्ताव मंजूर हुआ। सर्कस देखने जाना ही होगा। बहुत अच्छा सर्कस है। इससे बड़ा सर्कस हिन्दोस्तान भर में नहीं है। सब लोग देख आए हैं। हमीं रह गये हैं। तो कल हम लोग भी सर्कस देखने जायेंगे। कृष्णा-कमला दोनों मिलकर पांच के पहले-पहले खाना पका लेंगी। बस पराठा-तरकारी तो करना है। मैं कचहरी से लौटूंगा, फिर सब चलेंगे, सुशीला को छोड़कर। वह अपने गठिये के संग बिस्तर में आराम करेगी। बिमल का जी कुछ ठीक नहीं है। चलना चाहेगा तो चलेगा। मगर शायद ही चले। मेरे साथ कहीं भी जाना उसे अच्छा नहीं

नीचे दहकते कोयले बिछे हैं और उनके ऊपर तनी हुई उस पतली रस्सी पर दोनों दो ओर से आते हैं—दो-दो नशों में चूर। कितनी ही बार ऐसा लगता है कि अब गिरी, अब गिरी, अब गिरा, अब गिरा, कुछ देखने वाले तो चीख तक पड़ते हैं, मगर कोई गिरता-विरता नहीं, उनकी मश्क में कहीं चूक नहीं है, यह सब लटके तो आपकी खातिर हैं ताकि आपको और मजा आये। आपके मजा के लिए वह आपको और भी तरह-तरह की कलाबाजियाँ दिखलाते हैं, ताकि जैसे भी हो आपकी सोयी हुई नसें जाग उठें। रोज रोज का वह नाक की सीध में चलना, रोज-रोज की वह नून-तेल-लकड़ी, रोज की वह यकसाँ, बँधी-बँधायी लीक—नसें सो जाती हैं और सर्कस वाले इस बात को जानते हैं। उन्हें यह भी पता है कि सोयी हुई नसें झटकों से जगती हैं और कि हम इन्हीं झटकों की लालच में, इसी थ्रिल की तलाश में सर्कस देखने जाते हैं।

और हम उनके करतब देखते हैं और हैरान रह जाते हैं। क्या कहने हैं साहब। और भाई, सबसे हिम्मत का शेर तो यह मौत के कुएँ वाला है। देखती हो कमला, देखते हो कैसरी? हम मौत के कुँए की जगत पर खड़े हैं और नीचे कुएँ के अन्दर एक ४-५ हार्स-पावर की मोटर साइकिल धड़धड़ा रही है। बला का शोर हो रहा है। अभी खेल शुरू नहीं हुआ। अभी भीड़ भर रही है। बाहर एक आदमी गला फाड़-फाड़कर चिल्ला रहा है—आइए-आइए··· वेल आफ डेथ···मौत का कुँआ···आइए आइए···खेल शुरू होने जा रहा है। ···और लोग आते जा रहे हैं और मोटर साइकिल का शोर बढ़ता जा रहा है। हवा में उस शोर की गूँज है और डीजे़ल का धुआँ है। डीजेल पेट्रोल से बहुत सस्ता पड़ता है और आदमी की जान डीजे़ल से भी सस्ती पड़ती है। मगर हमें सस्ते-महंगे से क्या मतलब—कोई बेचे कोई खरीदे, अपने राम तो खेल देखने आये हैं, मौत का कुआँ और वह लो, मोटर साइकिल चल पड़ी—और हमारे देखते-देखते उसने अपनी अस्सी-पचासी मील फी घन्टे की चाल पकड़ ली। एक तूफान है जो गोया बोतल में बन्द है और चक्कर खा रहा है। कमाल है कि उस आदमी का सर कैसे नहीं चकराता। मेरा तो सर धड़ से अलग उड़ता नजर आये। क्या कहें भाई, कुछ कहते नहीं बनता, गजब है, ऐसी हिम्मत!

कुछ भी हो जाय और मौत रक्खी हुई है। कोई शक नहीं मौत में। खिलाड़ी का दिल ही दहल जाय, मशीन तो मशीन, कहीं उसी में कोई ऐब पैदा हो जाय—मैं कहता हूँ कुछ भी हो जाय, छोटी से छोटी कोई बात हो जाय और फिर बच नहीं सकता यह आदमी, शर्तिया मारा जायेगा। मगर किसी को इसका गम नहीं है। मौत का कुआँ अब तो काफी ज़ोर से हिल रहा है। खिलाड़ी चक्कर खाता हुआ कुएँ के ऊपर तक आ जाता है जहाँ दर्शक खड़े हैं और कितने ही लोग चीख पड़ते हैं। सचमुच कितने जोखिम का काम है। कहाँ सीधी सड़क कहाँ कुएँ की दीवार और यह तूफानी चाल।

खेल खत्म होता है। हम लोग सीढ़ी से नीचे उतरते हैं। उसी वक्त मौत के कुएँ के दरवाजे से वह मौत का खिलाड़ी बाहर आता दिखायी देता है—मटमैले रंग की बिरजिस और बूट और भड़कीले रंगों के चार खाने की डाइनेक और चुस्त आस्तीन की कमीज पहने, रंग गोरा, कुछ पीलापन लिये हुए, काफी लम्बा, हड्डियाँ चौड़ी मगर जिस्म छरहरा, लंबे बाल रूमाल से बंधे हुए। सर की वही रूमाल खोलकर इस वक्त वह अपने माथे का पसीना पोंछ रहा है।

मैं रुक कर उसे देखने लगता हूँ। पता नहीं क्यों उसे देखकर मेरा मन इस तरह मसोस उठता है।

उसका वह पसीने से नहाया हुआ, तरोताजा, मुसकराता हुआ, उदास चेहरा—उसमें जरूर कुछ ऐसी बात थी कि मेरी निगाहें बँध सी जाती हैं और मैं थोड़ी दूर पर खड़ा होकर बड़े गौर से उसे देखता रहता हूँ।

और जितनी ही देर उस शाम मैंने उसे देखा उतना ही ज्यादा उसके बारे में मेरा कुतूहल बढ़ा और फिर मैं लगातार कई शाम सर्कस में आया, केवल उस आदमी को देखने, उससे बात चीत करने। बात चीत का सिलसिला कैसे निकलेगा और सिलसिला निकल भी आये तो आखिर बात क्या करूँगा—इसकी तरफ मेरा ध्यान नहीं गया। मैं समझता हूँ। मेरे दिमाग में जरूर कुछ न कुछ पागलपन का अंश है। अगर ऐसी बात न होती तो उस रोज मैंने बच्चों को सर्कस दिखाने के बाद, सर्कस की एक-एक चीज दिमाग से निकाल फेंकी होती—वह हाथी-घोड़े, बन्दर, भालू, लड़की, जोकर, आग में कूदने वाला, मौत के कुएं में

साइकिल चलाने वाला, सभी कुछ। आदमी तमाशा देखता है और फिर भूल जाता है, उसको पकड़ कर बैठा थोड़े ही रहता है। मगर मेरा कुछ ऐसा ही उल्टा पुल्टा हिसाब-किताब है। पता नहीं उसके भीतर ऐसी कौन-सी कोशिश थी जो लगातार कई रोज तक मुझे वहां खींच लाती।

दुनियां की इस धुंआती हुई आग ने आखिर मुझ को भी पकाया है और मैं अब इस बात को जानता हूँ कि दुनिया में एक करोड़ पेशे हैं। कोई किसी पेशे को अपनाता है, कोई किसी पेशे को। रंडी अपना जिस्म बेचती है, मैं अपनी अक्ल बेचता हूँ, मिस्त्री अपना हुनर बेचता है, यह आदमी अपनी हिम्मत बेचता है। इसमें कुछ नया नहीं है। तो भी था मैं क्या करता। उसमें कुछ ऐसी बात थी जो मेरे पास नहीं थी। उस आवारा जिन्दगी में ? शायद। शायद यही आवारापन उसका यह अजीबो गरीब मस्ती उसकी जो मस्ती नहीं है मगर फिर भी जिसमें जुए का अपना मजा है, बड़ा बीहड़ जुआ, जो मैं कभी न खेल सकूँगा, जिसमें खिलाड़ी पेट भर खाने के लिए दिन में पच्चीस बार अपनी जान दांव पर लगता है।

मौत के कुएँ से आवाज आ रही है

'कुछ नहीं मेरे दोस्त, कुछ भी नहीं। इसमें कोई मजा नहीं, कोई शान भी नहीं। घटिया जिन्दगी और उतनी ही घटिया मौत। कोई तीन बरस हुए मैंने अपने एक साथी हेनरी को मरते देखा था। मगर छोड़ो उसको···यह मौत का कुआँ है और हम इस कुएं की तलछट—गंदी सीलन-भरी। मगर तो भी जो है बहुत अच्छा है। जीने की हजार तदबीरों में से यह भी एक है।···बहुत बार जब आदमी कोई तदबीर नहीं निकाल पाता तब जिन्दगी खुद बखुद अपनी पर-वरिश के लिए एक न एक तदबीर निकाल लेती है।···सुनोगे मैं कैसे इस मौत के कुएँ में आया ?

मेरा बाप रेलवे में था—फायर मैन।

मेरी माँ मुझे जनम देने में ही मर गयी थी।

मेरे बाप ने साल बीतते न बीतते दूसरी शादी कर ली।

मेरी नयी माँ बहुत बुरी थी।

मैं सड़कों पर पला। मैं चार साल का था जब मैंने पहला सिगरेट का टुर्रा पिया और तेरह का था जब पहली बार होली में गया।

बाप को मुझसे मतलब न था, माँ का बस चलता तो मुझे जहर दे देती।

सड़क ही मेरी मां थी और सड़क ही मेरा बाप और उसने मुझे बहुत से हुनर सिखलाये। अच्छे भी और बुरे भी। मगर एक चीज उसने बड़े मार्के की सिखलायी—कि जिन्दा रहना आसान काम नहीं है और बहुत बार एक की लाश पर पैर रख कर दूसरा आगे बढ़ता है। इसीलिए जब हेनरी मरा तो मैंने आगे बढ़कर उसकी जगह ले ली और इस मौत के कुएँ में रहने लगा। मगर यह मैं आगे की कहानी कह गया।...पीछे लौटूँ? जिन्दगी मेरे लिये एक अंधी राह थी। और उस पर मैं एक अंधे जानवर की तरह चल रहा था। मैं किसी चोरों-डकैतों के गिरोह में कैसे नहीं जा मिला, मैं आज तक नहीं समझ पाया। शायद हार थककर उसी रास्ते जाता, मगर तभी बाप के तुफैल में मुझे भी रेलवे में एक छोटा मोटा काम मिल गया।...मगर नसीब मेरा पीछा कर रहा था। वर्कशाप के एक फिटर की बीवी से मेरा प्रेम हो गया। क्यों कैसे, इसको छोड़िए। मैंने जिन्दगी में कभी किसी से प्यार नहीं पाया था। इसीलिए जब कहीं मुझे इसकी झलक मिली तो मैं जनम-जनम के भूखे की तरह उस पर टूटा। वह लड़की भी मुझसे बहुत प्रेम करती थी। कम से कम उस वक्त तो मैंने यही समझा था। आखिर-कार बात खुली और चमेली के आदमी से मेरा झगड़ा हुआ। दोनों तरफ से छुरे चले और चमेली का आदमी मारा गया। मुझे दस साल की सजा हुई। मैं सजा काटकर बाहर आया तो मुझे मालूम हुआ कि जिस चमेली के पीछे मैंने दस बरस जेल काटी, वह दस दिन भी मेरे लिए न रुक सकी और मुहम्मद हुसैन नाम के एक खानसामे के साथ भाग गयी। मैं चमेली को दोष नहीं देता। उसकी बनावट ही शायद ऐसी थी। वह अकेली न रह सकती थी।...

उसके बाद मैं सर्कस में आ गया—इस मौत के कुएँ में, जिन्दगी के कुएँ से मौत के कुएँ में।

मेरा खून गरम था। मुझे जैसी तूफानी जिन्दगी की तलाश थी, वह मुझे

मिल गयी, जिस वहशियाना मुहब्बत की तड़प थी, वह मुझे मिल गयी एमीलिया के संग···वही लड़की जिसे आपने रस्सी पर चलते देखा होगा। एमीलिया के संग मेरे ताल्लुकात की बात बच्चे-बच्चे को मालूम है। किसी किस्म का छिपाव नहीं है। खुली बात है। लेकिन अब कुछ मजा बाकी नहीं है। सब चुक गया है। जिन्दगी एक तूफानी चक्कर है जिसमें एक मोटर साइकिल हर वक्त धड़-धड़ाती रहती है और दिमाग की नसें सो गयी हैं और दिल का सोज बुझ चुका है और मुझे मालूम है कि मैं ही एमीलिया का अकेला हमबिस्तर नहीं हूँ और एमीलिया को भी मालूम है कि वह मेरी अकेली महबूबा नहीं है मगर किसी को किसी से शिकायत नहीं है और यही हमारी जिन्दगी है, जलील, भूखी, मौत और नाउम्मीदी के कुएँ की नीली तलछट।···मेरी आखिरी ख्वाहिश है कि मैं बिस्तर में एड़ियाँ रगड़कर नहीं, अपने इसी आहनी घोड़े पर सवार मरूँ—आनन फानन काम तमाम, साफ-सुथरी मौत। भगवान् ने चाहा तो मेरी यह इच्छा भी पूरी हो जायगी।

अच्छा, अब मुझे छुट्टी दीजिए, काफी तमाशाई इकट्ठा हो गये हैं, भोंपू खेल शुरू होने का एलान कर रहा है···

मैं लौट पड़ता हूँ।

मेरा दिमाग झन-झना रहा है और आँखों के आगे बिजलियाँ टूट रही हैं।

बिजलियाँ ?

खोयी हुई जवान रूहें ?

हवा में सन-सनाते हुए अंधे तीर ?

मैं नहीं जानता। मैं कुछ भी नहीं जानता।

—:o:—

श्री मन्मथनाथ गुप्त

जन्मकाल	रचनाकाल
१६०८ ई०	१६३६ ई०

आमस्टर्डम का हार

परिवार में मिस्टर और मिसेज मेहरा के अतिरिक्त उनकी चार संताने थीं। तीन लड़के और एक लड़की। लड़की श्यामा सबसे बड़ी थी, और उस समय वह जूनियर केम्ब्रिज पास कर सीनियर केम्ब्रिज की छात्रा थी। नाचने, गाने, अभिनय करने में वह अपने स्कूल में सबसे आगे थी। पढ़ने-लिखने में भी वह किसी से पीछे नहीं थी। हर साल उसे कोई न कोई पुरस्कार या तगमा मिलता था। दूसरे स्कूलों के साथ वाद-विवाद तथा अन्य प्रतियोगिताओं में भी वह कई बार अपने स्कूल का मुख उज्वल कर चुकी थी।

श्यामा अपने पिता की लाड़ली थी, पर माता भी उसे कम नहीं चाहती थी। मिसेज मेहरा उसे अपना प्रतीक समझती थीं, और उसकी प्रशंसा सुनकर वह खुश होती थीं मानो उन्हीं की प्रशंसा हो रही थी। असली बात यों है कि मिसेज मेहरा अपने समय में अच्छी छात्रा नहीं थीं, यद्यपि नाचने गाने और अभिनय करने में वह भी पटु थीं। पर इस भेद को अब कौन जानता था। मिस्टर मेहरा को शायद यह बात मालूम थी, पर अब उन्हें इतनी फुरसत कब थी कि इन बातों की मगजपच्ची करें। जब लोग श्यामा की तारीफ करते, तो वे साथ में यह भी कहते—क्यों न हो, कैसी माँ की बेटी है, यह तो देखो।

मिसेज मेहरा सभी क्षेत्रों में इस प्रशंसा की अधिकारिणी नहीं थीं, फिर भी जो बात चल पड़ती है, वह चल पड़ती है, सभी इस तरह से कहते थे। श्यामा की प्रशंसा में चार चांद इस कारण और भी लग गये थे कि श्यामा के तीनों भाई राजकुमार, राजीव और रमेश न तो पढ़ने-लिखने में ही विशेष अच्छे थे, और न किसी अन्य दिशा में ही चमक रहे थे, यद्यपि उनके लिये ट्यूटर भी थे; घर

के सामने खेलने के लिये लान भी था, यानी धनी अभिभावकों की ओर से किसी प्रकार की कोई त्रुटि नहीं थी।

श्यामा की उम्र ज्यों ज्यों बढ़ती गई, त्यों त्यों उसके जौहर और अधिक खुलते गये। पिता माता को स्वाभाविक रूप से उस पर नाज था, और वह दिन ब दिन बढ़ता ही गया। मिस्टर मेहरा तो अपनी लड़की पर जान देते थे। वे कितने भी क्रोध में होते, श्यामा के सामने आ जाने पर एक दम शान्त हो जाते थे। भाइयों ने पिता के इस मनोविज्ञान को अच्छी तरह समझ लिया था, और वे इसका पूरा फायदा उठाते थे। पहले उनको किसी बात की जरूरत होती, जैसे नये क्रिकेट बैट, सैर या सिनेमा आदि के लिये पैसों की या कार को कहीं ले जाने की जरूरत होती, तो ये या तो स्वयं मिस्टर मेहरा को पकड़ते या मम्मी के जरिये से कहलाते थे, पर अब इस प्रकार की सारी फरमाइशें बड़ी बहिन के जरिये से की जाती थीं।

श्यामा की माता सरोज इस बात से खुश ही हुई, क्योंकि रोज का झंझट छूटा। लड़कों की मांग पूरी कराते रहने के कारण निजी मांगें रह जाती थीं। फिर इस बेकार की हाय हाय से फायदा ही क्या था? इसके विपरीत श्यामा पर जब भाइयों की मांगों को मनवाने का नया भार पड़ा, तो वह बहुत खुश हुई। पिता पर अपनी शक्ति की परीक्षा करने पर उसे वही खुशी होती थी, जो किसी नये शिकारी को शिकार में सफलता प्राप्त कर होती है। इसके अलावा अपने पुरस्कारों और तगमों के साथ भाइयों में और उसमें ईर्ष्या की जो खाई उत्पन्न हो चुकी थी, वह इससे बहुत कुछ पट जाती थी। कम से कम मालूम तो ऐसा ही हुआ। श्यामा चाहती थी कि उसके भाइयों को भी उसी प्रकार से पढ़ाई-लिखाई तथा खेल कूद में पुरस्कार मिलें, जिस प्रकार उसे मिलते थे, तो इसमें उसका क्या दोष था? दोष क्या यह तो गौरव की बात थी, पर राजकुमार और राजीव व (रमेश तो अभी १० वर्ष का था, और बिना समझे बूझे अपने बड़े भाइयों के कहने में चलता था) उसके किसी पुरस्कारों की बात सुनकर ऐसा मुँह बना लेते थे कि वह सहम जाती और अपने को ही दोषी समझती थी। भाइयों के इस रुख को देखकर वह अब अक्सर पुरस्कारों की बात छिपा जाती थी, यानी उन पर शोर नहीं

मचाती थी। चुपके से पापा और ममी को बता देती थी।

पर ये पापा ही तो सारी आफतों की जड़ थे और उनको दोष भी क्या दिया जाय, क्योंकि उन्हें क्या पता था कि बड़ी बहिन को पुरस्कार मिलने पर भाई नाराज होते हैं, और इसमें सबका गौरव समझने के बजाय अपनी पराजय समझते हैं। वह तो बिचारी पुरस्कार की खबर को छिपाती थी, पर पापा जो उसी समय से ढोल पीटना शुरू कर देते थे। कोई मिलने आवे तो सबसे पहले चिल्लाकर यह कहते थे—सुना है शम्भू को एक प्राइज मिला? यह देखो...

देर तक इसी की बातचीत चलाते, मानो वह व्यक्ति इसी बात को जानने के लिये आया हो। ऐसे मौके पर मिस्टर मेहरा आशुतोष हो जाते थे, घर और बाहर के लोग इसका पूरा फायदा उठाते थे। पापा का इस प्रकार खुश होना, खुश रहना और खुश करना श्यामा को बहुत अच्छा मालूम होता था। उनका व्यापार इतना लम्बा चौड़ा था, और उसमें इतने सिर दर्द थे कि घर में भी टेली-फोन हर वक्त खड़कता ही रहता था, और वे खिन्न नहीं तो गजब के व्यस्त जान पड़ते थे। इसलिये श्यामा पापा के आनन्द की इन घड़ियों का बहुत उपयोग करती थी।

पर इनका असर भाइयों पर अच्छा नहीं पड़ता था, यद्यपि वे ऐसे ऐसे अव-सर का पूरा फायदा उठाते थे। यहाँ तक तो गनीमत थी। पर जब पापा डिनर की मेज पर अपने लड़कों के सामने शम्भू की प्रशंसा कर उसे उनके सामने एक-एक अनुकरणीय माडल के रूप में रखते थे, तब हद हो जाती थी। श्यामा को ऐसे समय जैसे भागने के लिए रास्ता नहीं मिलता था। उसका मुँह इतना सा रह जाता था, और वह किसी तरह प्रसंग को बदल देने की चेष्टा करती थी। राज-कुमार ऐसे अवसर पर कांटा और छूरी में इस प्रकार लग जाता था, मानो वह है और उसका डिनर है, बाकी पार्थिव जगत से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। राजीव खाता जाता था, और बीच-बीच में अपनी दृष्टि से श्यामा पर हमला करता था, मानो वह कोई ईसा हो, और श्यामा जुडास!

भाइयों के रुख से प्रभावित होकर ऐसे मौकों पर रमेश चंचल उड़ती हुई दृष्टि से इधर उधर देखता था और सूप गिराकर कपड़ों और मेजों को खराब

करता था। सरोज मिस्टर मेहरा की बातचीत में कोई दोष नहीं पाती थी। पर कई ऐसे बार प्रसंग छिड़ने पर रमेश के व्यवहार में एकाएक परिवर्तन की बात ताड़ चुकी थी, इस कारण जब मिस्टर मेहरा खाने की मेजपर श्यामा की प्रशंसा शुरू करते तब वह साधारण से अधिक हंसमुख होकर मिस्टर मेहरा की तरफ असहाय दृष्टि से देखती रहती थी। कहने को तो वह साफ-साफ कह सकती थी, पर उसके सामने यही खयाल रहता था कि ये इस समय खुश है, उन्हें कैसे रोका जाय? दिन भर जिस व्यक्ति के सामने अत्यन्त गम्भीर आंकड़े और नीरस व्यौरे रहते थे, उसे थोड़ी देर की इस चपल खुशी से वंचित कैसे किया जाय।

मजबूर होकर सरोज प्रसंग को बदलने की चेष्टा में कुछ न कुछ कह बैठती थी, जैसे—हम लोग अब की बार काश्मीर चलेंगे—कहकर वह श्यामा को आँख मार देती थी, जिसका मतलब यह होता था कि मैंने तो बात चला दी, अब तू इसे आगे बढ़ा।

श्यामा इसी प्रसंग को लेकर उड़ जाती थी, जैसे—हां ममी अब की बार काश्मीर चलना चाहिये, और हम लोग उन जगहों को भी देखेंगे, जहां कबाइली चढ़ आये थे।

रमेश बीच में कह उठता—कबाइली कौन?

अब सब लोग एक साथ रमेश को ज्ञान दान करने के लिये आगे आते। प्रसंग बदल जाता।

इसलिये जब भाइयों ने श्यामा के जरिये से अपनी फरमाइशें भेजनी शुरू कीं, तो स्वाभाविक रूप से श्यामा बहुत प्रसन्न हुई। कम से कम एक मामले में मां की जगह ले पाने पर उसकी खुशी और बढ़ गई। पर थोड़े ही दिनों में उसने यह अनुभव किया कि उसके भाई ममी के बजाय उससे अपनी जा-बेजा फरमाइशें भेजवाने तो लगे, पर उसे इज्जत करने के बदले वे उसे अपनी दबैल समझ रहे हैं, और कृतज्ञ होने के बजाय उसे दबाते और धमकाते हैं।

इस बात को हृदयंगम कर इस कार्य में उसका उत्साह धीमा पड़ गया, और उसने एक बार राजकुमार से कह दिया—जाकर ममी से कहो, मुझे पढ़ना लिखना है।

राजकुमार ने तेवर चढ़ाकर कहा—बड़ी पढ़ने-लिखने वाली बनी है। इतनी पढ़ने-लिखने वाली है तो कल रविवार को क्यों नहीं पढ़ी, दिन भर तो किशोर और जग्गू के साथ बैडमिंटन खेलती रही।

श्यामा कोई कारण न होते हुये भी एक बार झेंप गयी, पर फौरन बोली—खेलती थी तो क्या ? मुझे टूर्नामेंट में जो शामिल होना है।

राजकुमार ने उत्तर दिया—अगर प्रेक्टिस करनी थी, तो हम लोगों से खेल सकती थी, पर तुम्हें तो हा हा ही ही चाहिये, इसीलिये उनके गोल में जा पहुँची थी—कहकर उसने लाल आँखें दिखलाई।

श्यामा बहुत परेशान होकर बोली—यह तुम क्या कहते हो राज ? वे अच्छे खिलाड़ी जो ठहरे, और तुमने यह नहीं देखा कि वे दो एक तरफ थे और मैं एक तरफ थी।

'देखा क्यों नहीं ? सब कुछ देखा, खेल तो महज बहाना था, सिर्फ हा हा ही ही हो रही थी। और यह खूब कहा कि वे अच्छे खिलाड़ी हैं। दोनों मिलकर तुमसे हार रहे थे, और मैं तुम्हें हमेशा हराता हूँ।'

श्यामा चीं चीं करती हुई बोली—वह दूसरी बात है, न मालूम क्यों तुम्हें सामने देखकर मैं खेल ही नहीं पाती।

'सो क्या खेल पायेगी ? तुम्हें तो किशोर ऐसा हर बात में डियर-डियर कहने वाला और जग्गू जैसा जोकर चाहिये। फजूल की बातें न बनाओ। जाकर पापा से पचास रुपये मांगकर मुझे दे दो। और हां एक बात याद रहे कि इन रुपयों को अपने नाम से मांगना।'

'अपने नाम से कैसे मांगू ?'

'कहो कि टूर्नामेंट के लिये चाहिये।'

'टूर्नामेंट के लिये कैसे कहूँ ?'

'कहो कि रैकट लेना है, और कुछ बात बना देना। समझी-कहकर उसने आज्ञा दी।'

श्यामा बोली—मैं पापा जी से झूठ नहीं बोलूँगी !

कहने को तो उसने कह दिया, पर अन्त तक राजकुमार ने किशोर और

जग्गू के साथ बेडमिंटन खेलने के मामले को इतना फेरा कि श्यामा को मजबूरी से उसकी बात माननी पड़ी। न तो राजकुमार इस बात को भलीभाँति समझता था कि किशोर और जग्गू के साथ श्यामा की घनिष्ठता में कौन सी आपत्तिजनक बात हो सकती है, और न श्यामा ही इस बात को समझती थी, फिर भी एक तरफ से आक्रमण और दूसरी तरफ से अज्ञात भय रहा।

जब राजकुमार को इस पेंच की सफलता का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया, तब वह बार-बार इसका प्रयोग करने लगा। यहाँ तक कि श्यामा का जीवन दूभर हो गया। फिर भी इस निर्यातन के अन्दर भी उसे ऐसा मालूम होने लगा कि उसके सामने एक नयी दुनियाँ खुलती जा रही है, एक ऐसी दुनियाँ जिसकी सम्भावनाओं से वह अपरिचित थी। किशोर, जग्गू तथा ऐसे ही नवयुवकों को जिन्हें वह अब तक खेल का साथी मात्र समझती थी, उन्हें अब वह एक नयी दृष्टि से खोजने लगी। अब इन लोगों के सामने वह कुछ-कुछ शर्माने लगी। इस शर्म में खोज की प्रवृत्ति अधिक थी, कौतूहल भी था, और कुछ भय भी।

जो कुछ भी हो घर में आने जाने वाले श्यामा को अब भी उसी तरह से सराहते थे। उसके पापा के नितान्त कामकाजी मित्र भी समय निकाल कर उससे दो घड़ी बात करते थे, जहाँ कोई बात नहीं निकलती, वहाँ बात निकालते थे। ऐसा वे केवल मिस्टर मेहरा को बहलाने के लिये ही करते थे, ऐसी बात नहीं। सम्भव है वह भी उद्‌देश्य सिद्ध होता हो, पर यही उन का उद्‌देश्य नहीं होता था।

मिस्टर मेहरा के कुछ ऐसे दोस्त भी थे, जो मिस्टर मेहरा से शायद मिसेज मेहरा के अधिक दोस्त थे। मिस्टर मेहरा की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति में ऐसे लोग विशेषकर मिस्टर सूरी आते थे, और न मालूम मिसेज मेहरा से घंटों क्या बातें करते थे, और हँसते हँसाते थे। वे मिसेज मेहरा के किसी तरह से काज़िन लगते थे। सूरी लड़कों को और श्यामा को खूब हँसाते थे। वे मुँह फुलाकर एक तरह की लू लू लू की आवाज करते थे, जिससे रमेश बहुत खुश होता था, और हँसते हँसते लोट पोट हो जाता था। मिस्टर सूरी कोई विशेष काम नहीं करते थे, पर उनकी आमदनी अच्छी बतायी जाती थी उनके परिवार में सिवा

उनके कोई नहीं था, लोग यह कहते थे कि बीस साल पहले उन्होंने किसी से प्रेम किया था, पर उसमें असफल हो जाने के कारण उन्होंने विवाह से ही हाथ खींच लिया था। जो कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि वे मिसेज मेहरा के घनिष्ठ मित्रों में थे। मिसेज मेहरा पर उनका प्रभाव भी बहुत अधिक था।

पर कितना अधिक था, यह मिसेज मेहरा को तब पता लगा, जब उन्होंने एकाएक देखा मिस्टर सूरी का आनाजाना तो पूर्ववत जारी है, पर वे लड़कों के कमरों में बैठकर हँस हँसा कर चले जाते हैं। मिस्टर सूरी की तरफ इस परिवार का यानी इस परिवार के बालिग सदस्यों का जो रुख था, उसमें करुणा का उपादान बहुत काफी था। मिस्टर मेहरा यह समझते थे कि चलो इस बेचारे का अपना कोई नहीं है, आकर लोगों से गप्पें मारता है, ठीक है, मिसेज मेहरा यह समझती थीं कि अभागा भला आदमी है, हंसमुख है, लड़के इसे पसन्द करते हैं, फिर क्यों न इसे यहाँ आकर गमगलत करने दिया जाय? मिस्टर मेहरा और मिसेज मेहरा के इस रुख के कारण लड़के तथा नौकर यहाँ तक कि कुत्ता उन्हें घर का आदमी समझता था। प्रति दिन दो चार घंटे इस घर में बिताने पर भी वे सन्ध्या के बाद इस घर में कभी नहीं रहते थे।

पर इस नियम में भी इन दिनों व्यतिक्रम दीख पड़ा। जिस दिन ट्यूटर आते थे, उस दिन तो मिस्टर सूरी चल देते थे, पर जिस दिन छुट्टी रहती थी, उस दिन वे अक्सर सन्ध्या के बाद भी लड़कों के साथ बातें करते हुए पाये गये। मिसेज मेहरा ने ध्यान से सारी बातों को देखा, तो उन्हें यह प्रतीत हुआ कि उन में कम दिलचस्पी का कारण शायद यह है कि मिस्टर सूरी श्यामा में दिलचस्पी ले रहे हैं। यों तो देखने के लिये वे सब बच्चों से मिलते थे, पर श्यामा पर वे विशेष आसक्त मालूम होते थे। न मालूम क्यों यह बात उन्हें मालूम हुई। यद्यपि मिस्टर सूरी सरल और सच्चरित्र समझे जाते थे, पर वे यूरोपीय कायदे के अनुसार मिसेज मेहरा के सौन्दर्य की भी तारीफ करते रहते थे। पर यह क्या हो गया कि वे अब लड़कों में ही उलझे रहते हैं? एक क्षण के लिये मिसेज मेहरा की आँखों में एक पाशविक चिनगारी खेल गई। अच्छा यह बात? जिन मिस्टर सूरी को वे बराबर भद्र व्यक्ति समझती थीं, वह उनकी आँखों में एकाएक एक

चरित्रहीन नारी शिकारी के रूप में हो गये।

पर कहने को वह कुछ भी नहीं कह सकती थीं। ऊपर से सभी बातें वैसी ही बनी रहीं। इस बीच में मिसेज मेहरा को मालूम हुआ कि मिस्टर सूरी की धींगा-धींगी बढ़ रही है। एक बार तो उनके मन में आया कि मिस्टर सूरी से कुछ साफ साफ बातें करें। ऐसा करने के लिये वह अपने कमरे से बाहर भी निकलीं, पर कुछ सोचकर अपने कमरे में वापस चली गयीं। फिर उन्होंने बड़े आइने के सामने खड़े होकर अपने को बड़ी देर तक देखा, फिर लोहे के सन्दूक को खोलकर उस हार को निकाला, जिसे मिस्टर मेहरा बीस साल पहले आमस्टर्डम से बनवा लाये थे। यह किसी प्रसिद्ध रानी शायद स्वीडन की रानी के हार के नमूने पर बना था, और केवल हीरे और मोतियों का था। डिजाइन इतना सुन्दर था कि उसको देखते ही मन-मुग्ध हो जाता था। इसमें ऐश्वर्य और कला का अभूतपूर्व समन्वय दृष्टिगोचर होता था। इस हार को निकाल कर मिसेज मेहरा खिल सी गयीं, मानो उनकी सारी समस्याओं का समाधान मिल गया हो।

मिसेज मेहरा ने इस हार को बड़ी अदा से पहिना, फिर एक बार अपने को आइने में देखा, कपड़े को कहीं से खींचा, ब्लाउज को कहीं से सीधा किया, फिर चेहरे पर मनमोहनी हंसी खिलाकर वह बच्चों के कमरों की तरफ चलीं। यह एक तरह की युद्ध यात्रा थी। सचमुच यह हार युद्ध का एक तोपखाना था। दस साल पहले इस हार को एक बार इसी उद्देश्य से पहिना गया था। मिसेज मेहरा को यह खबर लगी थी कि मिस्टर मेहरा किसी एंग्लो-इंडियन महिला पर लट्टू हो रहे हैं। एक दावत में मिसेज मेहरा और वह महिला दोनों निमन्त्रित थीं। मिसेज मेहरा इस हार को उस दिन पहिन कर गयी थीं, और जान बूझकर मिस्टर मेहरा को लेकर उस महिला के साथ एक मेज पर बैठ गईं। वह महिला इस हार से इतनी चकाचौंध हो गई कि उसमें हीनता बोध के लक्षण स्पष्ट हो गये और वह ऐसे व्यवहार करने लगी कि मिस्टर मेहरा बहुत खिन्न हुए और मौका पाते ही मेज छोड़कर उठ गये।

इस बीच में एक आध शादी-ब्याह के अवसर पर यह हार घंटे दो घंटे के लिये पहना गया था, पर आज यह फिर होड़ में पहना गया था। होड़ भी किस

के विरुद्ध कि अपनी कन्या के विरुद्ध। जब सरोज हार पहिन कर मिस्टर सूरी के सामने पहुँची, तो वे एकदम चौंधियाकर खड़े हो गये। उन्होंने मिसेज मेहरा को कभी इस हार को पहने हुए नहीं देखा था। बच्चों ने भी उसे घेर लिया और रमेश ने ऊँचे होकर हार के विभिन्न अंशों पर हाथ फेरना शुरू किया। मिस्टर सूरी अवाक होकर सरोज को देखने लगे, मानो उसे पहली ही बार देखा हो। इस प्रकार विजय सम्पूर्ण थी। सरोज वहाँ पर कुछ देर ठहर कर कमरे से निकलने ही वाली थी कि इतने में मिस्टर मेहरा आ गये, और हार पहिने हुये मिसेज मेहरा को देखकर बोल उठे आज किसपर विजय की तैयारी है?

मिसेज मेहरा बोलीं—बुढ़ापे पर। मैंने सोचा कि पड़े-पड़े इसमें जंग लग रहा होगा, इसलिये पहिन लिया—कहकर उसने अपने को सामने के आइने में देखा। बोली—यह हार क्या है, जादू की पुड़िया है।

मिस्टर मेहरा अपने कमरे की ओर चले गये और मिसेज मेहरा तथा बच्चे भी उनके साथ गये। मिस्टर सूरी एक क्षण तक खड़े रहे, फिर वे भी सबसे पीछे चलकर मिस्टर और मिसेज मेहरा से विदाई लेकर चले गये। इस घर से वे हमेशा खुश होकर जाते थे, पर आज न मालूम क्या हुआ था कि उनके अन्दर एक अज्ञात भय और सन्देह झांकने लगा था। वे वहां से एक रेस्टोरेंट में गये, और प्यालों में अपना गम गलत करने लगे। उनके कल्पना नेत्रों के सामने बीस साल पहले की उनकी प्रेयसी का चेहरा नाच गया। उन्हें जीवन में आज पहली बार एक परिवार की कमी मालूम हुई... और यह मालूम हुआ कि वे मेहरा परिवार के कोई नहीं हैं, महज एक उपयाचक मेहमान हैं।

विजय होने को तो हो गई, पर श्यामा के प्रति सरोज का रुख अजीब तरीके से बदल गया। वह श्यामा की रूपराशि को देखती, तो पहले की तरह खुशी नहीं होती थी कि यह तो हमारा ही एक लघु संस्करण है। अब लघु संस्करण के बजाय वह जैसे प्रतियोगिनी हो गई थी! थोड़ी-थोड़ी सी बात पर वह उसे डांट देती थी—यह ढंग अच्छा नहीं है, ऐसे नहीं हँसना चाहिये, बड़े घर की लड़कियाँ ऐसे नहीं बातें करतीं, इत्यादि।

श्यामा पहले पहल तो सहमी, पर उसके अन्दर भी यौवन जोर मार

रहा था। जब अति हो जाती, तो वह कह देती—ममी यह जमाना दूसरा है, आजकल यही तरीका है, न मानो तो बात्रा परिवार में जाकर देखो, इत्यादि!

माता और कन्या में मन मुटाव रहने लगा। मिस्टर सूरी ने वातावरण में कोई ऐसी बात पायी कि उन्होंने आना कम कर दिया। शराब में अधिक समय देने लगे।

राजकुमार ने बहिन की विपत्ती ताड़ ली, पर बजाय इससे फायदा उठाने के उसने ममी के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बना लिया। जब ममी श्यामा से कहती थी, यह ढंग अच्छा नहीं है, वह ढंग अच्छा नहीं है, तो राजकुमार बीच में कूद पड़ता, कहता—ममी तुम यह समझती नहीं हो कि पापा और तुम्हारे युग के बाद यमुना के पुल के नीचे बहुत पानी गया है।

सरोज झुंझला कर कहती—तो क्या हमलोग बैक नम्बर हो गये?

'नहीं बैक नम्बर क्यों, क्लासिकल हो गये, पर हमलोग तो आधुनिक युग के हैं।'

इसपर सरोज झुंझला कर कह उठी—मालूम है, तुम्हारे पापा पन्द्रह साल यूरोप में रहे और मैं भी सात साल रही।

पर इन तर्कों से वह अपनी सन्तानों के विरुद्ध मुकदमा जीत नहीं पाती थी। नतीजा यह रहा कि संघर्ष चलता रहा। राजकुमार हमेशा श्यामा का साथ ही देता हो, ऐसी बात न थी। वह तो देख लेता था, कब किस के साथ देने में फायदा है। राजीव भी कुछ कुछ ऐसा ही करता था, यों तो वह राजकुमार का पुछल्ला बना रहता था, पर जब राजकुमार से उसकी कुछ खटक जाती थी, तो वह उसके विरोधी पक्ष का साथ देता था, चाहे कोई भी बात हो। रमेश तो किसी गिनती में ही नहीं था, यद्यपि वह भर सक कोशिश करता था कि लोग उसे पांचवें सवारों में समझें, और उसकी राय की कद्र करें। केवल एक ने ही घर में अपने सनातन रुख को कायम रखा था। वे थे मिस्टर मेहरा। उनके रुख में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, बल्कि वे श्यामा पर और भी अधिक जान देने लगे थे। बीच बीच में अस्पष्ट तरीके से ऐसा इंगित करते थे कि श्यामा उनको छोड़

जायेगी, और जब वे ऐसा कहते थे, तो श्यामा पर प्यार की अधिक वर्षा करते थे। कई बार जब मिसेज मेहरा ने उनसे शिकायत की—तुम लड़की को बिगाड़ रहे हो, तो वे कह देते—जल्दी चली जायेगी—कहकर वे ब्यौरे बताने लगते थे।

सचमुच एक दिन श्यामा की शादी पक्की हो गई। मिसेज मेहरा ने अब दोपहर का तीन घंटा सोना बन्द कर दिया, और दर्जियों, सोनारों राजों, न मालूम किस किस से सिर खपाना शुरू किया। एक चीज बनती, वह पसन्द नहीं आती, उसे बिगाड़ कर फिर बनाया जाता, यही कार्य क्रम चलता रहा। मां और बेटी के बीच की खाई पट गयी, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, पर वह भुला दी गयी। युद्ध विराम सा रहा। अब सरोज को इतनी फुर्सत ही नहीं मिलती थी कि श्यामा के कामों में मीनमेख निकाले। श्यामा भी अक्सर घर पर ही रहती थी, क्योंकि न मालूम कब दर्जी या सोनार को उसकी जरूरत पड़ जाय?

तीनों लड़के बहन के ब्याह के नाम पर खूब मौज उड़ाते थे। अब किसी बात के लिये न बहन के पास जाने की जरूरत थी, और न ममी के पास कोई किसी को पूछता ही नहीं था कि कितना खर्च हो रहा है।

बड़ी धूमधाम से शादी हो गई, और विदाई का समय आ गया। विदाई का मुहूर्त करीब-करीब आ चुका था। वर बम्बई में व्यापार करता था। गाड़ी ८-५५ की थी। आठ बज चुके थे। यद्यपि सामान आदि जा चुका था, और सीटें रिजर्व थीं, फिर भी अब रुकना असम्भव था। सब रस्में अदा हो चुकी थीं, वर और वधू तथा तीनों भाई उसी मोटर पर सवार थे, जिससे वर-वधू को स्टेशन जाना था। मिस्टर मेहरा तो पोर्च तक नहीं आये, वे शोक से इतने विह्वल हो रहे थे कि तबियत खराब का बहाना करके ऊपर ही रह गये थे। मिसेज मेहरा स्टेशन जाना चाहती थीं, पर पति को सम्हालने की दृष्टि से नहीं जा रही थीं।

जब मोटर स्टार्ट हुई, तो एकाएक मिसेज मेहरा फफक-फफक कर रोने लगीं। उधर श्यामा का भी यही हाल हुआ। इतने में मिसेज मेहरा ने ड्राइवर से कहा—ठहरो।

कहकर वह दौड़ती हुई भीतर गई, और जल्दी से आमस्टर्डम से लाये हुए उस हार को लेकर आयी, और श्यामा को पहना दिया। श्यामा को आज तक

एक बार भी जिस हार को पहनने की आज्ञा नहीं मिली थी, आज वही हार उसके गले में था। वह बुरी तरह रो पड़ी, यद्यपि वर बगल में बैठा था, और कुछ नहीं तो शर्म से उसे ऐसा नहीं करना चाहिये था। राजकुमार गाड़ी से बोल उठा—मम्मी मेरी अच्छी मम्मी, तुम कितनी अच्छी हो। और उसने श्यामा को आलिंगन पाश में बांध लिया।

यद्यपि राजकुमार से उन दिनों राजीव का खटका हुआ था, फिर भी वह चुप रहा। रमेश को मम्मी के बुरी तरह रोने पर बड़ा कष्ट हुआ। बड़ी देर से यह गुत्थी सुलझा रहा था कि जिस वर के कारण सबको श्यामा से अलग होना पड़ रहा है। उसको सब लोग इतना आदर क्यों कर रहे हैं, क्यों नहीं उसे धक्के देकर मोटर से उतार देते, और बहन को घर ले जाते। उसने सब के अनजान में अपना घूसा ताना, और यह प्रतीक्षा करने लगा कि कोई इशारा करे तो वह पहला घूंसा मारे। बाकी काम तो केहरसिंह ड्राइवर कर सकता था। पर किसी ने इशारा नहीं किया, और उसका घूसा तना का तना रह गया, और मोटर स्टार्ट हो गयी।

—:०:—

श्री व्रजेन्द्रनाथ गौड़

जन्मकाल　　रचनाकाल
१९२० ई०　१९३७ ई०

रात का मेहमान

मीरा अँगीठी सुलगाने का प्रयत्न कर रही थी। कई दिन से पानी बरस रहा था और कोयले सील गए थे। आसमान पर बादल छाये थे और हवा बन्द थी। सीले हुए कोयलों का जलना दूभर हो रहा था। मीरा लालटेन में भरा तेल बार बार कोयलों पर छिड़कती, दियासलाई जलाती आग भक्क से लपक कर रह जाती, घना घना सफेद धुआँ सामने के नीम की पत्तियों में जाकर बिखर जाता, और कोयले न जल पाते।

मीरा उफ़ करके धोती का पल्ला खींचकर चेहरे पर बिखरा पसीना और धुयें के कारण बहते हुए 'आँसू' पोंछ डाले, अँगीठी वहीं छोड़ी और आप कमरे में जाकर खरहरे पलंग पर पड़ रही। फिर खीझते हुये, आँखों पर हाथ रखकर चाहा कि अपनी विवशता पर जी भरकर रो ले। किन्तु मन उमड़-उमड़ कर रह गया और आँखों में आँसू न आ सके पानी बहता रहा। वह वैसी ही पड़ी रही।

मीरा सुबह पाँच बजे जागती है, जी न चाहे तब भी जागना ही पड़ता है। साढ़े पाँच बजे दिवाकर को जगाती है [illegible] ! निक्कुट वाला आवाज लगाता है, लेकिन उससे रोज [illegible] ने के शुरू में चार छै दिन ले लिए जाते हैं; फिर क्यों वह वहीं आकर चीखता है ! उधर से जबर्दस्ती ध्यान हटा कर मीरा जल्दी-जल्दी सब कामों से निपटती है। एक सन्यासी रोज की तरह प्रभात फेरी गाता हुआ निकल जाता है। मीरा खाना बनाती है, पति को खिला पिलाकर चार परांवठे और सूखा शाक छोटे कटोरदान में रख देती है। कटोरदान थैले में रख कर दिवाकर नीचे उतरता है, मीरा उसके साथ आती है।

द्वार खोलने से पहले मीरा की ठुड्डी स्पर्श कर के वह कहता है—मीरा जाता हूँ' मीरा उस समय यह नहीं कह पाती कि थोड़ी देर तो रुको बस मुस्करा देती है—चुपचाप। वह जानती है कि दफ्तर ढाई मील दूर है और वहां साढ़े आठ बजे तक जरूर पहुँच जाना चाहिये। किन्तु वह मन ही मन तनिक विह्वल अवश्य हो उठती है—सोचती है, इतना कमाते हैं, वह दिन जाने कब आयेगा कि साईकिल ले सकेंगे! दिवाकर चला जाता है और मीरा खाट पर आकर पड़ रहती है उस समय उसे बड़ी थकान मालूम होती है। सोचने लगती है कि अब स्वामी जा रहे होंगे—लम्बे-लम्बे कदम बढ़ाते हुए। फिर खाट पर लेटे-लेटे सामने की खुली खिड़की में से नीचे झांककर देखती रहती है कि बच्चे स्कूल जाने लगे हैं, मिठाई वाला जोर-जोर से पुकारता हुआ निकल गया है। सामने वाले मकान में जो बाबू रहते हैं, वे भी किसी दफ्तर में ही हैं; रोज कपड़े बदलकर जाते हैं। तभी साइकिल की घन्टी सुन पड़ती है और नुक्कड़ के मकान में रहने वाला युवक सन्न से साइकिल पर निकल जाता है। मीरा जानती है कि इसी युवक के यहां रेडियो लगा है। धीरे-धीरे यह कोलाहल और लोगों का आना-जाना समाप्त होने लगता है, बगल के मकान की घड़ी में बजने वाले घन्टे से पता लगता है कि अब दस बज गए हैं—फिर न जाने क्यों उसे मायके का सुख याद आने लगता है, वह उधर से मन को खींचने की कोशिश करते हुए उठ बैठती है। बाहर आकर दाल या चावल के कुछ दाने छज्जे पर बिखेर देती है। नाम की शाखों से चहकती हुई चिड़ियां वहां जमा हो जाती हैं और दाने चुगने लगती हैं। तब मीरा को बड़ा सन्तोष होता है न जाने क्यों?

एक तोता उसने पाला था, उससे मन बहल जाता था, दिन भर उसे खिलाना-पिलाना, उससे बातें करना, 'मिट्ठू, कहो सीताराम' सिखाना, धूप से उठाकर कमरे में लाना, पिंजरा साफ करके तोते को नहलाना। हरी मिर्ची दिखा दिखा कर जब वह उसे परेशान करती थी तो कैसा अच्छा लगता था। जो उसे बिल्ली न ले जाती, तो क्या मीरा के लिए काम की कमी थी, और तब क्या यह अकेलापन यों उसे काटने को दौड़ता!

धीरे-धीरे दिन और चढ़ने लगता है। भिखारियों, फलवालों और बिसातियों

की आवाजें गली में सुनाई पड़ती तब वह रसोई में जाकर अगर भूख लगती तो कुछ थोड़ा बहुत खा लेती है, खाने के बाद आराम करने के लिए खाट पर पड़ रहती। कुछ देर बाद उठती, चौका-बरतन साफ कर डालती, आँगन धो लेती, कमरे में झाड़ू लगाने पहुँचती, तो याद आता है कि कमरा पहले ही झाड़-बुहार चुकी है, झुंझलाकर झाड़ू रख देती और फिर पलंग पर पड़ रहती। सोचने लगती कि स्वामी दफ्तर में कलम घिस रहे होंगे! तभी गली के नुक्कड़-वाले मकान में लगा रेडियो, सिनेमा के गीत सुनाने लगता, फिर रिकार्ड बजना खत्म हो जाता। कमरे में चारों ओर दृष्टि डालकर मीरा सोचने लगती है कि अब...? वह उठती और दीवार पर एक लटके कलेन्डर को धोती के पल्ले से पोंछ देती, तारीखें देखती रहती, फिर मेज के पास आती, वहाँ चार-पाँच जो किताबें रक्खी थीं उन्हें उलट-पलट कर देखती और फिर वैसे ही, तरतीब से लगा देती पढ़ने का ख्याल आता तो उधर से मुँह फेर लेती। इन किताबों को न जाने कितनी बार तो वह पढ़ चुकी है! दोनों कुर्सियों पर पड़ी गद्दियाँ उलट-पलट कर रख देती। कभी पलंग को बाहर डाल देती और कमरा धोने में समय बिताने लगती। चर्खे पर कपड़ा चढ़ाकर तुलसी पर रख दिया था, अब उसपर गर्द छा गई है। कब से उसका तकुआ टूटा पड़ा है, लेकिन कौन उसे ठीक कराये, समय काटने का वह भी अच्छा साधन था! फिर वह रसोईघर में जाती है। अलमारी में रक्खे मसाले के डिब्बों को देखती है। सब मसाले तो कुटे पिसे रक्खे हैं, उनका क्या करे? सब डिब्बे फिर वैसे ही झाड़-पोंछकर रख देती, गली में सब्जीवाले की आवाज सुनाई पड़ती लेकिन उससे भी उसे कुछ नहीं खरीदना है। बगल के मकान की घड़ी दो का घंटा बजाती तो मीरा विवश होकर सोचती कि अभी तो स्वामी के आने में आठ-नौ घण्टे बाकी हैं। यह कल्पना उसे असह्य हो जाती और वह चारों ओर आँखें फैला-कर देखती कि अब क्या करे! बक्सों में भरे कपड़े निकाल लेती फिर उन्हें उलट-पलट कर दूसरी तरह से सजाकर रख देती। फिर लालटेन साफ करने लगती, राख और चूने से चिमनी चमका देती। बाँस की टोकरी में स्वेटर रखा था। वह अब उसे न उधेड़ेगी। चार मर्तबा तो उधेड़-उधेड़ कर बुन चुकी है, वैसे ही ऊन की बटान कमजोर होने लगी...!

छत पर जाने के लिए जीना नहीं है, क्या जाने मीरा कि शहर कैसा है! कैसी-कैसी बड़ी छोटी ऊँची नीची इमारतें हैं? साँझ को आकाश के पश्चिम ओर पर कैसे-कैसे रंगीन बादल आते हैं। पंछी कैसी पाँत बना कर दूर क्षितिज के किनारों में उड़े चले जाते हैं। जब से आई है, एक बार की तो कसम नहीं खाती, वैसे सिनेमा देखने का सौभाग्य उसे प्राप्त नहीं हुआ! घर से बाहर भी बस दो-तीन बार ही गई होगी। नीचे एक कोठरी और जरा सा आँगन है, सो भी खुला हुआ नहीं है। वहाँ इतनी सीलन रहती है कि गर्मियों में भी उमस पैदा हो जाती है और बदबू आने लगती है। सहन में खड़ी होकर क्या वह रोज-रोज रसोई की काली दीवारें, नीले आसमान का जरा सा भाग, नल की टोंटी और नीम की शाखें देखा करे? छत की खिड़की के बाहर छज्जे पर नीम की शाखें झूमती रहती हैं, उन पर दिन भर चिड़ियाँ शोर किया करती हैं। सामने दीक्षित जी का कुआँ है, उसके बगल में उनका बड़ा सा मकान और चबूतरा है। उसके पास वाला मकान किसी सेठ का है, शायद उनकी कोई बड़ी दुकान है, जिसमें कई नौकर-चाकर काम करते हैं। सेठ जी रोज दस बजे घर से निकलते हैं और रात को आठ-नौ तक वापस आ जाते हैं। उस घर के बाद गली का मोड़ है और वहाँ जो मकान है, उसमें रेडियो लगा है। इसके बाद किसका मकान है और वह कैसा है, सो मीरा को नहीं मालूम। दुनिया में रहकर भी दुनिया से अलग—किसी ने किया नहीं किन्तु वह स्वयं अपने ही घर में अपने आप से ही कैद हो गई है!

मीरा ने धोतियाँ धोकर सूखने को डाल दीं। अब वह क्या करे? कहीं रत्ती भर भी तो काम नहीं दिखाई देता और फिर जाकर पलंग पर पड़ रही, लेकिन उसकी आँखों में नींद आने की जगह दर्द होने लगा!

बाल धोने और कंघी करने में ही आखिर कितना समय लगाये? सोलह घन्टे के लिए स्वामी तो दफ्तर चले जाते हैं। लेकिन वह क्या करे? स्वामी रुपये के लिए काम करते हैं, उसे समय काटने के लिए भी काम की कमी है! दो किताबें लाने को वह कितनी बार कह चुकी है, लेकिन ग्यारह बजे लौटते हैं, तब तक क्या किताबों की दुकानें खुली रहती होंगी!

पड़ोस के लड़के स्कूल से लौटने लगते हैं, साढ़े चार का अद्धा जब बजता है तो रेडियो वाले मकान में रहने वाला युवक भी लौट आता है। दीक्षित जी के मकान के आधे हिस्से में जो बाबू रहते हैं, वे भी लौट आते हैं और जब वह स्वामी के लौटने की बात सोचती है तो उसके सामने समय अपने विराट रूप में आकर खड़ा हो जाता है। सारा ब्रम्हाण्ड ढंक जाता है—सब कुछ अंधेरे में विलीन हो जाता है—मीरा के भारी पलक थकी आँखों को छिपा लेते हैं।

रेडियो पर फिर गाने होने लगते हैं, दीक्षित जी के चबूतरे पर लड़के जमा होकर खेलने लगते हैं, एक छोटा बच्चा अलग बैठा रहता है। मीरा को वह बहुत अच्छा लगता है। उसे देखकर वह हमेशा अपनी सूनी गोद का स्मरण कर लेती है और बड़ी देर तक बैठी-बैठी उसे एकटक देखा करती है। कल कोई राहगीर बातें करता जा रहा था कि सब चीजें मंहगी होने वाली हैं—एक तो चीजें वैसे ही खराब मिलती हैं—अब मंहगाई और बढ़ेगी? स्वामी इतने व्यस्त रहते हैं, कि उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता। खाने-पीने की चीजें अच्छी नहीं मिलतीं और घी भी क्या रद्दी मिलता है और पानी मिला दूध पाव भर से अधिक लिया नहीं जा सकता। चाय की आदत न होती तो उसकी भी क्या जरूरत थी, उसी के आठ रुपये महीने जाते हैं। दूध वाले का इन्तजार वह सात बजे से ही करने लगती है लेकिन जब अँधेरा हो जाता है और आठ बजते हैं तब दूध वाला आवाज़ देता है। छै बजे के करीब रेडियो वाले मकान का युवक अपनी पत्नी के साथ सामने से निकल जाता है। वे दोनों कितने सुखी और प्रसन्न मालूम होते हैं। दस-साढ़े दस बजे दोनों लौटते हैं, शायद दोनों कहीं घूमने या सिनेमा देखने जाते हैं। उन दोनों में कितना प्रेम है, पति दफ्तर में यही सोचता होगा कि कब घर पहुँचे और पत्नी को साथ लेकर घूमने-फिरने जायँ...! एक मीरा है कि रात को छः सात घण्टे के लिये स्वामी आते हैं और वह दिन भर बैठी-बैठी अपने सिर के बाल गिना करती है। दैनिक समाचार पत्र खरीदा जाए तो खर्च अलग बढ़े और दुनिया भर की उलझनों से मन अलग परेशान हो!

अभी रेडियो खबरें सुना रहा था, घड़ी की आवाज वह नहीं सुन सकी, शायद नौ बज चुका है।

भोजन बनाये बिना चल नहीं सकता। वह उठी और अँगीठी में कोयले भरने लगी। आकाश काले बादलों से घिरा था, इसलिये खिड़की से झांककर तारे गिनकर समय काटने का प्रश्न भी उसके सामने नहीं था। मीरा की आँखें लाल हो रही थीं। पति की पहले जैसी प्रतीक्षा अब उससे नहीं होती। मन की वह उमंग न जाने कब की बुझ चुकी है, अब तो जैसे सब काम मशीन की तरह आप से आप होता चला जाता है।

एक पुराना अखबार पड़ा था उसे अँगीठी के नीचे वाले हिस्से में धर दिया। ऊपर कोयलों पर तेल छिड़क दिया और ऊपर नीचे दोनों ओर दियासलाई लगा दी। ऊपर तेल जल कर उड़ गया, नीचे कागज जल कर राख हो गया, लेकिन इस बार मीरा को सन्तोष हुआ कि कोयलों के किनारों ने आग पकड़ ली थी। थोड़ी देर तक फूँकते-फूँकते हार गई तो यह आशा करके कि हवा लगने से आग भड़क जायगी, वह उठी और कमरे में जाकर खाट पर लेट रही। थकान शायद उसकी रगों में दौड़ने वाले रक्त के प्रवाह को तेज कर रही थी, लेटते ही उसे झपकी आ गई। न जाने कब तक यों ही पड़ी रहती, लेकिन बाहर दरवाजे की कुन्डी खड़की और वह चौंक कर उठ बैठी। नीचे गई और द्वार खोला। दिवाकर के हाथ में रोज की ही तरह सब्जी से भरा थैला था और चेहरे पर थकान के चिन्ह स्पष्ट थे। नियमानुसार दोनों ही एक दूसरे को देखकर मुस्कराए। कमरे में आकर दिवाकर ने कोट को कुरसी पर डाल दिया और आप पलंग पर पड़ रहा निढाल होकर!

मीरा ने सहन में आकर देखा कि अँगीठी बुझी पड़ी है और कोयलों के ऊपर राख की हल्की-हल्की सी सफेद पर्तें जम गई हैं। खिन्नमना मीरा कमरे में आई, कुरसी पर पड़ा कोट उठाकर खूँटी पर टाँगा और बोली—[illegible] गीले कोयले लाकर डाल दिए हैं, मेरी तो जान आफत में है।

दिवाकर आँखें मूँदे पड़ा था।

मीरा ने फिर कहा—मेरी समझ में नहीं आता कि इतना-इतना काम करके तुम कितने दिन भले चंगे रह सकोगे!

दिवाकर ने आँखें खोलीं और कहा—इतना काम न करूँ तो बीस रुपये

महीने की आमदनी कम हो जाय। इस मँहगी में दफ्तर की चौंसठ रुपल्लियों से क्या गुजर हो सकती है?

'हो क्यों नहीं सकती!'

'हो सकती है? पन्द्रह रुपये महीना तो इस डेढ़ कमरे के मकान का किराया ही चला जाता है।'

'चला जाता होगा किराया। मैंने तो छः महीने में एक नई धोती भी नहीं देखी'—कहकर मीरा कुरसी पर बैठ गई।

खाट पर उठ कर बैठते हुए दिवाकर बोला—मैंने ही कौन से सूट सिलवा लिए हैं। मैं तो बाहर आता जाता हूँ, ग्रेजुएट हूँ। साहबों से मिलना पड़ता है तुम्हारे ख्याल से मेरा इन कपड़ों में रहना मुनासिब है?

'खुद सोचो न ग्रेजुएट होकर सोलह घण्टे काम करते हो और मेहनत का जो अस्सी पचासी रुपया महीना कमाते हो, उससे होता ही क्या है? इससे ज्यादा तो तुमने पढ़ाई में ही हर महीने खर्च किया होगा।'

'बस मर जाऊँ?'—विवशता के स्वर में दिवाकर ने सहानुभूति पाने की आशा से कहा।

'इतनी मेहनत करो, कमाओ, लेकिन रोज का रोना कभी नहीं गया। जाने कैसी कुबेला में भाग्य रेखा लिखी गई थी मेरी।'—मीरा ने अपने आप पर ही क्रोध व्यक्त करने के ढंग से कहा।

दिवाकर मुस्कराया, बोला—भाग्य की बात तो यह है मीरा कि यही क्या कम सौभाग्य है कि किसी तरह हम मरते-मरते जी तो रहे हैं कम से कम।

बीच में ही मीरा बोली—ऐसे ही जीना था, जानती तो बेशरम होकर माँ से कह देती कि मैं तो क्वाँरी ही अच्छी हूँ!

दिवाकर फिर मुस्कराया, बोला—यह तो हुआ नहीं मीरा खैर, गुस्सा छोड़ो उठो, मुझे भूख लगी है!

'भूख लगी है! इस पानी ने मारे नाक में दम है। सारे कोयले भीगे पड़े हैं। घण्टे भर से अँगीठी जला रही हूँ, पर निगोड़ी आग जले तब ना।'—मीरा ने बाहर की ओर देखते हुए कहा।

दिवाकर मीरा की ओर देख रहा था। निश्चय ही वह उसकी परेशानी का अनुभव बहुत पहले से करता आ रहा था।

मीरा ने कहा—खाना इस वक्त नहीं बन सका, चाहो तो सुबह का ही खा लो, नहीं तो, बाजार से कुछ रबड़ी-मलाई ले आओ। अभी तो दुकानें खुली होंगी।

खाना न बनने से परेशान हुए बिना दिवाकर ने स्वाभाविक स्वर में कहा—बाजार से अब कौन लाये सुबह का जो कुछ हो दे दो। किसी बाहर वाले को तो खिलाना नहीं है खुद खाना है, खा लूँगा?

मीरा कुरसी से उठी, दिवाकर बोला—अगर हो तो एक लड्डू रख देना।

मीरा दिवाकर की इस विवशता का अनुभव करके, जिसे वह प्रसन्न होकर अपना रहा है, मन ही मन सिहर रही है, किन्तु लड्डू की बात सुनकर इतनी देर में वह पहली बार मुस्करा पड़ी। रसोई घर में जाकर चूल्हे पर रखा हुआ कड़वे तेल का दिया जलाया और सबेरे का बचा हुआ ठंढा खाना परोस लाई, लड्डू दो रह गए थे, सो दोनों रख लाई।

दिवाकर उत्साहपूर्वक भोजन कर रहा था और मीरा सामने बैठी पंखा झल रही थी। पंखे की इस समय आवश्यकता न थी, क्योंकि न तो गरमी थी और न मक्खियाँ, किन्तु दिवाकर जब भोजन करता है तो सामने बैठ कर पंखा झलना मीरा के लिए स्वाभाविक हो गया है।

मीरा ने कहा—सुनो, इस इतवार को सिनेमा दिखा दो।

'इस इतवार को?'

'नहीं न?'

'बात यह है कि इस इतवार को तो साहब ने शाम को बँगले पर बुलाया है। काम बहुत बाकी है, उसी दिन सब पूरा करना होगा।'

'और काम करने वाले क्या करते हैं, जो तीसों दिन तुम्हीं को साहब पकड़ लेते हैं।'

'और किसी दिन मीरा!'

तुम्हें काम से फुर्सत नहीं मिलेगी इसलिये अब मुझे सिनेमा देखना ही नहीं है तो क्यों आशा करूँ कि और किसी दिन देखने को मिल सकेगा।'

'जराँ-जरा सी बात पर रूठ जाती हो बताओ और मैं कर ही क्या सकता हूँ, काम करूँ तो आफत, न करूँ तो आफत।'

'किसने रोका है तुम्हें काम करने से? अपना काम किये जाओ, मेरी चिन्ता करने से क्या! रात को तो घर आ ही जाते हो।'

इन लांछनों से त्रस्त होकर दिवाकर बोला—तुम मेरी मुश्किलें नहीं देखतीं मीरा; मैं तो सोचता हूँ कि एक ट्यूशन और कर लूँ जिससे जाड़े के कपड़ों का प्रबन्ध हो जाए, लेकिन तुम्हारी यह बेरुखी और नाराजी मेरी एक नहीं चलने देती।

'तुम्हारी एक न चलने देगी'''! खूब कहा, अगर ऐसा होता तो क्या सुबह छै बजे के गये, रात को ग्यारह बजे आया करते, कभी सीनेमा न दिखाते, एक साड़ी''''''।'

मीरा की बात काट कर दिवाकर ने कहा—ऐसी बातों से मुझे बहुत दुःख होता है मीरा! तुम तो पढ़ी लिखी हो, समझदार हो—मेरी परेशानी और मजबूरी तुम नहीं समझोगी तो कौन समझेगा।'

मीरा चुप रही, दिवाकर ने पानी पीकर हाथ धो लिये और थाली खिसका दी फिर सिगरेट जला लिया। मीरा ने कटी हुई सुपारियों की डिबिया सामने रख दी—दिवाकर ने दो टुकड़े मुँह में डाल लिये।

मीरा ने जूठे बरतन दालान में खिसका दिये और दिवाकर के सामने कुरसी पर बैठ गई, कहा—मेरी बातों से तुम्हें तो दुःख होता है, लेकिन शायद तुम्हारी बातों से मुझे सुख मिलता होगा?

दिवाकर कुछ न बोला, सिगरेट पीता रहा, मीरा भी कुछ न कह सकी। मेज पर पड़ी किताबों के पन्ने फड़फड़ाते रहे।

दिवाकर खाट पर जा लेटा, कहा—अब लेटो चलकर, बारह बजने को हैं।

मीरा उठ न सकी उसके मस्तिष्क की रेखाओं में उस समय दिन भर का

उदास, अकेला और थका देने वाला कार्यक्रम, रात बारह से सुबह पाँच बजे तक स्वामी का साथ और भविष्य के ऐसे ही अंधेरे और आशाहीन दिन उभर रहे थे।

दिवाकर सोच रहा था कि किसी तरह इतना समय मिले कि एक ट्यूशन और कर सके तो सरदी के कपड़े बन जाएँ।

और मीरा सोच रही थी, दीक्षित जी के चबूतरे पर वह बच्चा जो बैठा है, वैसा एक लड़का उसके भी होता तो बड़े-बड़े पहाड़ जैसे दिन काटना ज़रा भी न खलता!

बारह का घंटा बजा—दिवाकर ने करवट बदली, कहा—लालटेन बुझा दो और लेटो आकर, बारह बज चुके हैं।

मीरा वैसे ही बैठी, विचारों में डूबी-डूबी सी जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं तब दिवाकर उठा उसने लालटेन बुझाई पुचकार कर मीरा का हाथ पकड़ लिया और पलंग पर खींच ले गया।

बाहर के सन्नाटे में हलकी बारिश होने लगी थी। मीरा सुन रही थी कि न जाने कहाँ से कोयल की मादक कूक हवा के झोंकों के साथ चली आ रही थी। यह उन्माद भरा वातावरण थके हुये दिवाकर को स्फूर्ति दे रहा था और वह अँधेरे कमरे में उन्मीलित नयनों से मीरा के मुरझाये हुये सुन्दर मुख की ओर देख रहा था।

किन्तु मीरा के हृदय में उस आलिंगन-चुम्बन से रत्ती भर भी उत्तेजना न हुई। उसके जीवन में कहाँ कोई ऐसा क्षण आया है जो अन्तर का अनुभव करके नवीनता को देखने का अवसर उसे प्राप्त होता! जैसे रोज और सब काम उसे करने होते हैं, वैसे ही रात को छः घन्टे के लिए आने वाले जीवन-साथी के साथ विश्राम की अलस घड़ियाँ भी बितानी पड़ती हैं। किन्तु वह जानती है कि इस क्षण भर की उत्तेजना के व्यवहार में कहीं रस नहीं है, सब उत्साह-हीन और उमंग-रहित है।

करवट बदल कर जब दिवाकर [illegible] तब मीरा ने उसकी पीठ के नीचे दबा अपना हाथ हौले से [illegible] अनिच्छा से आई नींद उसकी आँखों में बसने लगी और उसने अँधेरी छत की कड़ियाँ गिनना छोड़ आँखें मीच लीं।

—:०:—

श्री रांगेय राघव

जन्मकाल	रचनाकाल
१९२३ ई०	१९३८ ई०

गदल

बाहर शोर-गुल मचा। डोड़ी ने पुकारा—कौन है ?

कोई उत्तर नहीं मिला। आवाज़ आयी—हत्यारिन ! तुझे कतल कर दूँगा !

स्त्री का स्वर आया—मारके तो देख ! तेरे कुनबे को डायन बनके न खा गयी निपूते !

डोड़ी बैठा न रह सका। बाहर आया।

क्या करता है, क्या करता है, निहाल ?—डोड़ी बढ़कर चिल्लाया—आखिर तेरी मैया है।

मैया है !—कहकर निहाल हट गया।

'अरे तू हाथ उठाके तो देख !—स्त्री ने फुफकारा—कढ़ो खाये ! तेरी सींक पर बिलियाँ चलवा दूँ ! समझ रखियो ! मत जान रखियो, हाँ ! तेरी आसरतू नहीं हूँ।

भाभी !—डोड़ी ने कहा—क्या बकती है ? होश में आ !

वह आगे बढ़ा। उसने मुड़कर कहा—जाओ सब ! तुम सब लोग जाओ !

निहाल हट गया। उसके साथ ही सब लोग इधर-उधर हो गये।

डोड़ी निस्तब्ध छप्पर के नीचे लगा बरैंडा पकड़े खड़ा रहा। स्त्री वहीं बिखरी हुई-सी बैठी रही। उसकी आँखों में आग-सी जल रही थी।

उसने कहा—मैं जानती हूँ, निहाल में इतनी हिम्मत नहीं। यह सब तैने किया है, देवर !

हाँ, गदल !—डोड़ी ने धीरे से कहा। मैंने ही किया है।

गदल सिमट गयी। कहा—क्यों, तुझे क्या जरूरत थी ?

डोड़ी कह नहीं सका। वह ऊपर से निचे तक झनझना उठा। पचास साल का वह लंबा खारी गूजर, उसकी मूँछें खिचड़ी हो चुकी थीं, छप्पर तक पहुँचा सा लगता था। उसके कंधे की चौड़ी हड्डियों पर अब दीवे का हल्का प्रकाश पड़ रहा था; उसके शरीर पर मोटी फतूही थी और उसकी धोती घुटनों के नीचे उतरने के पहले ही झूल देकर चुस्त-सी ऊपर की ओर लौट जाती थी। उसका हाथ कर्रा था और वह इस समय निस्तब्ध खड़ा रहा।

स्त्री उठी। लगभग ४५ वर्षीया थी, और उसका रंग गोरा होने पर भी आयु के धुँधलके में अब मैला-सा दिखने लगा था। उसको देख कर लगता था कि वह फुर्तीली थी। जीवन भर कठोर मेहनत करने से, उसकी गठन के ढीले पड़ने पर भी, उसकी फुर्ती अभी तक मौजूद थी।

तुझे शरम नहीं आती, गदल ?—डोड़ी ने पूछा।

क्यों; शरम क्यों आयेगी ?—गदल ने पूछा।

डोड़ी क्षण भर सकते में पड़ गया। भीतर के चौबारे से आवाज़ आयी—शरम क्यों आयेगी इसे ? शरम तो उसे आये; जिसकी आँखों में हया बची हो।

निहाल !—डोड़ी चिल्लाया—तू चुप रह।

फिर आवाज़ बन्द हो गयी।

गदल ने कहा— मुझे क्यों बुलाया है तूने ?

डोड़ी ने इस बात का उत्तर नहीं दिया। पूछा—रोटी खायी है ?

नहीं।—गदल ने कहा—खाती भी कब ? कमबख्त रास्ते में मिले। खेत होकर लौट रही थी। रास्ते में अरनेकण्डे बीनकर संझा के लिये ले जा रही थी

डोड़ी ने पुकारा—निहाल ! बहू से कह, अपनी सास को रोटी दे जाये।

भीतर से किसी स्त्री की तीव्र आवाज़ सुनायी दी—अरे, अब लौहरों की जैसर आयी हैं, उन्हें क्या गरीब खारियों की रोटी भायेगी !

कुछ स्त्रियों ने ठहाका लगाया।

निहाल चिल्लाया—सुन ले, परमेसुरी, जगहँसाई हो रही है। खारियों की तो तूने नाक कटाकर छोड़ी।

(२)

गुन्ना मरा, तो पचपन बरस का था। गदल विधवा हो गयी। गदल का बड़ा बेटा निहाल तीस बरस के पास पहुँच रहा था। उसकी बहू दुल्ली का बड़ा बेटा सात का, दूसरा चार का और तीसरी छोरी थी जो उसकी गोद में थी। निहाल से छोटी तरा-ऊपर की दो बहिनें थीं चंपा और चमेली, जिनका, क्रमशः झाज और बिस्वारा गाँओं में ब्याह हुआ था। आज उनकी गोदियों से उनके लाल उतर कर धूल में घुटरुव चलने लगे थे। अंतिम पुत्र नरायन अब बाईस का था, जिसकी बहू दूसरे बच्चे की माँ होने वाली थी। ऐसी गदल, इतना बड़ा परिवार छोड़कर चली गई थी और बत्तीस साल के एक लौहरे गूजर के यहाँ जा बैठी थी।

डोड़ी गुन्ना का सगा भाई था। बहू थी, बच्चे भी हुए। सब मर गये। अपनी जगह अकेला रह गया। गुन्ना ने बड़ी-बड़ी कही पर वह फिर अकेला ही रहा, उसने ब्याह नहीं किया, गदल ही के चूल्हे पर खाता रहा, कमाकर लाता, तो उसी को दे देता, उसी के बच्चों को अपना मानता, कभी उसने अलगाव नहीं किया। निहाल अपने चाचा पर जान देता था। और फिर खारी गूजर अपने को लौहारों से ऊँचा समझते थे।

गदल जिसके घर जा बैठी थी, उसका पूरा कुनबा था। उसने गदल की उम्र नहीं देखी, यह देखा कि खारी औरत है, पड़ी रहेगी। चूल्हे पर दम फूँकनेवाली की जरूरत भी थी।

आज ही गदल सबेरे गयी थी और शाम को उसके बेटे उसे फिर बाँध लाये थे। उसके नये पति मौनी को अभी पता भी नहीं हुआ होगा। मौनी रँडवा था। उसकी भाभी जो पाँव फैलाकर मटक-मटककर छाछ बिलोती थी, दुल्लो सुनेगी, तो क्या कहेगी?

गदल का मन विक्षोभ से भर उठा।

(३)

आधी रात हो चली थी। गदल वहीं पड़ी थी। डोड़ी वहीं बैठा चिलम फूँक रहा था।

उस सन्नाटे में डोड़ी ने धीरे से कहा—गदल।

क्या है—गदल ने होले से कहा।

'तू चली गयी न?'

गदल बोली नहीं। डोंड़ी ने फिर कहा—सब चले जाते हैं। एक दिन तेरी देवरानी चली गयी, फिर एक-एक कर के तेरे भतीजे भी चले गये। भैया भी चला गया। पर तू जैसे गयी, वैसे तो कोई भी नहीं गया। जग हँसता है, जानती है?

गदल ने बुदबुदाया—जग हँसाई से मैं नहीं डरती, देवर! जब चौदह की थी, तब तेरा भैया मुझे गाँव में देख गया था। तू उसके साथ तेल पिया लट्ठ लेकर मुझे लेने आया था न, तब? तब मैं आयी थी कि नहीं? तू सोचता होगा कि गदल की उमिर गयी, अब उसे खसम की क्या जरूरत है? पर जानता है, मैं क्यों गयी?

'नहीं।'

'तू तो बस यही सोचा करता होगा कि गदल गयी, अब पहले-सा रोटियों का आराम नहीं रहा। बहुएँ नहीं करेंगी तेरी चाकरी, देवर! तूने भाई से और मुझसे निभायी, तो मैंने भी तुझे अपना ही समझा! बोल, झूठ कहती हूँ?'

'नहीं गदल। मैंने कब कहा।'

'बस यही बात है, देवर! अब मेरा यहाँ कौन है! मेरा मरद तो मर गया जीते जी मैंने उसकी चाकरी की, उसके नाते उसके सब अपनों की चाकरी बजायी। पर जब मालिक ही न रहा, तो काहे को हड़कम्प उठाऊँ! यह लड़के, यह बहुएँ, मैं इनकी गुलामी नहीं करूँगी!'

'पर क्या यह सब तेरी औलाद नहीं, बावरी। बिल्ली तक अपने जायों के लिए सात घर उलट फेर करती है, फिर तू तो मानुस है। तेरी माया-ममता कहाँ चली गयी?'

'देवर, तेरी कहाँ चली गयी थी, जो तूने फिर ब्याह न किया!'

'मुझे तेरा सहारा था गदल!'

'कायर! भैया तेरा मरा, कारज किया बेटे ने और फिर जब सब हो गया, तब तू मुझे रखकर घर नहीं बसा सकता था! तूने मुझे पेट के लिए पराई ड्योढ़ी

लँघवायी। चूल्हा मैं तब फूँकूँ, जब मेरा कोई अपना हो। ऐसी बाँदी नहीं हूँ कि मेरी कुहनी बजे, औरों की बिछिया झनके। मैं तो पेट तब भरूँगी, जब पेट का मोल कर लूँगी। समझा, देवर! तूने तो नहीं कहा तब। अब कुनबे की नाक पर चोट पड़ी, तब सोचा, तब न सोचा, जब तेरी गदल को बहुओं ने आँखें तरेर कर देखा। अरे, कौन किसी की परवाह करता है!'

गदल!—डोड़ी ने भर्राये स्वर से कहा—मैं डरता था।

'भला क्यों तो?'

'गदल, मैं बुड्ढा हूँ। डरता था, जग हँसेगा। बेटे सोचेंगे, शायद चाचा का अम्मा से पहले ही से नाता था, तभी तो चाचा ने दूसरा ब्याह नहीं किया। गदल, भैया की भी बदनामी होती न?'

अरे, चल रहने दे!—गदल ने उत्तर दिया—भैया का बड़ा ख़याल रहा तुझे! तू नहीं था कारज में उनके क्या? मेरे ससुर मरे थे, तब तेरे भैया ने बिरादरी को जिमाकर ओठों से पानी छुलाया था अपने। और तुम सबने कितने बुलाये? तू भैया, दो बेटे। यही भैया हैं, यही बेटे हैं? पच्चीस आदमी बुलाये कुल। क्यों आखिर? कह दिया लड़ाई में कानून है। पुलस पच्चीस से ज्यादा होते ही पकड़ ले जायेगी! डरपोक कहीं के! मैं नहीं रहती ऐसों के।

हठात् डोड़ी का स्वर बदला। कहा—मेरे रहते तू पराये मरद के जा बैठेगी?

'हाँ।'

अबके तो कह!—वह उठकर बढ़ा।

सौ बार कहूँ, लाला!—गदल पड़ी-पड़ी बोली।

डोड़ी बढ़ा।

बढ़!—गदल ने फुफकारा।

डोड़ी रुक गया। गदल देखती रही। डोड़ी जाकर बैठ गया। गदल देखती रही। फिर हँसी! कहा—तू मुझे करेगा! तुझमें हिम्मत कहाँ है, देवर? मेरा नया मरद है न? मरद है। इतनी उमर तो ले भला। मुझे लगता है, मेरा भरता ही फिर मिल गया है मुझे। तू?—वह रुकी—मरद है? अरे कोई देवर से घिघियाता है। बढ़कर जो तू मुझे मारता, तो मैं समझती, तू अपनापा मानता है।

मैं इस घर में रहूँगी ?

डोड़ी देखता ही रह गया। रात गहरी हो गयी। गदल ने लँहगे के पर्त्ते फैलाकर तन ढँक लिया। डोड़ी ऊँघने लगा।

(४)

ओसारे में दुल्लो ने अंगड़ायी लेकर कहा—आ गयी देवरानी जी। रात कहाँ रहीं ?

सूका डूब गया था। आकाश में पौ फट रही थी। बैल अब उठकर खड़े हो गये थे। हवा में एक ठंडक थी।

गदल ने तड़ाक से जवाब दिया—सो, जिठानी मेरी! हुकुम नहीं चला मुझ पर। तेरी-जैसी बेटियाँ हैं मेरी। देवर के नाते देवरानी हूँ, तेरी जूती नहीं।

दुल्लो सकपका गयी। मौनी उठा ही था। भन्नाया हुआ आया। बोला—कहाँ गयी थी ?

गदल ने घूँघट खींच लिया, पर आवाज नहीं बदली। कहा—वही ले गये मुझे घेर कर! मौका पाके निकल आयी।

मौनी दब गया। मौनी का बाप बाहर से ही ढोर हाँक ले गया। मौनी बढ़ा।

कहाँ जाता है ?—गदल ने पूछा

'खेतहार!'

पहले मेरा फैसला कर जा।—गदल ने कहा।

दुल्लो उस अधेड़ स्त्री के नक्शे देखकर अचरज में खड़ी रही।

कैसा फैसला ?—मौनी ने पूछा। वह उस बड़ी स्त्री से दब गया था।

'अब क्या तेरे घर भर का पीसना पीसूँगी मैं ?—गदल ने कहा—हम तो दो जने हैं। अलग करेंगे, खायेंगे।—उसके उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह कहती रही—कमाई सामिल करो, मैं नहीं रोकती, पर भीतर तो अलग-अलग भले।

मौनी क्षण भर सन्नाटे में खड़ा रहा। दुल्लो तिनक कर निकली। बोली—अब चुप क्यों हो गया, देवर ? बोलता क्यों नहीं ? ऐसी देवरानी लाया है कि सास! तेरी बोलती क्यों नहीं फूटती ? ऐसा न समझियो तू मुझे! रोटी तवा पर

पलटते मुझे भी आँच नहीं लगती, जो मैं इसकी खरी-खोटी सुन लूँगी, समझा ? मेरी अम्मा ने भी मुझे चूल्हे की मट्टी खाके ही जना था। हाँ !

अरी तो, सौत !—गदल ने पुकारा—मट्टी न खाके आयी, सारे कुनबे को चबा जायेगी, डायन ! ऐसी नहीं तेरी गुड़ की भेली है, जो न खायेंगे हम, तो रोटी गले में फंदा मार जायेगी।

मौनी उत्तर नहीं दे सका। वह बाहर चला गया।

दुपहर हो गयी थी। दुल्लो बैठी चरखा कात रही थी।

नरायन ने आकर आवाज़ दी—कोई है ?

दुल्लो ने घूँघट काढ़ लिया। पूछा—कौन हो ?

नरायन ने खून का घूँट पीकर कहा—गदल का बेटा हूँ।

दुल्लो घूँघट में हँसी। पूछा—छोटे हो कि बड़े ?

'छोटा।'

'और कितने हैं ?'

कित्ते भी हों। तुझे क्या ?—गदल ने निकलकर कहा।

अरे आ गयी !—कह कर दुल्लो भीतर भागी।

आने दे आज उसे। तुझे बता दूँगी, जिठानी !—गदल ने सिर हिलाकर कहा।

अम्मा !—नरायन ने कहा—यह तेरी जिठानी है ?

क्यों आया है तू, यह बता !—गदल झल्लायी।

दण्ड धरवाने आया हूँ, अम्मा !—कह कर नरायन आगे बैठने को बढ़ा।

वहीं रह !—गदल ने कहा।

उसी समय लोटा डोर लिये मौनी लौटा। उसने देखा कि गदल ने अपने कड़े और हँसुली उतार कर फेंक दी और कहा—भर गया दण्ड तेरा। अब मत आइयो कोई। समझा ! समझ लीजो थाने में रपट कर दूँगी कि मेरे मरद का सब माल दबा कर बहुओं के कहने से बेटों ने मुझे निकाल दिया है।

नरायन का मुँह स्याह पड़ गया। वह गहने उठाकर चला गया। मौनी मन-ही-मन शंकित सा भीतर आया।

दुल्लो ने शिकायत की—सुना तूने, देवर! देवरानी ने गहने दे दिये। घुटना आखिर पेट को ही मुड़ा। ऐसे चार जगह बैठेगी, तो बेटों के खेत की डौर पर डंडा-थूआ तक लग जायेंगे, पक्का चबूतरा घर के आगे बगबगायेगा। समझा देती हूँ। तुम भोले-भाले ठहरे। तिरिया चरित्तर तुम क्या जानो। धन्धा है यह भी। अब कहेगी, फिर बनवा मुझे।

गदल हँसी, कहा—वाह, जिठानी! पुराने मरद का मोल नये मरद से तेरे घर की बैयर ही चुकवाती होंगी। गदल तो मालकीन बन कर रहती है, समझी! बाँदी बन कर नहीं। चाकरी करूँगी तो अपने मरद की, नहीं तो बिधना मेरे ठेंगे पर। समझी! तू बीच में बोलने वाली कौन?

दुल्लो ने रोष से देखा और पाँव पटकती चली गयी।

मौनी ने देखा और कहा—बहुत बढ़-बढ़कर बातें मत हांक, समझ ले, घर में बहू बन के रह!

अरे तू तो तब पैदा भी नहीं हुआ था, बालम!—गदल ने मुस्करा कर कहा—तब से मैं सब जानती हूँ। मुझे क्या सिखाता है तू? ऐसा कोई मैंने काम नहीं किया है, जो बिरादरी के नेम के बाहर हो। जब तू देखे, मैंने ऐसी कोई बात की हो, तो हजार बार रोक पर सौत की ठसक नहीं सहूँगी।

तो बताऊँ तुझे!—वह सर हिलाकर बोला।

गदल हँसकर ओबरी में चली गयी और काम में लग गयी।

(५)

ठंडी हवा तेज हो गयी थी। डोड़ी चुपचाप बाहर छप्पर में बैठा हुक्का पी रहा था। पीते पीते ऊब गया और उसने चिलम उलट दी और फिर बैठा रहा। खेत से लौटकर निहाल ने बैल बाँधे, न्यार डाला और कहा—काका!

डोड़ी कुछ सोच रहा था। उसने सुना नहीं।

काका!—निहाल ने स्वर उठाकर कहा।

हैं!—डोड़ी चौंक उठा—क्या है? मुझसे कहा कुछ?

'तुमसे न कहूँगा, तो कहूँगा किससे? दिन भर तो तुम मिले नहीं। चिम्मन कहेरा कहता था, तुमने दिन भर मनमौजी बाबा की धूनी के पास बिताया। यह

सच्च है ?'

'हाँ, बेटा, चला तो गया था।'

'क्यों गये थे भला ?'

'ऐसे ही जी किया था, बेटा।'

'और कस्बे से बनिये का आदमी आया था, घी कटऊ क्या कराया, मैंने कहा नहीं है, वह बोला, लेके जाऊँगा। झगड़ा होते-होते बचा।'

ऐसा नहीं करते, बेटा।—डोड़ी ने कहा—बौहर से कोई झगड़ा मोल लेता है ?

निहाल ने चिलम उठायी, कण्डों में से आँच बीन कर धरी और फूँक लगाता हुआ आया। कहा—मैं तो गया नहीं। सिर फूट जाते। नरायन को भेजा था।

कहाँ!—डोड़ी चौंका।

'उसी कुलच्छनी कुलबोरनी के पास।'

'अपनी माँ के पास ?'

'न जाने तुम्हें उससे क्या है, अब भी तुम्हें उस पर गुस्सा नहीं आता। उसे माँ कहूँगा मैं ?'

'पर बेटा, तू न कह, जग तो उसे तेरी मां ही कहेगा! जब तक मरद जीता है, लोग बैयर को मरद की बहू कह-कर पुकारते हैं, जब मरद मर जाता है, तो लोग उसे बेटे की अम्मां कहकर पुकारते हैं। कोई नया नेम थोड़ा ही है।'

निहाल भुनभुनाया। कहा—ठीक है, काका, ठीक है, पर तुमने अभी तक यह तो पूछा ही नहीं कि क्यों भेजा था उसे ?

हां, बेटा।—डोड़ी ने चौंककर कहा—यह तो तूने बताया ही नहीं! बता न ?

'दण्ड भरवाने भेजा था। सो पंचायत जुड़वाने के पहले ही उसने तो गहने उतार फेंके।'

डोड़ी मुस्कराया। कहा—तो वह यह जता रही है कि घरवालों ने पंचायत भी नहीं जुड़वायी ? यानी हम उसे भगाना ही चाहते थे। नरायन ले आया ?

'हां ।'

डोड़ी सोचने लगा ।

मैं फेर आऊँ ?—निहाल ने पूछा ।

नहीं; बेटा ।—डोड़ी ने कहा—वह सचमुच रूठकर ही गयी है । और कोई बात नहीं है । तूने रोटी खा ली ?

'नहीं ।'

'तो जा । पहले खा ले ।'

निहाल उठ गया, पर डोड़ी बैठा रहा । रात का अँधेरा सांझ के पीछे ऐसे आ गया, जैसे कोई पर्त उलट गयी हो ।

दूर ढोला गाने की आवाज आने लगी । डोड़ी उठा और चल पड़ा ।

निहाल ने बहू से पूछा—काका ने खा ली ?

'नहीं तो ।'

निहाल बाहर आया । काका नहीं थे ।

काका !—उसने पुकारा ।

राह पर चिरंजी पुजारी गढ़वाले हनुमान जी के पट बन्द करके आ रहा था । उसने पूछा—क्या है, रे ?

पाय लागूँ, पंडित जी ।—निहाल ने कहा—काका अभी तो बैठे थे···

चिरंजी ने कहा—अरे, वह वहाँ ढोला सुन रहा है । मैं अभी देखकर आया हूँ ।

चिरंजी चला गया, निहाल ठिठका खड़ा रहा । बहू ने झाँककर पूछा—क्या हुआ ?

काका ढोला सुनने गये हैं !—निहाल ने अविश्वास से कहा—वे तो नहीं जाते थे ।

जाकर बुला ले आओ । रात बढ़ रही है ।—बहू ने कहा । और रोते बच्चे को दूध पिलाने लगी ।

निहाल जब काका को लेकर लौटा, तो काका की देही तप रही थी ।

हवा लग गयी है और कुछ नहीं ।—डोड़ी ने छोटी खटिया पर अपनी

निकली टाँगें समेट कर लेटते हुए कहा—रोटी रहने दे, आज जी नहीं चाहता।

निहाल खड़ा रहा। डोड़ी ने कहा—अरे, सोच तो, बेटा। मैंने ढोला कितने दिनों बाद सुना है। उस दिन भैया की सुहाग रात को सुना था, या फिर आज……

निहाल ने सुना और देखा, डोड़ी आँख मींचकर कुछ गुनगुनाने लगा था……

(६)

शाम हो गयी थी। मौनी बाहर बैठा था। गदल ने गरम-गरम रोटी और आम की चटनी ले जाकर खाने को धर दी।

बहुत अच्छी बनी है।—मौनी ने खाते हुए कहा—बहुत अच्छी है।

गदल बैठ गयी। कहा—तुम एक ब्याह और क्यों नहीं कर लेते अपनी उमिर लायक?

मौनी चौंका। कहा—एक की रोटी भी नहीं बनती।

नहीं।—गदल ने कहा—सोचते होगे सौत बुलाती हूँ, पर मरद का क्या? मेरी भी तो ढलती उमिर है। जीते जी देख जाऊँगी तो ठीक है। न हो तो हुकूमत करने को तो एक मिल ही जायेगी।

मौनी हँसा। बोला—यों कह। हौंस है तुझे लड़ने को कोई चाहिये।

खाना खाकर उठा, तो गदल हुक्का भरकर दे गयी और आप दीवार की ओट में बैठकर खाने लगी।

इतमें से सुनायी दिया—अरे, इस बखत कहाँ चला?

जरूरी काम है, मौनी।—उत्तर मिला। पेसकार साब ने बुलवाया है।

गदल ने पहचाना। उसी गाँव का तो था, घोखा मौना का चुंदा गिर्राज ग्वारिया। जरूर पेसकार की गाय को चराने की बात होगी।

अरे तो रात को जा रहा है?—मौनी ने कहा—ले चिलम तो पीता जा।

आकर्षण ने रोका। गिर्राज बैठ गया। गदल ने दूसरी रोटी उठायी। कौर मुँह में रखा।

तुमने सुना?—गिर्राज ने कहा और दम खींचा।

क्या?—मौनी ने पूछा!

'गदल का देवर डोड़ी मर गया।'

गदल का मुँह रुक गया। जल्दी से लोटे के पानी के सँग कौर निगला और सुनने लगी। कलेजा मुँह को आने लगा।

कैसे मर गया?—मौनी ने कहा। वह तो भला-चंगा था!

'टंड लग गयी। रात उघाड़ा रह गया।'

गदल द्वार पर दिखायी दी। कहा—गिरीज!

काकी!—गिरीज ने कहा—सच। मरते बखत उसके मुँह से तुम्हारा नाम कढ़ा था, काकी! बिचारा बड़ा मानख था।

गदल स्तब्ध खड़ी रही।

गिरीज चला गया।

गदल ने कहा—सुनते हो?

'क्या है री?'

'मैं जरा जाऊँगी।'

कहाँ?—वह आंतकित हुआ।

'वहीं।'

'क्यों?'

'देवर मर गया है न?'

'देवर! अब तो वह तेरा देवर नहीं।'

गदल हँसी, झनझनाती हुई हँसी—देवर तो मेरा अगले जनम में भी रहेगा। वही न मुझसे रुखाई दिखाता, तो क्या यह पाँव कटे बिना उस देहली से बाहर निकल सकते थे? उसने मुझसे मन फेरा, मैंने उससे। मैंने ऐसा बदला लिया उससे!

कहते-कहते वह कठोर हो गयी।

तू नहीं जा सकती।—मौनी ने कहा।

क्यों?—गदल ने कहा—तू रोकेगा? अरे, मेरे खास पेट के जाये मुझे रोक न पाये! अब क्या है? जिसे नीचा दिखाना चाहती थी, वही न रहा और

तू मुझे रोकने वाला है कौन ? अपने मन से आयी थी, रहूँगी, नहीं रहूँगी, कौन तूने मेरा मोल दिया है ! इतना बोल तो भी लिया तू, जो होता मेरे उस घर में, तो जीभ कढ़वा लेती तेरी।

'अरी चल-चल !'

मौनी ने हाथ पकड़कर उसे भीतर धकेल दिया और द्वार पर खाट डाल कर लेट कर हुक्का पीने लगा।

गदल भीतर रोने लगी, परन्तु इतनी धीरे कि उसकी सिसकी तक मौनी नहीं सुन सका। आज गदल का मन बहा जा रहा था।

रात का तीसरा पहर बीत रहा था। मौनी की नाक बज रही थी। गदल ने पूरी शक्ति लगाकर छप्पर का कोना उठाया और साँपिन की तरह उसके नीचे से रेंगकर दूसरी ओर कूद गयी।

(७)

मौनी रह-रहकर तड़पता था। हिम्मत नहीं होती थी कि जाकर सीधे गाँव में हल्ला करे और लट्ठ के बल पर गदल को उठा लाये। मन करता, सुसरी की टाँगें तोड़ दे। दुल्लो ने व्यंग भी किया कि उसकी लुगाई भाग कर नाक कटा गयी है, खून का-सा घूँट पीकर रह गया। गूजरों ने जब सुना, तो कहा—अरे बुढ़िया के लिए खून-खराबी कराएगा ? और अभी तेरा उसने खरच ही क्या कराया है। दो जून रोटी खा गयी है, तो तुझे भी तो टिक्कड़ खिलाकर ही गयी है ?

मौनी का क्रोध भड़कता।

घोट्या का गिरीज सुना गया था।

जिस वक्त गदल पहुँची, पटेल बैठा था। निहाल ने कहा था—खबरदार ! भीतर पाँव न धरियो ! क्यों लौट आयी है ?

पटेल चौंका था। बोला—अब क्या लेने आयी है, बहू ?

गदल बैठ गयी। कहा—जब छोटी थी, तभी मेरा देवर लट्ठ बाँध मेरे खसम के साथ आया था। इसी के हाथ देखती रह गयी थी मैं तो। सोचा था, मरद है, इसकी छत्तर-छाया में जी लूँगी। बताओ, पटेल, वह ही जब मेरे आदमी के

मरने के बाद मुझे न रख सका, तो क्या करती ? अरे, मैं न रही, तो इनसे क्या हुआ ? दो दिन में काका उठ गया न ? इनके सहारे मैं रहती तो क्या होता ?

पटेल ने कहा—पर तूने बेटा-बेटी की उमर न देखी, बहू !

ठीक है,—गदल ने कहा—उमर देखती कि इज्जत, यह कहो । मेरी देवर से रार थी, खतम हो गयी । ये बेटा हैं, मैंने कोई बिरादरी के नेम के बाहर की बात की हो, तो रोककर मुझपर दावा करो । पंचायत में जवाब दूँगी । लेकिन बेटों ने बिरादरी के मुँह पर थूका, तब तुम सब कहाँ थे ?

सो कब ?—पटेल ने आश्चर्य से पूछा ।

'पटेल न कहेंगे तो कौन कहेगा ? पच्चीस आदमी खिलाकर टाल दिया मेरे मरद के कारज में !'

'पर पगली यह तो सरकार का कानून था ।'

कानून था !—गदल हँसी—सारे जग में कानून चल रहा है, पटेल ? दिन दहाड़े भैंस खोलकर लायी जाती है । मेरे ही मरद पर कानून था ? यों न कहोगे, बेटों ने सोचा, दूसरा अब क्या धरा है, क्यों पैसा बिगाड़ते हो ? कायर कहीं के !

निहाल गरजा—कायर ? हम कायर ? तू सिंघनी ?

हाँ मैं सिंघनी !—गदल तड़पी—बोल तुझमें है हिम्मत ?

बोल !—वह भी चिल्लाया ।

जा, बिरादरी कारज में न्यौता दे काका के !—गदल ने कहा ।

निहाल सकपका गया । बोला—पुलस...

गदल ने सीना ठोंककर कहा—बस ?

लुगाई बकती है ।—पटेल ने कहा—गोली चलेगी, तो ?

गदल ने कहा—धरम-धुरन्दरों ने तो डुबा ही दी । सारी गुजरात ही डूब गयी, माधी । अब किसी का आसरा नहीं । कायर ही कायर बसे हैं ।

फिर अचानक कहा—मैं करूँ परबन्ध ?

तू !—निहाल ने कहा ।

हाँ, मैं !—और उसकी आँखों में पानी भर आया । कहा—वह मरते

वखत मेरा नाम लेता गया है न, तो उसका परबन्ध मैं ही करूँगी।

मौनी ने आश्चर्य से सुना था। गिर्राज ने ही बताया था कि कारज का जोर-दार इन्तजाम है। गदल ने दरोगा को रिश्वत दी है। वह उधर आयगा ही नहीं। गदल बड़ा इन्तजाम कर रही है। लोग कहते हैं, उसे अपने मरद का इतना गम नहीं हुआ था, जितना अब लगता है।

गिर्राज तो चला गया था, पर मौनी में विष भर गया था। उसने उठते हुए कहा—तो गदल! तेरी भी मन की होने दूँ, सो गोला का मौनी नहीं। दरोगा का मुँह बन्द कर दे, पर उससे भी ऊपर एक दर्बार है। मैं कस्बे में बड़े दरोगा से शिकायत करूँगा।

(८)

कारज हो रहा था। पाँते बैठतीं, जीमतीं, उठ जातीं और कढ़ाव से पुए उतरते।

बाहर मरद इन्तजाम कर रहे थे, खिला रहे थे। निहाल और नरायन ने लड़ाई में मँहगा नाज बेचकर जो घड़ों में नोटों को चाँदी बनाकर डाला था, वह निकली और बौहरे का कर्ज चढ़ा। पर डाँग में लोगों ने कहा—गदल का ही बूता था। बेटे तो हार बैठे थे। कानून क्या बिरादरी से ऊपर।

गदल थक गयी थी। औरतों में बैठी थी। अचानक द्वार में से सिपाही सा दीखा। बाहर आ गयी। निहाल सिर झुकाये खड़ा था।

क्या बात है, दीवानजी?—गदल ने बढ़कर पूछा।

स्त्री का बढ़कर पूछना देख दीवान सकपका गया।

निहाल ने कहा—कहते हैं कारज रोक दो।

सो कैसे?—गदल चौंकी।

दरोगाजी ने कहा है।—दीवानजी ने नम्र उत्तर दिया।

'क्यों? उनसे पूछकर ही तो किया जा रहा है।' उसका स्पष्ट संकेत था कि रिश्वत दी जा चुकी है।

दीवान ने कहा—जानता हूँ, दरोगाजी तो मेल-मुलाकात मानते हैं, पर किसी ने बड़े दरोगा जी के पास शिकायत पहुँचायी है, दरोगाजी को आना ही

पड़ेगा। इसी से उन्होंने कहला भेजा है कि भीड़ छाँट दो। वर्ना कानूनी कार्य-बाई करनी ही पड़ेगी।

क्षण भर गदल ने सोचा। कौन होगा वह? समझ नहीं सकी। बोली—दारोगाजी ने पहले नहीं सोचा था यह सब, अब बिरादरी को उठा दें? दीवान-जी, तुम भी बैठकर पत्तल परोसवा लो। होगी सो देखी जायेगी। हम खबर भेज देंगे, दरोगा आते ही क्यों है? वे तो राजा हैं।

दीवानजी ने कहा—सरकारी नौकरी है। चली न जायेगी? आना ही होगा उन्हें।

तो आने दो!—गदल ने चुभते स्वर से कहा—आदमी का वजन एक बार होता है। हम बिरादरी को नहीं उठा सकते।

नारायन घबराया। दीवानजी ने कहा—सब गिरफ्तार कर लिये जायँगे। समझीं! राज से टक्कर लेने की कोशिश न करो।

अरे तो राज क्या बिरादरी से ऊपर है?—गदल ने तमककर कहा—राज के पीसे तो आज तक पीसे हैं, पर राज के लिए धरम नहीं छोड़ देंगे, सुन लो? तुम धरम छीन लो, तो हमें जीना हराम है!

गदल पाँव धमाके से धरती चली गयी।

तीन पाँतें और उठ गयीं, अन्तिम पाँत थी।

निहाल ने अँधेरे में देखकर कहा—नरायन, जल्दी कर। एक पाँत बची है न?

गदल ने छप्पर की छाया में से कहा—निहाल!

निहाल गया।

डरता है?—गदल ने पूछा।

सूखे होठों पर जीभ फेरकर उसने कहा—नहीं।

मेरी कोख की लाज करनी होगी तुझे।—गदल ने कहा—तेरे काका ने तुझको बेटा समझकर अपना दूसरा ब्याह नामंजूर कर दिया था। याद रखना, उसके और कोई नहीं!

निहाल ने सिर झुका लिया।

भागा हुआ एक लड़का आया।

दादी!—वह चिल्लाया।

क्या है रे?—गदल ने सशंक होकर देखा।

'पुलिस हथियारबन्द होकर आ रही है।'

निहाल ने गदल की ओर रहस्य-भरी दृष्टि से देखा।

गदल ने कहा—पाँत उठने में ज्यादा देर नहीं है।

'लेकिन वे कब मानेंगे?'

'उन्हें रोकना होगा।'

'उनके पास बन्दूकें हैं।'

बन्दूकें हमारे पास भी हैं, निहाल।—गदल ने कहा डाँग में बन्दूकों की क्या कमी?

'पर हम फिर क्या खायेंगे!'

'जो भगवान देगा।'

बाहर पुलिस की गाड़ी का भोंपू बजा। निहाल आगे बढ़ा। दरोगा ने उतरकर कहा—यहाँ दावत हो रही है?

निहाल भौंचक रह गया। जिस आदमी ने रिश्वत ली थी, अब वह पहचान भी नहीं रहा था!

हाँ। हो रही है।—उसने क्रुद्ध स्वर में कहा।

'पच्चीस आदमी से ऊपर हैं?'

'गिनकर हम नहीं खिलाते, दरोगाजी।'

'मगर तुम कानून तो नहीं तोड़ सकते?'

'कानून राज का कल का है, मगर बिरादरी का कानून सदा का है, हमें राज नहीं लेना है, बिरादरी से काम है।'

'तो मैं गिरफ्तारी करूँगा।'

गदल ने पुकारा—निहाल!

निहाल भीतर गया।

गदल ने कहा—पंगत खतम होने तक इन्हें रोकना ही होगा!

'फिर ?'

'फिर सबको पीछे से निकाल देंगे। अगर कोई पकड़ा गया तो बिरादरी क्या कहेगी ?'

'पर ये वैसे न रुकेंगे। गोली चलायेंगे।'

'तू न डर। छत पर नरायन चार आदमियों के साथ बंदूकें लिए बैठा है।'

निहाल काँप उठा। उसने घबराये हुए स्वर से समझाने की कोशिश की—हमारी टोपीदार हैं, उनकी रफल हैं।

'कुछ भी हो, पंगत उतर जायेगी।'

'और फिर ?'

'तुम सब भागना।'

हठात् लालटेन बुझ गयी।

धायँ-धायँ की आवाज आयी! गोलियाँ अन्धकार में चलने लगीं।

गदल ने चिल्लाकर कहा—सौगंध है, खाकर उठना।

पर सबको जल्दी की फिकर थी।

बाहर धायँ-धायँ हो रही थी। कोई चिल्लाकर गिरा।

पाँत पीछे से निकलने लगी।

जब सब चले गये, गदल ऊपर चढ़ी। निहाल से कहा—बेटा!

उसके स्वर की अखंड ममता सुनकर निहाल के रोंगटे उस हलचल में भी खड़े हो गये। इससे पहले कि वह उत्तर दे, गदल ने कहा—तुझे मेरी कोख की सौगंध है। नरायन को और बहू बच्चों को लेकर निकल जा पीछे से।

'और तू ?'

'मेरी फिकर छोड़! मैं देख रही हूँ तेरा काका मुझे बुला रहा है।'

निहाल ने बहस नहीं की। गदल ने एक बंदूकवाले से भरी बंदूक लेकर कहा—चले जाओ सब, निकल जाओ।

संतान के मोह से जकड़े हुए युवकों को आपत्ति ने अंधकार में विलीन कर दिया।

गदल ने घोड़ा दबाया। कोई चिल्लाकर गिरा। वह हंसी। विकराल हास्य

उस अंधकार में गूंज उठा ।

दरोगा ने सुना, तो चौंका । औरत ! मरद कहाँ गये ! उसके कुछ सिपाहियों ने पीछे से घिराव डाला और ऊपर चढ़ गये । गोली चलायी । गदल के पेट में लगी ।

(६)

युद्ध समाप्त हो गया था । गदल रक्त से भीगी हुई पड़ी थी । पुलिस के जवान इकट्ठे हो गये ।

दरोगा ने पूछा—यहाँ तो कोई नहीं ?

हुजूर !—एक सिपाही ने कहा—यह औरत है ।

दरोगा आगे बढ़ आया । उसने देखा और पूछा—तू कौन है ?

गदल मुस्करायी और धीरे से कहा—कारज हो गया, दरोगाजी । आतमा को शांति मिल गयी !

दरोगा ने झल्लाकर कहा—पर तू है कौन ?

गदल ने और भी क्षीण स्वर से कहा—जो एक दिन अकेला न रह सका, उसी की...

और सिर लुढ़क गया । उसके होंठों पर मुस्कुराहट ऐसी ही दिखायी दे रही थी, जैसे अब पुराने अंधकार में जलाकर लायी हुई...पहले की बुझी लालटेन...

—०—

श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब'

जन्मकाल	रचनाकाल
१८९५ ई०	१९३१ ई०

मंगलग्रह की युवती से मुलाकात

कालेज का नया भवन बन रहा था और वस्तुओं के साथ लकड़ी की काफी आवश्यकता थी। गोरखपुर के एक ठेकेदार से लिखा-पढ़ी हुई थी और बैगन-साखू वहाँ से मँगवाना निश्चित हुआ था। सभ्यता की नयी दौड़ में व्यापार में ईमानदारी का वही मापदंड है जो सिगरेट सलाई का। मुझे आज्ञा हुई कि तुम जाओ, अपने सामने लकड़ियाँ लदवा दो। यहाँ लोगों को सन्देह था कि कहीं दागी, कच्ची, घुनी लकड़ियाँ न लद जायँ।

गोरखपुर से कुछ पहले कुसुमी स्टेशन पड़ता है। वहीं बरगदराम पंजाबी का लकड़ी का बड़ा कारोबार होता था। वहीं लकड़ी लदवानी थी। मैंने पत्र लिख दिया था। छः बजे सबेरे गाड़ी से उतरा। वहाँ पंजाबी का नौकर आया था। उसी के साथ मैं वहाँ चला गया जहाँ से लकड़ी आनेवाली थी। कुसुमी स्टेशन से लगभग डेढ़ मील उत्तर बरगदराम की छावनी थी। छावनी के आस-पास तीस-चालीस मकान थे, जिनमें अधिक इनके यहाँ काम करनेवालों के थे। दो-तीन दूकानें थीं और चारों ओर जंगल था। दाँतों के बीच जमीन के समान यह छोटी बस्ती थी। यों दिन गरमी का था, किन्तु वहाँ सात बजे सबेरे भी ऐसा जान पड़ा मानो फागुन की हलकी सरदी हवा में भीनी हो, जैसे ओवलटीन में अंडा भीना रहता है—है भी, नहीं भी है। जलपान के लिए बरगदराम के नौकर ने एक गिलास लस्सी दही की सामने रखी। गिलास की ऊँचाई एक फुट से एकाध ही इञ्च कमी रही होगी। मेरे लिए उतनी लस्सी पी जाना उतना ही कठिन था जितना दीमक के लिए लोहे में छेद करना। जैसे कपड़े के बकस में अधिक से अधिक ठूँसकर कपड़ा रखना कला समझी जाती है, उसी प्रकार मेहमान के पेट में

अधिक से अधिक भोजन ठूँसना अतिथि-सत्कार है। किसी प्रकार चौथाई पीकर जान छुड़ायी। पता चला कि अभी तीन-दिन और लगेंगे। शहतीरें चीरी जा रही हैं। शहतीरें आदमी चीर रहे थे इसलिए काम धीरे-धीरे होता है। यदि सभ्य होने में भी उसे विलम्ब हो तो घबड़ाना नहीं चाहिये।

सोमवार को मैं पहुँचा था। मंगल का दिन था, मुझे अच्छी तरह याद है। दो-तीन बजे के लगभग मैं टहलने निकल गया। बूढ़ों और बेकारों के लिए टहलना ही सबसे बड़ा महत्व का कार्य है। अकेले हो तो और भी अच्छा होता है। कुछ व्यय नहीं होता। किसी से बात नहीं करनी पड़ती। इसलिये अपनी मूर्खता प्रकट होने की कोई सम्भावना नहीं होती। किधर और कितना मैं चला कह नहीं सकता। इतना अवश्य था कि मैं जंगल में कुछ दूर तक चला गया था। एकाएक सामने छोटा मैदान दिखायी पड़ा और उसके बीच उज्ज्वल चमकती छोटी झील दिखायी पड़ी। सूर्य की किरण में ऐसा जान पड़ा कि पानी नहीं पारे की झील है अथवा चाँदी का विशाल थाल रखा है। चारों ओर हरे-भरे वृक्षों का बन और उसके मध्य ऐसी चमकती झील मानो कृष्ण के वृक्ष पर कौस्तुभ पड़ा है। यह सोचा भी नहीं कि उधर चलना है, उसी ओर चल पड़ा।

सौ गज दूर मैं रहा हूँगा कि देख पड़ा, वह झील नहीं है किसी चमकती धातु का बड़ा गोल डब्बा है। डब्बा कम से कम सौ फुट लम्बा-चौड़ा रहा होगा। बुद्धि समझ न पायी कि यह क्या है! आँखों ने समझा धोखा है। मरुभूमि में इस प्रकार भ्रम हो जाता है। मन में कुछ भय का बीजारोपण हुआ। बुद्धि ने कल्पना की सीढ़ी पर चढ़ना आरम्भ किया। कल्पना असीम है ऐसा लोग कहते हैं। किन्तु जो वस्तु सामने थी उसके सम्बन्ध में कल्पना भी लँगड़ी हो गयी, आगे न बढ़ सकी।

मैं सोच ही रहा था कि क्या बात है कि एकाएक उसमें चमक बढ़ गयी और मेरी आँखों में चकाचौंध आ गयी। मेरे सर में चक्कर आ गया और मैं गिर पड़ा।

कितनी देर बाद मेरी आँख खुली मैं नहीं कह सकता। मेरी आँख जब खुली, मैंने अपने को लेटा हुआ पाया। मैंने उठने की चेष्टा की किन्तु उठ न सका। मैं बँधा न था। हाथ पाँव खुले थे। शरीर पर भी कोई बोझ न था। किन्तु उठ

न सकता था। देख सकता था, सुन सकता था। जिस वस्तु पर मैं लेटा था वह दलदल के समान कोमल थी। सहसा कुछ ऐसी सुगंधि आई जिसमें अंगूर, खस और मोतिया की सुगन्धि मिली हुई थी। वह अति मादक थी। इन विविध विचित्रताओं का मैं विश्लेषण कर नहीं पाया था कि सामने एक युवती आ खड़ी हुयी। उसके बाल महीन सोने के तार के समान थे। उनकी लहरें और छल्ले देखकर जान पड़ता था कि वे कोमल भी बहुत हैं। चेहरा सुडौल, खिलौने की भाँति रंग कन्धारी अनार के दाने के रंग के समान था। विशेषता यह थी कि चेहरे पर चार आँखें थीं। दो जैसे हम सब लोगों की होती हैं, दो कनपटियों पर। आँखों का रंग गहरा नीला था। उसमें सरलता थी, कोमलता थी, आकर्षण था। उसका चेहरा देखकर भय का आभास नहीं होता था। मैं आश्चर्य, उत्सुकता और भय की लहरिकाओं पर ऊपर-नीचे हो रहा था कि उसने हाथ जोड़कर कहा—नमस्ते! मैंने देखा कि प्रत्येक हाथ में छः अँगुलियाँ हैं। कलाइयाँ गोल हैं। दाहिने हाथ की कलाई में चौड़ी चूड़ी के सकान कोई आभूषण है, जिसमें से आग की लौ निकलती जान पड़ती थी। बायीं कलाई में चमकते हुए हाथीदाँत की चूड़ी के समान कोई आभूषण था जिसमें छोटे-छोटे रत्न जड़े थे। शरीर का ऊपरी भाग बन्द गले के कोट के समान कपड़े से ढँका था किन्तु वह आधी बाँह का था। कपड़े का रंग हलका फिरोजी था और मखमल-सा जान पड़ता था। नीचे के भाग में पेटी कोट-सा वस्त्र था। इस पर फूल बने थे। वैसे फूल इधर देखने में नहीं आते। कपड़े में चमक अधिक थी, मानो किसी तार का बना हो। नीचे पाँव घोड़े के टाप के समान थे। उसका स्वर बहुत महीन था, जैसे बुलबुल का होता है। उसका नमस्ते शब्द तो शुद्ध था, किन्तु उच्चारण से पता चलता था कि कोई ऐसा व्यक्ति बोल रहा है जिसकी वह भाषा नहीं है।

मैं उठकर कुछ कहना चाहता था कि उठ न सका। मैंने लेटे-लेटे नमस्ते का उत्तर दिया। मेरा प्रयत्न देखकर उसने कहा—आप उठने की चेष्टा न करें। आप उठ नहीं सकते। प्रयत्न विफल होगा। मैं जो पूछती हूँ उसका उत्तर देने की कृपा करें। मैंने कहा—मैं कुछ नहीं समझ रहा हूँ कि मैं कहाँ हूँ। मैं यह नहीं जानता कि आप कौन हैं, और क्षमा कीजियेगा, मैं कुछ विचित्रता का भी

अनुभव कर रहा हूँ, उसने मुस्करा दिया। उसके अधर खुलने पर उसके दांत दिखाई दिये। वे सब बराबर, लम्बे, नुकीले, आबदार मोती के दाने जान पड़ते थे।। उसने कहा—हाँ ठीक है। मैं अपना परिचय देती हूँ। मैं और मेरे साथी वहीं से आये हैं जिसे आप मंगल ग्रह कहते हैं। हमारी भाषा में उसे स्वरबेन कहते हैं। जिसका अर्थ आपकी भाषा में स्वर्ग है। हमारे यहाँ ऐसे यन्त्र हैं जिनसे दूसरे संसारों की गतिविधि हम जानते रहते हैं। जिस समय यहां पहले-पहल एटम बम का विस्फोट हुआ हमारे यहाँ के यन्त्रों में विचित्र कंपन हुआ। हम लोगों ने खोज आरम्भ की। पता लगा कि धरती पर कुछ गड़बड़ है। इसके पहले हम लोग समझते थे कि यह कोई ग्रह है जहाँ छोटे-छोटे कीड़े अथवा जन्तु रहते हैं। इधर जब हम लोगों ने परिक्षा की तब जान पड़ा कि थोड़ी सभ्यता यहाँ भी है और विज्ञान की भी कुछ जानकारी है। मैंने कहा—'यदि यह सत्य है कि आप मंगल ग्रह से पधार रही हैं तो आपके आने का उद्देश्य क्या है और मुझे क्यों पकड़ रखा है? वह बोली—बात यह है कि जब हम लोगों ने निश्चय किया कि पृथ्वी पर जाना है तब पहले हम लोगों ने यहाँ की भाषा सीखी। प्रत्येक देश के हम लोग कुछ लोगों को उठा ले गये। आपने अपने यहाँ के पत्रों में पढ़ा होगा कि अमुक व्यक्ति लोप हो गया। उसका पता नहीं। हमी लोग उसे उठा ले गये। कई बार ले जाना बेकार हो गया। वह हमें सिखा न सके। इस समय हमारे यहाँ रूसी, फ्रेंच, अंग्रेजी तथा हिन्दी की शिक्षा दी जाती है—अपनी भाषा के अतिरिक्त। एक घंटे में हम यन्त्रों के सहारे कोई एक भाषा सिखा सकते हैं। हमारे यहाँ जो सज्जन हिन्दी सिखा रहे हैं उनका यहाँ का नाम मोलईराम है। हम लोग उन्हें गुरुगाट कहते हैं। उन्होंने हमें हिन्दी सिखायी है। वे हमारे विश्वविद्यालय के हिन्दी के अध्यक्ष हैं। उन्होंने बताया कि आप हिन्दी के बहुत बड़े साहित्यकार हैं।'

उसने कहा—मैंने जो आपको बुलाया वह इसलिए कि हमारे यहाँ हिन्दी की पुस्तकें नहीं हैं। गुरुगाट जो मौखिक पढ़ा देते हैं उसी का ज्ञान है। हम लोग यहाँ किसी कार्यवश उतरे तो मैंने समझा कि आप पुस्तकें ला देंगे।

मैंने उत्तर दिया—आप जो कह रही हैं वह विचित्र जान पड़ता है। यह वाक्य समाप्त भी नहीं हुआ था कि वह मेरे निकट आ गयी। उसके मुख से कोई डेढ़ फुट की जीभ निकल आयी। उसका सिर दो भागों में था—गिरगिट की भाँति

हो उससे उसने मेरी नाक पकड़ ली। ऐसा जान पड़ा किसी ने नाक पर जलता अंगरा रख दिया है। मैं चिल्लाने लगा। उसने जीभ हटा ली और कहा—कभी स्वरवेन की बातों पर अविश्वास न करना। मैंने क्षमा माँगी और कहा—मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। वह बोली—पुस्तकें ला दो। हम मूल्य देंगे। मैंने उत्तर दिया—यह जंगल है। यहाँ बहुत कम लोग रहते हैं। यहाँ पुस्तकें कहाँ मिल सकती हैं। उसने कहा—आप अपनी पुस्तकें लाइये। हम तुरत लौटा देंगे। मैंने कहा—यह मेरा घर नहीं। पाठ करने के लिये रामचरितमानस है वह ला सकता हूँ।

दूसरे दिन सबेरे मैं रामचरितमानस लेकर पहुँचा। उसकी आज्ञानुसार किसी से घटना की बात नहीं बतायी। उसने मुझसे रामचरितमानस लिया और अन्दर चली गयी। पाँच मिनट में लौट आयी। बोली—इसकी प्रतिलिपि हो गयी। मैंने पूछा—इतनी बड़ी पुस्तक की इतनी जल्दी प्रतिलिपि? उसने कहा—हम लोग प्रतिलिपि की मशीन साथ रखे हुए हैं, जिसके द्वारा कितनी भी बड़ी पुस्तक हो एक मिनट में उसकी प्रतिलिपि हो जाती है। और फिर उससे प्रत्येक मिनट एक प्रतिलिपि बना ली जाती है। आप भी एक प्रति लेते जाइये। एक प्रति उसने दी। उसके पृष्ठ सोने के वरक के समान थे। वैसा ही रंग, पतला भी, चमकदार भी। किन्तु मोड़ने पर टूटते न थे। उसमें से चन्दन के समान सुगंध भी निकल रही थी। अक्षर वैसे ही और उतने ही बड़े जितने पुस्तक में थे। पुस्तक देने के बाद उसने एक शीशा दी, जिसमें हरा-हरा तरल पदार्थ था। उसने बताया इसकी एक बूँद किसी वस्तु पर डाल दोगे तो यह सोना बन जायगा। इसके बाद उसने मुझसे कहा—इस समय अब अधिक हम ठहर नहीं सकते। आप चाहें तो हमारे साथ चल सकते हैं। एक बार तो इच्छा हुई कि चला चलूँ, किन्तु उसकी जीभ की याद आते ही साहस टूट गया। मैंने क्षमा माँगी। उसने मुझे बाहर कर दिया और क्षण भर में वह डब्बा सौ मील ऊपर उठकर लोप हो गया।

उस हरे पदार्थ से मैंने बहुत सोना बनाया। दवा समाप्त हो गयी। शीशी मेरे पास है लोग देख सकते हैं। रामचरितमानस 'कलाभवन' में रखने के लिए दे दिया है।

—समाप्त—